उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

Core Course

BAJY(N)- 101

बी.ए. ज्योतिष (प्रथम सेमेस्टर)

भारतीय ज्ञान परम्परा में ब्रह्माण्ड एवं काल विवेचन

वैदिक ज्योतिष विभाग

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139
फोन नं .05946- 261122 , 261123
टॉल फ्री न0 18001804025
Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

विशेषज्ञ समिति एवं अध्ययन समिति

प्रोफेसर ओमप्रकाश सिंह नेगी
कुलपति (अध्यक्ष)

प्रोफेसर रेनू प्रकाश
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

डॉ. रत्न लाल
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय
पूर्व अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रोफेसर श्याम देव मिश्र
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जम्मू परिसर

प्रोफेसर प्रेम कुमार शर्मा
आचार्य, ज्योतिष विभाग
श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

डॉ. प्रभाकर पुरोहित, असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी)
डॉ. प्रमोद जोशी, असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी)

पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन

डॉ नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी अध्यक्ष, वास्तु शास्त्र विभाग, ला.ब.शा. रा. सं.वि. नई दिल्ली	**1**	**2,3,4**
प्रोफेसर श्याम देव मिश्र ज्योतिष विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, लखनऊ परिसर, लखनऊ	**2**	**1**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1/2**	**1,5/2,3,4,5**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**3**	**1,2,3,4,5**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष-2023 **प्रकाशक** - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: - ***ISBN NO. –***

नोट : - (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

भारतीय ज्ञान परम्परा में ब्रह्माण्ड एवं काल विवेचन **BAJY(N)-101**

CREDIT-4

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – खगोल	**पृष्ठ-1**
इकाई 1: आकाशगंगा एवं निहारिकायें	2-15
इकाई 2: सौर परिवार	16-29
इकाई 3: ग्रह-उपग्रह, तारे एवं तारापुंज	30-65
इकाई 4: क्षुद्र, वामन ग्रह, धूमकेतु तथा उल्का	66-83
इकाई 5: ज्योतिष के परिप्रेक्ष्य में सृष्टि संरचना	84-97
द्वितीय खण्ड - काल	**पृष्ठ-98**
इकाई 1 : त्रुट्यादि अमूर्तकाल	99-114
इकाई 2 : प्राणादि मूर्त काल	115-124
इकाई 3: सप्ताह,पक्ष,मास, अधिमास एवं क्षयमास	125-136
इकाई 4: ऋतु, अयन, गोल एवं वर्ष	137-148
इकाई 5: युग,महायुग, मनु एवं कल्प	149-158
तृतीय खण्ड – पंचांग परिचय	**पृष्ठ-159**
इकाई 1: तिथि एवं वार क्रम का सैद्धान्तिक स्वरूप	160-190
इकाई 2: नक्षत्रक्रम एवं अंशात्मक विभाजन	191-203
इकाई 3: योग एवं करण का सैद्धान्तिक स्वरूप	204-222
इकाई 4: ग्रहकक्षा- प्राच्य एवं पाश्चात्य	223-232

बी.ए. प्रथम सेमेस्टर

प्रथम पत्र

भारतीय ज्ञान परम्परा में ब्रह्माण्ड एवं काल विवेचन

BAJY(N)-101

खण्ड – 1 खगोल

इकाई – 1 आकाशगंगा एवं निहारिकायें

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भारतीय ज्ञान परम्परा में आकाशगंगा
1.3.1 आकाशगंगा का परिचय
1.3.2 आकाशगंगा का रूप
1.4 आकाशगंगा का स्वरूप
1.4.1 आकार
1.4.2 भुजाएं
1.4.3 बनावट
1.4.4 आयु
1.5 निहारिका : परिचय व स्वरूप विवेचन
1.6 सारांशः
1.7 पारिभाषिक शब्दावली
1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक पाठ्यसामग्री
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना-

भारतवर्ष में ज्ञान-विज्ञान की परम्परा वैदिककाल से सम्प्रत्यावत् (आज तक) अविच्छिन्न रूप से गतिमान है। ज्ञान के इस अनन्त परम्परा में अनेकानेक अनुसन्धान हो चुके हैं, हो रहे हैं और शाश्वत रूप से होते रहेंगे। इस परिपाटी में कदाचित् मूल्यों का उत्तरोत्तर ह्रास-वृद्धि देखने को मिल रहा है और विविध कालखण्डों में मिलता रहेगा, ऐसा मेरा मानना है। प्रिय शिक्षार्थियों! प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई0(एन)-101 प्रथम खण्ड के '**आकाशगंगा एवं निहारिका**' शीर्षक से सम्बन्धित है। आप सभी को यह ज्ञात होना चाहिये कि **आकाशगंगा से तात्पर्य** उस मण्डल से हैं जिसमें पृथ्वी और हमारा सौरमण्डल स्थित है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र में खगोल ज्ञान के अन्तर्गत हम **आकाशगंगा एवं निहारिकाओं** से संबंधित ज्ञान की प्राप्ति करते है।

आकाशगंगा आकृति में एक **सर्पिल (स्पाइरल) गैलेक्सी** है, जिसका एक बड़ा केन्द्र है और उस से निकलती हुई कई वक्र भुजाएॅ है। प्राच्य और पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने खगोल ज्ञान से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन किया है, जिनमें आकाशगंगा एवं निहारिका भी है।

इस इकाई में हम आकाशगंगा एवं निहारिका से सम्बन्धित विषयों की चर्चा करेंगें, जिसके अध्ययन के पश्चात आपको उपरोक्त विषय का सम्यक् अनुशासन हो जाएगा।

1.2 उद्देश्य-

इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकेंगे कि -

1. आकाशगंगा एवं निहारिका किसे कहते हैं।
2. आकाशगंगा का स्वरूप कैसा होता है।
3. खगोल में आकाशगंगा का ज्ञान हम कैसे करते है।
4. नीहारिकायें आकाश में कैसे दिखलाई पड़ती है।
5. आकाशगंगा एवं निहारिकाओं में क्या सम्बन्ध है।

1.3 भारतीय ज्ञान परम्परा में आकाशगंगा

भारतीय ज्ञान परम्परा में सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'वेद' को माना गया है। वेद ही समस्त विद्याओं का मूल है। वेद में समस्त ज्ञान राशियों का भण्डार है। चूँकि वेद मूल रूप से संस्कृत भाषा में है इसीलिए संस्कृत से इतर लोगों के लिए सुलभ नहीं है अर्थात् कठिन है। आचार्यो ने इस मर्म को समझकर सर्वसुलभता के लिए वेद का अंग 'वेदांग' अथवा षड् शास्त्रों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष) का निर्माण किया। उसी क्रम में वेदों को और ठीक से समझने/समझाने के लिए

उस पर भाष्य भी लिखे गए। ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों का भी निर्माण किया गया। जिसके फलस्वरूप सामान्य जन भी वैदिक ज्ञान राशि से परिचित हो सकें। विविध कालखण्डों के आधार पर यदि हम बात करें तो अलग-अलग समय में वैदिक या भारतीय ज्ञान परम्पराओं का वृद्धि के साथ ह्रास भी देखने को मिलता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा को यदि हम वैदिक ज्ञान परम्परा कहें तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में आकाशगंगा एवं निहारिकाओं को हम कैसे समझ सकते हैं? तो इसका उत्तर है कि शास्त्रीय ज्ञान पर आधारित जो भी विषय-वस्तु आप जानते अथवा पढ़ते हैं वह सभी भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत ही आते हैं। अत: ज्योतिषशास्त्र में आकाशगंगा एवं निहारिकाओं से सम्बन्धित ज्ञान प्राचीन भारतीय ज्ञान पद्धति पर ही आधारित है।

'आकाशगंगा' खगोल से सम्बन्धित है, जिसे प्राचीन भारतीय खगोलविदों ने संस्कृत भाषा में 'आकाशगंगा' की संज्ञा दी है तथा आधुनिक वैज्ञानिकों ने 'गैलेक्सी' कहा है। सामान्यतया तारों के समूहों (Group of Stars) को 'आकाशगंगा' कहते है। प्राचीन एवं अर्वाचीन गणकों के द्वारा इनके विभिन्न संज्ञाएॅ है। प्राचीन ज्योतिर्विदों के अनुसार इसके विविध संज्ञायें हैं - आकाशगंगा, क्षीरमार्ग या मन्दाकिनी। आधुनिक खगोलविदों के अनुसार आकाशगंगा को 'मिल्की वे' और 'गैलेक्सी' के नाम से जाना जाता है। हमारा सौरमण्डल आकाशगंगा के बाहरी इलाके में स्थित है और आकाशगंगा के केन्द्र की परिक्रमा कर रहा है। इसे एक पूरी परिक्रमा करने में लगभग 22.5 से 25 करोड़ वर्ष लग जाते है। आकाशगंगा उस स्थल विशेष की संज्ञा हैं, जिसमें पृथ्वी और हमारा सौरमण्डल स्थित है।

1.3.1 आकाशगंगा परिचय

ग्रहों को छोड़कर शेष तारे आकाश में एक दूसरे की अपेक्षा अपना स्थान कभी नहीं बदलते। यह पृथ्वी से इतने दूर है कि पृथ्वी की गति से उनके पास्परिक स्थान में कोई अंतर नहीं दीखता। इनकी गति ऐसी होती है मानो यह किसी विशाल 'गोल' की भीतरी सतह पर जड़े हों और यह 'गोल' एक निश्चित धुरी के चारों ओर घूम रहा हो। ताराओं के इस कल्पित गोल को 'खगोल' कहते हैं। तारागण मंडलों में विभक्त हैं। खगोल के एक बार पूरा भ्रमण कर जाने का समय 'नाक्षत्र अहोरात्र' (Sidereal Day and Night) है।

आकाशंगंगा (Milky way) खगोल पर फैला हुआ एक विशाल वलय है, जो वास्तव में छोटे-छोटे ताराओं का सघन-समूह है। यह उत्तर ध्रुव के समीप कपि (Cepheus) मण्डल से आरम्भ्ज्ञ करके खगेश-मण्डल को जाता है। वहाँ पर यह वलय दो शाखाओं में विभक्त हो जाता है। एक भाग

पूरब ओर धनिष्ठा, श्रवण, धनु इत्यादि मंडलों की ओर जाता है तथा दूसरा भाग सीधे वृश्चिक मण्डल की ओर जाता है। दोनों भाग बड़वा त्रिशंकु एवं अर्णवयान मण्डल के समीप से होकर मृगव्याध मण्डल के समीप एक हो जाते है। मिथुन राशि तथा काल-पुरूष के मण्डल के बीच से होकर, ब्रह्मा मण्डल, वराह मण्डल तथा हिरण्याक्ष मण्डल का अतिक्रमण करके फिर आकाश गंगा कपि-मण्डल के समीप आ पहुँचती है। पौराणिक कथाओं से संबंध रखने वाले नक्षत्र मण्डलों में अधिकांश **आकाशगंगा** के समीपवर्ती है।

आकाशगंगा में अंसख्य तारे किस बन्धन से नियन्त्रित होते हैं, यह असामान्य प्रश्न है। यह तारका वलय एकदम एक रेखा में नहीं है। कहीं यह ३० अंश गहरे और कहीं यह २ अंश गहरे हैं। हवा के प्रवाह में उपलब्ध धुयें का समुदाय जैसा अव्यवस्थित दिखलायी पड़ता है, उसी तरह यह भी उबड़-खाबड़ दिखलायी पड़ता है। आकाशगंगा की तारायें एक दूसरे से अचिन्त्य अन्तर पर अवस्थित है। इसलिए उनके विस्तार की कल्पना करना सर्वथा दुष्कर है। अभी यहां केवल एक आकाशगंगा की बात की जा रही है। परन्तु जब आप बड़ी दूरबीन से देखेगें तो ऐसी सैकड़ों आकाशगंगायें अंतरिक्ष में घूमते हुए दिखलायी पड़ेगी। तब ऐसे विस्तार की कल्पना कैसे हो सकती है, इसलिए हम मानवों को विश्व अर्थात् ब्रह्म अचिन्त्य है। 'यतो वाचो निवर्तन्न अप्राप्य मनसा सह' ऐसा जो तैत्तरीय श्रुति में कहा है, वही सत्य है। तथापि सम्पूर्ण विश्व अचिन्त्य होने पर हमारे आस-पास का भाव अचिन्त्य नहीं होता, इसलिए मानव को अपनी जिज्ञासा जागृत रखकर ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न यथाशक्ति करते रहना चाहिए।

हमारा सूर्य आकाशगंगा के असंख्य ताराओं में से एक तारा है। वह उसके दक्षिण भाग के पास है, इसलिए दक्षिण गोलार्ध में स्पष्ट तारों की संख्या अधिक है। अर्वाचीन विद्वानों का यह अनुमान है कि वह अगस्ति तारे के चारों तरफ भ्रमण करता रहता है, अगस्ति का लम्बन ३७ विकला है, उसका व्यास सूर्य के व्यास के १३४ गुणा है। क्षेत्रफल १८००० गुना और घनत्व २४२०००० गुना है।

1.3.2 आकाशगंगा का रूप

हमारी मंदाकिनी-संस्था कुम्हार के चाक की तरह वृत्ताकार और चिपटी परन्तु बीच में फूली हुई है। **मंदाकिनी संस्था के उस रूप को जो पृथ्वी-निवासियों को दिखायी पड़ता है उसे 'आकाशगंगा' कहते हैं।**

केन्द्र से सूर्य तीस-पैतीस हजार प्रकाशवर्ष की दूरी पर है। इससे सूर्य लगभग १५० मील प्रति सेकेंड के वेग से चलता है, यद्यपि आस-पास के चमकीले तारों के सापेक्ष सूर्य केवल १२ मील प्रति सेकेंड चलता जान पड़ता है। कारण यह है कि यह चमकीले तारे स्वयं चलायमान है तथा आकाशगंगा

अपनी धूरी पर नाच रही है।

1.4 आकाशगंगा का स्वरूप विवेचन

पुराणों में **आकाशगंगा** और पृथ्वी पर स्थित गंगा नदी को एक दुसरे का जोड़ा माना जाता था, और दोनों को पवित्र माना जाता था। प्राचीन हिन्दु धार्मिक ग्रन्थों में आकाशगंगा को 'क्षीर' अर्थात् दूध कहा गया है। भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर भी कई सभ्यताओं को आकाशगंगा दूधिया लगा। **'गैलेक्सी'** शब्द का मूल यूनानी भाषा का **'गाला'** शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ दूध ही होता है। फारसी संस्कृत की ही तरह एक हिन्दी ईरानी भाषा हैं, इसीलिए उसका दूध के लिए शब्द संस्कृत के क्षीर से मिलता जुलता सजातीय शब्द **शीर** हैं और आकाशगंगा को 'मिल्की वे' कहा जाता हैं, **जिसका अर्थ भी दूध का मार्ग** ही है।

आकाशगंगा आकृति में एक सर्पिल (स्पाइरल) गैलक्सी है, जिसका एक बड़ा केन्द्र हैं और उससे निकलती हुई कई वक्र भुजाएॅ है। हमारा सौरमण्डल इसकी शिकारी–हन्स भुजा (ओरायन- सिग्नस भुजा) पर स्थित है। आकाशगंगा में 100 अरब से 400 अरब के बीच तारें हैं और अनुमान लगाया जाता हैं कि लगभग 50 अरब ग्रह होंगे, जिनमें से 50 करोड़ अपनें तारों से जीवन योग्य तापमान रखने की दूरी पर हैं । सन् 2011 में होने वाले एक सर्वेक्षण में यह संभावना पायी गई कि इस अनुमान से अधिक ग्रह हों इस अध्ययन के अनुसार आकाशगंगा में तारों की संख्या से दोगुने ग्रह हो सकते है। हमारा सौरमण्डल आकाशगंगा के बाहरी इलाके में स्थित हैं और आकाशगंगा के केन्द्र की परिक्रमा कर रहा है। इसे एक पूरी परिक्रमा करनें में लगभग 22.5 से 25 करोड़ वर्ष लग जाते है।

संस्कृत और कई अन्य हिन्द – आर्य भाषाओं में हमारी गैलेक्सी को **आकाशगंगा** कहते हैं।

आकाश में दुग्ध-मेखला के रूप में एक आकृति दिखाई देती है जिसे आकाशगंगा (मिल्की वे) कहते हैं। इसी आकाशगंगा में कुछ-कुछ स्थानों पर निहारवत् कुछ पदार्थों का समुदाय दृष्टिगोचर होता है। यह पदार्थ वाष्पमय होता है जिसे हम नीहारिका कहते हैं। निहारिका के सदृश आकाश में वृहद् प्रकाशपुंजों का समाहार दिखाई देता है। ये सभी प्रकाशपुंज आकाशगंगा के ही सदस्य हैं।

हमारे सूर्य के सदृश असंख्य तारों एवं तारक पुंजों का समुदाय जहाँ दिखाई देता है उसी को 'आकाशगंगा' कहते हैं। हमारी पृथ्वी की अपनी एक आकाशगंगा या मन्दाकिनी है जिसे दुग्ध-मेखला (मिल्की वे) कहते हैं। इस आकाशगंगा की विशिष्टता यह है कि इससे होकर एक सम्पूर्ण वृत्त में प्रकाश की धारा प्रवाहमान दिखाई देती है। आकशगंगा ब्रह्माण्ड की एक मनोहारी वस्तु है। पृथ्वी से देखने में यह उक्त प्रकाश धारा आकाश में दिखाई देती है। वास्तव में यह असंख्य तारों के टिमटिमाने से बनी है। पाश्चायों ने इस प्रकाश धारा को 'मिल्की वे' (दुग्ध मेखला) की संज्ञा दी। यह नाम आकाशगंगा का व्यापक रूप से प्रयुक्त हुआ। आकाशगंगा ने पृथ्वीस्थ सभी लोगों को इतना अधिक मोहित किया कि लोगों ने इसे विभिन्न काल्पनिक कथाओं एवं सुन्दर-सुन्दर नामों से संजोया। मध्य एशिया के यकूत लोगों ने इसे 'ईश्वर का पद्चिह्न' कहा, एस्किमो लोगों ने 'धवल

भस्म का मार्ग' कहा तो चीन के लोगों ने इसे 'स्वर्ग की नदी' तथा हिब्रू लोगों ने 'प्रकाश की नदी' कहा। प्राचीन भारतीय लोगों ने इसे स्वर्गगंगा, आकाशगंगा, मन्दाकिनी, देवगंगा, क्षीरनदी, आकाशनदी, आकाशयज्ञोपवीत आदि कहा। खगोलशास्त्रियों की गणना के अनुसार हमारे ब्रह्माण्ड में सहस्रों अरब आकाशगंगाएँ हैं। प्रति आकाशगंगा में अनुमानतः हजारों अरब तारे होते हैं। हमारी आकाशगंगा में हमारा सौर-परिवार तो एक कोने में बिन्दु मात्र दिखाई देता हैं। कल्पना करें, जैसे पूरे विश्व में एक गाँव और पुनः उस गाँव में मेरा परिवार जैसी स्थिति में कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व का अनुभव करता है वैसे ही ब्रह्माण्ड में हमारा सौर-परिवार भी है। आकाशगंगा का व्यासमान 100000 प्रकाश वर्ष है। आकाशगंगा में तीन प्रकार की तारों की श्रेणियाँ हैं। पहली श्रेणी में वे तारे आते हैं जो आकाशगंगा के सर्पिलों और नाभि में स्थित हैं। सूर्य भी इसी में समाहित है, इसे मन्दाकिनी गुच्छ कहते हैं। इसके बाहर प्रभामण्डलीय तारे हैं। यहाँ बहुत से तारों ने एक छोटी मन्दाकिनी का रूप भी लिया है। इनको हम गोलाकार तारागुच्छ कहते हैं। इनमें बहुत पुराने तारे पाए जाते हैं। इन गोलाकार गुच्छों से दूर करोड़ों तारे हैं जो आकाशगंगा के बाहरी भाग में छिटके पड़े हैं। ये तारे भी आकाशगंगा के ही अंग हैं।

हमारी आकाशगंगा का केन्द्र खगोलीय धूल कणों से इस तरह ढंका हुआ है कि प्रकाश दूरबीनों के द्वारा इसका अध्ययन सम्भव नहीं है। जो कुछ हमें ज्ञात है वह रेडियो दूरबीनों के द्वारा हुआ है। हमारे सूर्य से लगभग 32000 प्रकाश वर्ष दूर हमारी आकाशगंगा का केन्द्र है। यह केन्द्र का भाग गैस की घूमती हुई पट्टी जैसा दिखाई केन्द्र है। यह केन्द्र का भाग गैस की घूमती हुई पट्टी जैसा दिखाई देता है। इस घूमती हुई पट्टी अर्थात् केन्द्र भाग में अनेक बड़ी क्रियाएँ होती रहती हैं। यहाँ नित्य नूतन तारे पैदा होते रहते हैं। इस भाग में करोड़ों तारे लुब्धक जैसे चमकदार दिखाई देते हैं। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि आकाशगंगा का केन्द्र भाग कितना प्रकाश की किरणों से ओतप्रोत है। मेरीलैंड विश्वविद्यालय के डॉ. जासेफ वेवर का कहना है कि हमारी आकाशगंगा के केन्द्र को एक 'ब्लैक होल' (कृष्ण विवर) अनुशासित करता है। उन्होंने परीक्षण में पाया कि केन्द्र से प्रभावशाली गुरुत्वाकर्षण की लहरें निर्गत हो रही हैं।

आकार में आकशगंगाएँ विभिन्न प्रकार की दिखाई देती हैं। कोई दीर्घवृत्ताकार, कोई सर्पिलाकार और कोई विषमाकार की दिखाई देती है। ब्रह्माण्ड में विस्फोट के बाद पदार्थों का विस्तार हुआ। अन्तरिक्ष में गैर से भरे खरबों, प्रायद्वीप बने। गैस के ये प्रायद्वीप अपनी ही गति के कारण घूमने लगे। मन्द गति से घूमने वाले प्रायद्वीपों का आकार चपटी तश्तरी (डिस्क) की तरह हो गया । इसके किनारे सर्पिली भुजाएँ निकली। इसके पश्चात् इनका आकार 'सर्पिलाकार' दिखाई देने लगा। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की आकाशगंगाएँ अस्तित्व में आई।

कोरी आँख से आकाशगंगा - आकाशगंगा वह दीप्तिमय धारा है जो आकाश में तारों से पटी नदी सी जान पड़ती है। गर्मी के दिनों में स्वच्छ अंधेरी रात में सूर्यास्त के दो तीन घण्टे बाद आकाशगंगा का सबसेअधिकचमकीला भाग हमें प्राय: सर के उपर दिखायी पड़ती है। यदि आस पड़ोस के शहर

की चकाचौंध न हो तो और स्पष्ट दिखलायी पड़ता है। आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक विस्तृत आकाशगंगा बहुत स्पष्ट और सुन्दर दिखलायी पड़ती है। एक समय में हमें आकाशगंगा का केवल आधा ही भाग दिखलायी पड़ता है और आधा क्षितिज के नीचे चला जाता है।

दूरदर्शक से आकाशगंगा - हाथ वाले दो आँख के अच्छे दूरदर्शक (बाईनाक्युलर्स) से या अन्य छोटे दूरदर्शक से देखने पर पता चलता है कि हजारों या लाखों मद तारों के समूह से आकाशगंगा बनी है।

1.4.1 आकार

आकाशगंगा का आकार सर्पिल होता है। इसके चपटे चक्र का व्यास डायामीटर लगभग 1,00,000 एक लाख प्रकाश वर्ष है लेकिन इसकी मोटाई केवल 1, 000 एक हजार प्रकाश वर्ष है। आकाशगंगा कितनी बड़ी हैं इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता हैं कि अगर हमारे पूरे सौरमण्डल के चक्र के क्षेत्रफल को एक रूपये के सिक्के जितना समझ लिया जाए तो उसकी तुलना में आकाशगंगा का क्षेत्रफल भारत का डेढ़ गुना होगा। यहाँ आप सभी के ज्ञानार्थ गैलक्सी को छायाचित्र के माध्यम से दिखाया जा रहा है -

ऐसा अनुमान है कि आकाशगंगा में कम से कम 1 खरब यानि 10,000 करोड़ तारे हैं, लेकिन संभव हैं कि यह संख्या 4 खरब तक हो। तुलना के लिए हमारी पड़ोसी गैलेक्सी एण्ड्रोमेडा में 10 खरब तारे हो सकते हैं। एण्ड्रोमेडा का आकार भी सर्पिल है। आकाशगंगा के चक्र की कोई ऐसी सीमा नहीं है। जिसके बाद तारे एकदम न हों, बल्कि सीमा के पास तारों का घनत्व धीरे धीरे कम होता जाता है। देखा गया है की केन्द्र से 40,000 प्रकाश वर्षों की दूरी के बाद तारों का घनत्व तेजी से कम होने

लगता है। वैज्ञानिक इसका कारण अभी ठीक से समझ नहीं पाये हैं। मुख्य भुजाओं के बाहर एक अन्य गैलेक्सी से अरबों सालों के काल में छीने गए तारों का छल्ला है, जिसे इकसिंगा छल्ला (मोनोसॅरॉस रिन्ग) कहते हैं। आकाशगंगा के इर्द – गिर्द एक गैलक्सीय सेहरा भी हैं, जिसमें तारे और प्लाज्मा गैस कम घनत्व में मौजूद हैं, लेकिन इस सेहरे का आकार आकाशगंगा की दो मॅजलॅनिक बादल नाम की उपग्रहीय गैलेक्सियों के कारण सीमित है।

1.4.2 भुजाएॅ

मानव आकाशगंगा के चक्र के भीतर स्थिर हैं, इसलिए हम आकाशगंगा की सही आकृति का अचूक अनुमान नहीं लगा सकते हैं। हम पूरे आकाशगंगा के चक्र और उसकी भुजाओं को देख नहीं सकते। हमें हजारों अन्य गैलेक्सियों का पूरा दृश्य आकाश में मिलता है जिससे हमें गैलेक्सियों की भिन्न श्रेणियों का पता है। आकाशगंगा का अध्ययन के पश्चात हम केवल अनुमान लगा सकते हैं की यह सर्पिल श्रेणी की गैलेक्सी है। लेकिन यह पता लगाना बहुत कठिन हैं की आकाशगंगा की कितनी मुख्य और कितनी क्षुद्र भुजाएॅ है। उपर से यह भी देखा गया हैं कि अन्य सर्पिल गैलेक्सियों में भूजाएॅ कभी–कभी अजीब दिशाओं में मुड़ी होती हैं या फिर विभाजित होकर उपभुजाएॅ बनती है। इस असमंजस की स्थिति में वैज्ञानिकों ने भुजाओं के आकार को लेकर मतभेद है। 2008 तक माना जाता था की आकाशगंगा की चार मुख्य भुजाएॅ हैं और कम से कम दो छोटी भुजाएॅ हैं, जिनमें से

एक शिकारी हन्स भुजा हैं जिस पर हमारा सौरमण्डल स्थित हैं। भुजाओं का वर्णाक्रम है –

रंग	**भुजा**
नीला	परसीयस भुजा
जमुनी	नोरम भुजा और बाहरी भुजा
हरा	स्कूटम सॅन्टॉरस भुजा
गुलाबी	कैरीना सैजीटेरियस भुजा
नारंगी	ओरायन सिग्नस भुजा (जिसमें सूर्य और सौरमण्डल हैं)

2008 में विस्कोंसिन विश्वविद्यालय के रॉबर्ट बॅन्जिमिन ने अपने अनुसन्धान में का नतीजा घोषित करते हुए दावा किया की दरअसल आकाशगंगा की केवल दो मुख्य भुजाएँ हैं - परसीयस भुजा और स्कूटम – सॅन्टॉरस भुजा और शेष सारी भुजाएँ छोटी है । अगर यह सत्य हैं तो आकाशगंगा का आकार एण्ड्रोमेडा से अलग ओर ऍन जी सी 1365 नाम की सर्पिल गैलेक्सी जैसा होगा।

1.4.3 बनावट

आकाशगंगा की बनावट के बारे में अनेकों शोध हो चुके हैं। प्राचीन ज्ञान के आधार पर तो हम इसे दूध की नदी की तरह समझते थे। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 1990 के दशक तक वैज्ञानिक समझा करते थे कि आकाशगंगा का घना केन्द्रीय भाग एक गोले के आकार का हैं लेकिन फिर उन्हें शक होने लगा की उसका आकार एक मोटे डंडे की तरह है । 2005 में स्पिट्जर अन्तरिक्ष दूरबीन से ली गई तस्वीरों से स्पष्ट हो गया की उनकी आशंका सही थी आकाशगंगा का केन्द्र वास्तव में गोले से अधिक खिंचा हुआ एक डंडेनुमा निकला।

1.4.4 आयु

भारतीय ज्ञान परम्परा में आकाशगंगा की आयु का निश्चित कालखण्ड बतलाना सर्वथा दुष्कर है। क्योंकि जिसकी सीमायें अनन्त हो उसके अन्त और आरम्भ का निर्धारण करना सर्वदा कठिन होता है। आधुनिक विज्ञान के मतानुसार 2007 में आकाशगंगा में एक HE1523–0901 नाम के तारे की आयु 13.2 अरब साल अनुमानित की गयी इसलिए यदि मान लिया जाय तो आकाशगंगा कम से कम उतना प्राचीन तो हैं ही।

आकाशगंगा का महत्व मानव जीवन में यद्यपि उतना प्रासांगिक नहीं हैं, जितना खगोलीय जगत में है। ज्योतिषियों के लिए खगोलीय ज्ञान के अन्तर्गत इसका ज्ञान आवश्यक है। मानव सर्वदा से ही आकाश में स्थित विभिन्न प्रकार के प्रकाश पुंजों को जानने की चेष्टा करता रहा है। वर्तमान में नासा इसमें अग्रगण्य है। आकाशगंगा का मानव जीवन में व्यावहारिक महत्व के दृष्टिकोण से देखा

जाए तो कोई विशेष महत्व नहीं है, किन्तु ज्योतिष विज्ञान के अन्तर्गत इसका महत्व अवश्य है।

बोध प्रश्न -

1. निम्न में आकाशगंगा है –
   क. तारों का समूह ख. मिल्की वे ग. मंदाकिनी घ. उपर्युक्त सभी
2. सर्पिल गैलेक्सी किसे कहते हैं –
   क. निहारिका ख. तारा ग. आकाशगंगा घ. कोई नहीं
3. हमारे सूर्य से लगभग कितनी दूरी पर हमारी आकाशगंगा का केन्द्र है।
   क. 32000 प्रकाश वर्ष ख. 30000 प्रकाश वर्ष ग. 25000 प्रकाश वर्ष घ. कोई नहीं
4. 2008 तक के अनुसार आकाशगंगा की कितनी मुख्य भुजाऐं मानी गयी थी।
   क. 2 ख. 3 ग. 4 घ. 5
5. 'गैलेक्सी' शब्द का मूल यूनानी भाषा का कौन सा शब्द है।
   क. खाला ख. गाला ग. काला घ. पाला
6. गाला का शाब्दिक अर्थ है।
   क. जल ख. दूध ग. वायु घ. अग्नि
7. आकाशगंगा का व्यासमान 100000 प्रकाश वर्ष है।
   क.100000 प्रकाश वर्ष ख. 200000 प्रकाश वर्ष ग. 300000 प्रकाश वर्ष घ. 400000 प्रकाश वर्ष

1.5 निहारिका : परिचय व स्वरूप विवेचन

नीहारिकायें उन आकाशीय वस्तुओं को कहते है जो आकाश में तारों की तरह चमकीले हैं। या दूसरे शब्दों में आकाश में जो नीहारवत् तारों के पुंज दिखाई देते हैं उन्हें ही 'नीहारिका' कहते हैं। ये तारों की तरह प्रकाशित होते हैं परन्तु ये तारे नहीं हैं क्योंकि इनका आकार तारों की तरह नहीं है। सामान्यतया आकाश में दो नीहारिकाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं जिनको देवयानी और त्रिभुज नाम से जाना जाता है। दूरदर्शक यंत्र के माध्यम से दस करोड़ से अधिक नीहारिकाओं का ज्ञान वैज्ञानिकों को प्राप्त हुआ है। आकाश में छोटी-बड़ी अर्थात् सभी प्रकार की नीहारिकाएँ दिखाई देती हैं। जो नीहारिकाएँ ग्रहों के सदृश गोलाकार होती हैं उन्हें ग्रहीय नीहारिका कहते हैं। इन नीहारिकाओं का व्यास प्रायः 7 खरब मील के आसन्न होता है। इनके मध्य में एक प्रचंड तेज से युक्त तारा होता है। उसी के चारों तरफ अन्य लघु तारे भ्रमण करते हैं। इनका एक चक्र भ्रमण लगभग पाँच हजार वर्षों में पूर्ण होता है। कुछ नीहारिकाएँ तो इतनी विशाल होती हैं कि उनकी तुलना आकाशगंगा से की जा सकती है। अधिकतर नीहारिकाएँ समुदाय में रहती हैं। इन्हीं को नीहारिका पुंज कहते हैं। इन पुंजों में 2

से 5 सौ तक नीहारिकाएँ होती हैं। निरन्तर वेध करने से ज्ञात हुआ कि नीहारिकाएँ अधिक वेग से भागती हैं। जैसे-जैसे ये भागती हैं तो इनकी गतियाँ बढ़ जाती हैं। नीहारिकाओं का प्रकाश हम तक एक करोड़ वर्ष के पश्चात् पहुँचता है। लेकिन ये नीहारिकाओं भी 900 मील प्रति सेकेंड की गति से दूर भाग रही हैं। जिन नीहारिकाओं का प्रकाश हम तक पाँच करोड़ वर्षों में पहुँचता है वे हमसे 4500 मील प्रति सेकेण्ड के वेग से दूर भाग रही हैं। इसी आधार पर कह सकते हैं कि एक अरब चालीस करोड़ वर्षों में विश्व का व्यास दुगुना हो जाएगा।

नीहारिकाओं के सन्दर्भ में पौराणिक एवं वैदिक साहित्य में चतुर्दश लोगों की व्याख्या करते हुए एक वर्णन मिलता है जिसमें यह कहा गया है कि भूलोक स्वर्लोक से आबद्ध है। इस आबद्धता को यह कहते हुए स्वीकार किया गया है कि स्वर्लोक की आकर्षण-शक्ति के कारण ही भूलोक स्वर्लोक की परिक्रमा करता है। यहाँ स्वर्लोक को सूर्य लोक कहा गया है। कह सकते हैं कि भूलोक (पृथ्वी) सूर्य के चारों तरफ घूमती है परन्तु स्वर्लोक (सूर्यमण्डल) पूर्णरूप से परमेष्ठीमण्डल के आकर्षण के कारण अपनी कक्षा में घूमते हुए पूरे सौर-परिवार के साथ आकाशगंगा की परिक्रमा कर रहा है। वैदिक एवं पौराणिक साहित्य के आधार पर महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहते हैं1 कि भूलोक स्वर्लोक से, स्वर्लोक जनलोक से और जनलोक सत्यलोक से आबद्ध है। इन लोकों के

मध्य में जो अन्तराल है वही क्रमशः भुव-मह-तप लोक कहे गए हैं। शुक्ल यजुर्वेद में परमेष्ठीलोक का धाता नाम से भी व्यवहार मिलता है। प्राचीन वैदिक आचार्य स्वीकार करते हैं कि सभी ग्रह, नक्षत्र, तारों की उत्पत्ति परमेष्ठी-लोक से हुई है। आधुनिक वैज्ञानिक इसी परमेष्ठी की उत्पत्ति परमेष्ठी-लोक से हुई है । आधुनिक वैज्ञानिक इसी परमेष्ठी (धाता) लोक को 'स्पायरल नौबुला' (काश्यपी नीहारिका) के रूप में स्वीकार करते हैं तथा मानते हैं कि सूर्य सहित सभी ग्रहों की उत्पत्ति आकाशगंगा के एक पार्श्व में स्थित काश्यपी नीहारिका से हुई है। इस मत का प्रतिपादन पुराण भी करते हैं ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि ''चन्द्र ऋक्षः सर्वे विज्ञेयाः सूर्य सम्भवाः''2। इसी सन्दर्भ में ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि काश्यपी नीहारिका से ही सूर्य की उत्पत्ति हुई यथा ''काश्यपादेव सूर्योपत्तिः''। आज विज्ञान इस सन्दर्भ में नूतन अनुसन्धान के क्षेत्र में कटिबद्ध रूप में संलग्न है, अर्थात् नीहारिकाओं की खोज निरन्तर चल रही है।

आकाश में एक प्रकाश पुंज दिखाई देता है जिसकी आवश्यकता हमको अधिक मालूम पड़ती है। प्रातः एवं सायं काल में हम इसको भलीभाँति देख पाते हैं परन्तु मध्याह्न काल में इसको देखने का दुस्साहस किया जाए तो हमें अपनी आँखें भी खोनी पड़ सकती हैं। जब इसको हमने क्षितिज पर ठीक ढंग से देखा तो हमको कुछ लाल व बड़ा दिखाई दिया, धीरे-धीरे वह चमकता हुआ प्रकाश पुंज हमारी आँखों से विलीन हो गया और काली घटा घिर आई, कुछ दिखाई नहीं देता है अर्थात् रात्रि हो गई। जहाँ हमको प्रकाश की आवश्यकता हो रही है वहीं आकाश की ओर जब दृष्टि करते हैं तो दिखाई दे रहा है कि एक नीली चादर पर कई प्रकाश बिन्दु बिखरे हुए हैं। इतने में इनके साथ ही

एक प्रकाश का गोला उदित होता दिखाई दे रहा है परन्तु इसका प्रकाश दिन के प्रकाश पुंज की अपेक्षाकृत् कई गुणा कम है किन्तु बड़ा मनोहर लग रहा है। क्या हैं ये प्रकाश बिन्दु? रात भर इन बिन्दुओं को देखते हैं तो मालूम होता है कि ये बिन्दु अपना स्थान बदल रहे हैं। देखते-देखते ऊषा काल होने लगा, सारे प्रकाश बिन्दु विलीन हो गए और पूर्व दिन वाला ही पुंज (बिम्ब) निकल पड़ा जिसको हम आदित्य, सविता (सूर्य) आदि कई नामों से जानते हैं। इसका उद्भव कैसे हुआ? ये दिखाई देने वाले प्रकाश बिन्दु कहाँ हैं? कैसे हैं? इत्यादि प्रश्नों की झड़ी लग जाती है।

''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्।
नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः॥''

इस उक्ति से ज्ञात होता है कि वह क्या है? कौन है ? कहाँ है ?

जिस तक हमारे विशाल तेज पुंज, सूर्य, चन्द्र व तारों का प्रकाश समग्र रूप से नहीं पहुँच पाता है। जब सूर्य, चन्द्र एवं तारों का ही प्रकाश वहाँ नहीं पहुँच पाता है तो क्या विद्युत और अग्नि का प्रकाश पहुँच पाएगा? नहीं, कदापि नहीं। तो फिर जिज्ञासा होती है कि क्या है वह? वही तो है ब्रह्माण्ड, जहाँ एक नहीं लाखों सूर्य हैं, परन्तु फिर भी मालूम नहीं है कि उसका आदि अन्त कहाँ है? इस सम्बन्ध में तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि-''लोकोऽसि अनन्तोस्यपारोऽसि। अक्षितोऽस्यक्षस्योऽसि' इत्यादि-तुम लोक हो, अनन्त हो, अपार हो, अक्षित हो, अक्षय हो। जो अपार, अक्षय, अनन्त है वह कहाँ से आया? क्या कोई जानता है? इसी विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण नामक ग्रन्थ में पुनः कहा गया है कि ''को अद्धा वेध क इह प्रवोचत। कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः'' इत्यादि। इस ऋचा में कहा गया है कि सृष्टि किससे उत्पन्न हुई तथा किसलिए इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई, इसको कौन जानता है? अथवा कौन बता सकता है? जिन्हें हम देवता, ऋषि अथवा अवतार कहते हैं वे भी पीछे ही हुए। केवल आकाश ही एक ऐसा है जो परमाध्यक्ष है, वही जानता है परन्तु वह भी उसको जानता या नहीं इसको कौन जानता है? सृष्टि के विषय में जितने सम्प्रदाय (जिसे आज हम धर्म के नाम से जानते हैं) हैं उतने ही विचार भी हैं। इस सन्दर्भ में छान्दोग्य उपनिषद में एक कथा है कि गहन चिन्तन में लीन ब्रह्मा से एक नैसर्गिक विराट् अण्ड उत्पन्न हुआ। वह था ब्रह्माण्ड (ब्रह्म + अण्ड), वर्ष भर अण्ड बढ़ता रहा और एक दिन टूट कर दो भागों में विभक्त हो गया। इसके रूपहले भाग से बनी पृथ्वी और सुनहरा भाग बना आकाश। अंडे की सफेदी से पर्वत (पहाड़) का जन्म हुआ और झिल्ली से बादल बने। तरल पदार्थों से सागरों का जन्म हुआ आदि। ईसाइयों के धर्मग्रन्थ बाईबिल के अनुसार स्वयं परमपिता परमेश्वर ने अपने हाथों से 6 दिन में सृष्टि की रचना की। इस्लाम के धर्मग्रन्थ कुरान के मत में-''अल्लाह ने आसमानों और पृथ्वी को 6 दिनों में उत्पन्न किया आदि।''

तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि पहले जल था उसके बाद पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार के बहुत विचार मिलते हैं जो कि कुछ तो अनुमान प्रमाणों से दूर होने के कारण असत्य समझे जाते हैं और कुछ सत्य। सत्य और असत्य में दार्शनिक दृष्टि से विचार करें तो ज्यादा अन्तर जान नहीं पड़ता है। यह ऐसा ही अन्तर है जैसे प्रकाश और अन्धकार। प्रकाश को किसने बताया कि यह

प्रकाश है, जब अन्धकार रहा तभी तो हम प्रकाश को जान सके। एक बिन्दु के समाप्त होते ही दूसरा बिन्दु अपने-आप समाप्त हो जाता है। एक की सत्यता के लिए दूसरे का रहना आवश्यक है, नहीं तो बात समझ में नहीं आ सकती है। कई सारे असत्य बिन्दु ही सत्य तक पहुँचाते हैं।

1.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि सामान्यतया तारों के समूह को आकाशगंगा कहते है। इसके पर्याय हैं- मिल्की वे, क्षीरमार्ग, मन्दाकिनी एवं गैलेक्सी। आकाशगंगा उस स्थल विशेष की संज्ञा है, जिसमें पृथ्वी और हमारा सौरमण्डल स्थित है। सूर्य से लगभग 32000 प्रकाश वर्ष दूर हमारी आकाशगंगा का केन्द्र है। यह केन्द्र का भाग गैस की घूमती हुई पट्टी जैसा परलक्षित होता है। आकाश में जो नीहारवत् तारों के पुंज दिखाई देते हैं, उन्हें ही निहारिका कहते है। ये तारों की तरह प्रकाशित होते हैं परन्तु ये तारे नहीं हैं क्योंकि इनका आकार तारों की तरह नहीं है। सामान्यतया आकाश में दो नीहारिकाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं जिनको देवयानी और त्रिभुज नाम से जाना जाता है। दूरदर्शक यंत्र के माध्यम से दस करोड़ से अधिक नीहारिकाओं का ज्ञान वैज्ञानिकों को प्राप्त हुआ है।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

आकाशगंगा- आकाशगंगा से तात्पर्य उस मण्डल से है जिसमें हमारा पृथ्वी और सौरमण्डल स्थित है।

निहारिका – आकाश में स्थित निहारवत् तारों के पुंज को निहारिका कहते है ।

क्षीरमार्ग – आकाशगंगा का पर्याय

मन्दाकिनी – आकाशगंगा का पर्याय

अनन्त – जिसका कोई अन्त न हो

भुवः - सप्तोर्ध्व लोकों में एक लोक

पुंज – बिम्ब

देवयानी – निहारिका का एक नाम

स्थल – स्थान

लोक – संसार

सृष्टि – समस्त चराचर जगत

दीप्तिमान – प्रकाशमान

गैलेक्सी – आकाशगंगा

क्षीर – दूध

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. ग
3. क
4. ग
5. ख
6. ख
7. क

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अर्वाचीनं ज्योतिर्विज्ञानम् - रमानाथ सहाय
2. ग्रह नक्षत्र – त्रिवेणी प्रसाद सिंह
3. नीहारिकायें – गोरख प्रसाद
4. नक्षत्र विज्ञान – डॉ. सुरकान्त झा
5. इस इकाई में आकाशगंगा एवं निहारिका की छायाचित्र गूगल के गैलेक्सी इमेज से ली गई है।

1.10 सहायक पाठ्यसामग्री

ग्रहगति का क्रमिक विकास – श्रीचन्द्र पाण्डेय

नक्षत्र विज्ञान – डॉ. सुरकान्त झा

नक्षत्र विद्या – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र

सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न –

1. भारतीय ज्ञान परम्परा में आकाशगंगा को परिभाषित करते हुए उसके स्वरूप पर प्रकाश डालें।
2. आकाशगंगा का विस्तृत वर्णन कीजिये।
3. निहारिका किसे कहते है? उसके स्वरूपों की व्याख्या कीजिए।
4. भारतीय ज्योतिष में आकाशगंगा एवं निहारिका के महत्व पर प्रकाश डालिये।
5. आकाशगंगा एवं नीहारिका में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

इकाई – 2 सौर परिवार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 सौर परिवार : परिचय, परिभाषा व स्वरूप
2.3.1 विभिन्न मत में सौरपरिवार की उत्पत्ति
2.3.2 ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त
2.4 सारांशः
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.7 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई0 (एन)-101 प्रथम खण्ड के द्वितीय इकाई **'सौरपरिवार'** से सम्बन्धित है। ब्रह्माण्ड में वैसे तो कई सौरमण्डल है, लेकिन हमारा सौरमण्डल/सौर परिवार (Solar System) सभी से अलग है, जिसका आकार एक तश्तरी जैसा है। हमारे सौरमण्डल में सूर्य और वे सभी खगोलीय पिंड जो सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं, सम्मलित हैं, जो एक दूसरे से गुरुत्वाकर्षण बल द्वारा बंधे हैं। सौरमण्डल में सूर्य का आकार सब से बड़ा है जिसका प्रभुत्व है, क्योंकि सौरमण्डल निकाय के द्रव्य का लगभग 99.999 द्रव्य सूर्य में निहित है। सौरमण्डल के समस्त ऊर्जा का स्रोत भी सूर्य ही है। सौरमण्डल के केन्द्र में सूर्य है तथा सबसे बाहरी सीमा पर नेप्च्युन ग्रह है। नेपच्युन के परे प्लूटो जैसे बौने ग्रहो के अलावा धूमकेतु भी आते हैं।

खगोल शास्त्र, एक ऐसा शास्त्र है जिसके अंतर्गत पृथ्वी और उसके वायुमण्डल के बाहर होने वाली घटनाओं का अवलोकन, विश्लेषण तथा उसकी व्याख्या (explanation) की जाती है। यह वह अनुशासन है जो आकाश में अवलोकित की जा सकने वाली तथा उनका समावेश करने वाली क्रियाओं के आरंभ, बदलाव और भौतिक तथा रासायनिक गुणों का अध्ययन करता है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. सौरपरिवार को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेगें।
2. सौरपरिवार के महत्त्व को समझा सकेगें।
3. सौरपरिवार के विभेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. सौरपरिवार का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. सौरपरिवार के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

2.3 सौरपरिवार – परिचय, परिभाषा व स्वरूप

सूर्य का परिवार ही सौर-परिवार कहा जाता है। इसी को 'सौरमण्डल' भी कहते हैं। इस ब्रह्माण्ड में असंख्य सूर्य हैं तथा असंख्य ही सौर-परिवार भी विद्यमान हैं। इन सारे सौर-परिवारों में हमारा सौर-परिवार अलग तरह का है क्योंकि अभी तक जीवन हमारे ही सौर-परिवार में दिखाई देता है। ऐसा नहीं कि अन्य सौर-परिवार जीवनविहीन हैं परन्तु अभी तक ऐसे अन्य सौर-परिवार का अन्वेषण नहीं हुआ जिसमें जीवन हो। अवश्य निकट भविष्य में हमारे सौर-परिवार का साथी खोज निकलेगा। इस प्रक्रिया में वैज्ञानिक सतत प्रयत्नशील हैं। प्रत्येक सौर-परिवार का संचालक उसका सूर्य (तारा) होता है। हमारा सूर्य नौ ग्रहों के परिवार का मुखिया है। ये ग्रह हैं-बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि,

यूरेनस, नेप्च्यून और प्लूटो। इन ग्रहों के कम-से-कम 65 उपग्रह, सैकड़ों क्षुदग्रह हैं। सूर्य के परिवार में धूमकेतुओं और उल्कापिंडों को भी माना जाता है।

हमारी आकशगंगा के केन्द्र से प्रायः 30000 से लेकर 33000 प्रकाश वर्ष दूर एक कोने में हमारा सौर'-परिवार स्थित है। गैस और धूल (अन्तरिक्ष धूल) की घूमने वाली पट्टी, जिसे आदि सौर नीहारिका भी कह सकते हैं, से इसका जन्म हुआ। इसी घूमने वाली पट्टी से ग्रहमण्डल के सभी सदस्यों की उत्पत्ति हुई। ग्रहों के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द 'प्लैनेट' ग्रीक शब्द 'प्लेनेटेस' से निकला है। इसका अर्थ होता है घुमक्कड़ या यायावर। आकाश में हमेशा स्थिर दिखाई देने वाले तारों से अलग ये ग्रह अपनी स्थिति बदलते रहते हैं इसीलिए इन्हें 'प्लेनेट' या घुमक्कड़ कहा जाता है। ग्रहों का विभाजन आन्तरिक एवं बाह्य ग्रहों के रूप में किया गया है। बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल को आन्तरिक ग्रह तथा बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेप्च्यून और प्लूटो बाह्य ग्रह हैं। पृथ्वी आन्तरिक ग्रहों में सबसे बड़ी और घनी है। सभी आन्तरिक ग्रह घने चट्टानों से बने हैं और इन्हें पार्थिव ग्रह कहा जाता है क्योंकि ये पृथ्वी के समान हैं। आन्तरिक ग्रहों में मात्र पृथ्वी और मंगल के ही उपग्रह हैं। बाह्य ग्रहों का एक बड़ा उपग्रहीय परिवार भी है। ये प्रायः हाइड्रोजन और हीलियम गैस से बने हैं। इनको बार्हस्पत्य कहते है। ये प्रायः हाइड्रोजन और हीलियम गैस से बने हैं। इनको बार्हस्पत्य या जीवियन कहते हैं क्योंकि ये सभी ग्रह प्रायः बृहस्पति के ही समान हैं। जीव ग्रीक भाषा बृहस्पति को ही सूचित करता है। भारत में इसे गुरु कहा गया है सौर-परिवार में सबसे भारी गुरुत्व बल वाला ग्रह यही है इसलिए इसे गुरु कहा गया। सभी बाह्य ग्रह तीव्र गति से घूमते हैं। इनका घना वातावरण भी है। ये आन्तरिक ग्रहों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म तत्वों से बने हैं। बाह्य ग्रहों में से प्लूटो अपने आप में इनसे कुछ भिन्न हैं क्योंकि यह आन्तरिक ग्रहों की तरह घना समझा जाता है। ये सारे ग्रह सूर्य की परिक्रमा दीर्घवृत्ताकार कक्षा में करते हैं जिसकी अवधारणा पूर्व काल में हमारे आचार्यों ने ग्रहों के उच्च और नीच को प्रदर्शित करते हुए की थी।

2.3.1 सौर-परिवार की उत्पत्ति : -

सौर-परिवार की उत्पत्ति ही नहीं अपितु ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों की उत्पत्ति 'हिरण्याण्ड' से ही हुई । इस सन्दर्भ में शतपथ ब्राह्मण कहता है। 'आपः' निश्चय ही आरम्भ में सलिलावस्था में ही था। इसमें स्वयंभू ब्रह्म द्वारा कामना हुई कैसे हम प्रजारूप फैलें। उन्होंने श्रम किया। उन्होंने तप किया। उन तपती हुई आपों में हिरण्याण्ड उत्पन्न हुआ। यह हिरण्याण्ड एक वर्ष तक परिप्लव (चक्र में तैरना) करता रहा। तब संवत्सर बीत जाने पर पुरुष प्रकट हुआ1। इस वचन में हिरण्यगर्भ की पर्यप्लवन रूपी गति का स्पष्ट निर्देश मिलता है। हिरण्याण्ड संवत्सर पर्यन्त तैरता रहा। यह काल गणना किन नियामों

पर आधारित थी, एक ज्ञातव्य विषय है। कह सकते हैं कि ब्रह्म के संवत्सर पर्यन्त वह तैरता रहा। इस तरह का वर्णन वायुपुराण में भी मिलता है कि अन्दर उसके ये लोक, अन्दर सम्पूर्ण जगत्, चन्द्र, आदित्य, नक्षत्र, ग्रह, वायु के साथ उसमें थे। प्रकाश और अन्धकार से युक्त जो कुछ था, उस अण्ड में था। आपों से जो दश गुणा थे, बाहर से अण्ड आवृत्त था। कया वह महद् अण्ड एक ही था? क्या उस एक ही अण्डे से अनगिनत सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारे आदि उत्पन्न हुए1? इन सभी प्रश्नों का उत्तर विष्णुपुराण में उपलब्ध होता है। यथा-

अण्डानां तु सहस्त्राणां सहस्राण्ययुतानि च।
ईदृशानां तथा तत्र कोटि-कोटि शतानि च।।[2]

अर्थात सहस्त्रों (हजारों) अण्डों के हजारों, दश हजारों अण्डे थे। ऐसे अण्डे वहाँ करोडों-करोड़ों सौ में थे। पुनः इसी प्रकार का प्रसंग वायुपुराण में मिलता है। यथा -

अण्डानामीदृशानां तु कोट्यो ज्ञेयाः सहस्रशः
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च कारणस्यायमात्मनः।।[3]

अर्थात् ऐसे अण्डे सहस्रों करोड़ थे। ये तिर्यक, ऊर्ध्व (ऊपर) और अध (नीचे) थे। इन्हीं अंडों का फल ये दूरस्थ सृष्टियाँ ;ळंसंगपमेद्ध हैं। इस विचार की पुष्टि के लिए पं. भगवद्दत्त महोदय ने अपनी पुस्तक वेद विद्या निदर्शन में 'डच' ज्योतिषी का मत उद्धृत किया। यथा-

The total number of stars in galactic system including the most distant and faint ones is estimated by the dutch astronamer Kapteyn, to whom we........Most careful study of the Milky way to be about 40 billions.[4]

अर्थात् हमारी एक सृष्टि Galaxy में तारों की संख्या करोड़ों से भी अधिक है। वस्तुतः करोड़ों अंडों ने करोड़ों सृष्टियाँ Galaxies उत्पन्न की। इस प्रकार सिद्ध होता है कि भारतीय चिन्तनधारा के ही अनुरूप वैज्ञानिक चिन्तनधारा भी आगे बढ़ी और विकसित हुई।

1- वायुपुराण 4/73–75
2. विष्णुपुराण 2।7।27
3. वायु पुराण 49।151
4. G. Gamaw the birth and death of sun p. 183

सौर परिवार को चित्र में देख सकते है –

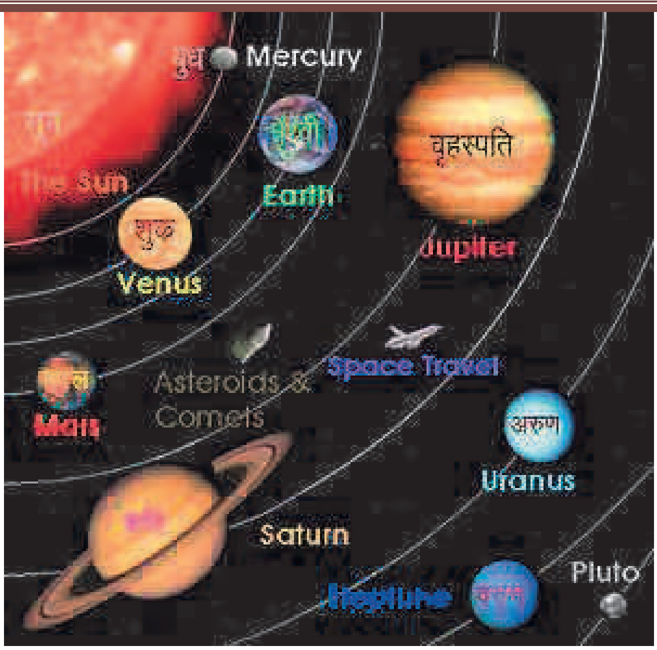

वैज्ञानिकों की दृष्टि में सौर–परिवारोत्पत्ति

हमारे सौर–परिवार में दो प्रकार के ग्रह हैं–एक आन्तरिक और दूसरे बाह्य। आन्तरिक ग्रहों का निर्माण गुरु पदार्थों से हुआ है जबकि बाह्य ग्रहों में भारी पदार्थों की मात्रा अधिक नहीं है तथा आन्तरिक ग्रहों की अपेक्षा बाह्य ग्रहों के उपग्रहों की संख्या भी अधिक है। इस सन्दर्भ में वैज्ञानिक भी एक मत नहीं हैं। वैज्ञानिकों के भी दो वर्ग हैं जो दो पृथक्–पृथक् प्रकार से सौर–परिवार की उत्पत्ति मानते हैं, यथा–

(अ) एकरूपतावादी एकपैतृक परिकल्पना (Unifarmitancan and Uniparental Hypothesis) – एकपैतृक परिकल्पना के अनुसार सौरमण्डल की उत्पत्ति एक ही बृहद् पिण्ड के मन्दक्रमिक परिक्रमा के विकास से हुई। इस सिद्धान्त में माना गया है कि सौर–परिवार की उत्पत्ति नीहारिका के मन्द क्रमिक परिभ्रमण से हुई। इस एकरूपतावादी परिकल्पना के कुछ विद्वान् एवं मत इस प्रकार हैं–

1. काण्ट महोदय की नीहारिक परिकल्पना।
2. लाप्लास महोदय की नीहारिका परिकल्पना।
3. वाइजेकर की नीहारिका परिकल्पना।
4. अल्फवेन की विद्युत् चुम्बकीय परिकल्पना।
5. कुइवर की उल्कापिण्ड परिकल्पना।
6. श्मिड् की उल्कापिण्ड परिकल्पना।

अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुख्य रूप से पश्चिमी विद्वानों के अनुसार पृथ्वी एवं अन्य ग्रहों के उद्गम की वैज्ञानिक व्याख्या प्रारम्भ होती है। पश्चिमी विद्वानों के अनुसार इस शताब्दी से वैज्ञानिकों ने प्रत्येक परिकल्पना का विवेचन प्रारम्भ किया। खगोल विद्या का विकास मुख्य रूप से मनगढ़न्त कल्पनाओं के लिए अच्छा नहीं रहा। इसका श्रेय सर्वप्रथम जर्मन दार्शनिक काण्ट को जाता है जिन्होंने सन् 1755 में एक पुस्तक लिखी कि–"मुझे

पदार्थ दो मैं सृष्टि की रचना कर दूँगा''। इस पुस्तिका में आपने पृथ्वी एवं आकाशीय पिंडों की उत्पत्ति के बारे में लिखा, परन्तु एक दार्शनिक की प्रस्तुत कृति की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान 40 वर्ष बाद आकृष्ट हुआ। काण्ट के सिद्धान्त से प्रायः मिलता–जुलता परन्तु गणित की दृष्टि से उससे कई अच्छा एक नवीन सिद्धान्त फ्रांसीसी खगोलज्ञ और गणितज्ञ लाप्लास (Laplace) ने उपस्थित किया। काण्ट और लाप्लास दोनों ने ही सौर–परिवार की उत्पत्ति नीहारिका सिद्धान्त (नेव्युलर हाईपाथिसिस) के आधार पर की। ये लोग मानते थे कि सूर्य और ग्रहों उपग्रहों की उत्पत्ति एक वृहद् नीहारिका से हुई। यह निहारिका गैस एवं अति सूक्ष्म विश्व धूल मेघ कणों से बनी है। सूर्य गैस के गोले के रूप में निहारिका के मध्य में स्थित है। केन्द्राकर्षण शक्ति के कारण यह नीहारिका इसके चारों तरफ घूमती है। नीहारिका में स्थित छोटे–छोटे कणों में संघर्ष होने लगा, जिससे कणों ने सिमट कर छोटी–छोटी नीहारिकाओं का रूप ले लिया। यही नीहारिकाएँ ग्रह और उपग्रह बने। यह सिद्धान्त लगभग 200 वर्ष तक निर्विवाद रहा। इसके पश्चात् इस पर प्रश्न उठने लगे। लाप्लास ने नीहारिका परिकल्पना के अनुसार ग्रहों का निर्माण सौरपरिवार के बाहरी भाग से प्रारम्भ होना चाहिए तथा सबसे अंतिम में बुध ग्रह का निर्माण होना चाहिए। लाप्लास के अनुसार ग्रहों के निर्माण करने वाले वलय एक ही समतल धरातल में होंगे। इसलिए ग्रहों की कक्षाओं का झुकाव शून्य होना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं है। दूसरी आपत्ति यह कि एक पिंड के चारों तरफ घूमता हुआ दूसरा कोई पिण्ड लें। उसकी दूरी और वेग पर एक साथ विचार करें तो कोणीय वेग प्राप्त हो जाता है। कोणीय वेग का स्थानान्तर तो हो सकता है परन्तु नाश नहीं, यह एक सिद्धान्त है। इसलिए सूर्य और ग्रहों का जो कोणीय संवेग है वह पहले अभ्र (गैसीय) में ही केन्द्रित रहा होगा। इस समय सौर तन्त्र का सारा कोणीय सम्वेग बड़े ग्रहों में ही है, जबकि लाप्लास के अनुसार सूर्य में ही अधिकांश भाग होना चाहिए था।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए हम सूर्य के चुम्बकीय क्षेत्र पर विचार कर सकते हैं। स्वीडन के वैज्ञानिक एच. आल्वेन (H.Alfven) का मत है कि ग्रहों की उत्पत्ति के पश्चात् चुम्बकीय बल के कारण सौर–घूर्णन मन्द पड़ गया और कोणीय सम्वेग सूर्य के मूल अभ्र से हट कर अवशिष्ट भाग में स्थानान्तरित हो गया। कुछ विद्वानों के हट कर अवशिष्ट भाग में स्थानान्तरित हो गया। कुछ विद्वानों के विचारों में ग्रहों, उपग्रहों की रचना उल्काओं एवं उल्का कणों के सम्मीलन से हुई। इस विचारधारा के प्रवर्तकों में बेल्जियम निवासी लिगन्दे एवं श्मिड् महोदयों का नाम प्रमुख है। इसके पश्चात् अब हम प्रलयवादी द्विपैतृक सिद्धान्तों की विवेचना करेंगे।

(आ) प्रलयवादी द्विपैतृक परिकल्पना (Cataclysmic fiparental hypothesis) –इस परिकल्पना के अनुसार हमारे सौर–परिवार की उत्पत्ति दो तारों के संघर्ष एवं विस्फोट आदि प्रलयकारी परिणाम से हुई। इस वर्ग में भी विभिन्न वैज्ञानिकों के मत एवं परिकल्पनाएँ निम्नलिखित हैं, इनमें से विशेष मतों की अलग से व्याख्या की गई है–

1. बफन की संघर्षण (भिड़न्त) परिकल्पना।
2. चेम्बरलेन एवं मोल्टन महोदय की ग्रहाणु परिकल्पना।
3. जीन्सजेफ्रीज की ज्वारीय परिकल्पना।
4. रसेल एवं लिटिलिटन की युग्मतारा परिकल्पना।
5. रासगन की विखण्डन परिकल्पना।
6. ए. सी. बनर्जी महोदय की 'सिफीड' परिकल्पना।
7. फ्रेडहायल की नवतारा परिकल्पना।

इन सिद्धान्तों के अनुसार सौर–परिवार की उत्पत्ति में प्रायः दो सहायक है। इसलिए इनको अर्थात् इन सिद्धान्तों के समूह को द्विपैतृक सिद्धान्त कहा गया। इनमें से विशेषकर महत्त्व रखने वाले सिद्धान्तों की सामान्य चर्चा अधोलिखित रूप में की गई है।

1. बफन की संघर्षण परिकल्पना

सर्वप्रथम काण्ट महोदय से भी पूर्व सन् 1745 में फ्रांसदेशीय जार्जकातेदबफन महोदय ने एक वैज्ञानिक परिकल्पना प्रस्तुत की। इस परिकल्पना के अनुसार एक विशाल तारे की सूर्य के साथ जबरदस्त भिडन्त हुई। इस संघर्षण से सूर्यांश पदार्थ विखंडित होकर सुदूर तक गया। इस सूर्यांश पदार्थ के द्वारा ही हमारे ग्रह एवं उपग्रह बने। इस प्रकार सौर–परिवार की उत्पत्ति हुई।

2. चेम्बरलेन एवं मोल्टन की ग्रहाणु परिकल्पना

अमेरिकन विद्वान चैम्बरलेन और मोल्टन का कहना है कि सूर्य के समीप दूसरे तारे के आने से सूर्य में बड़ी उथल–पुथल मची होगी और सूर्य में गुरुत्वाकर्षण के कारण बड़ी–बड़ी उत्ताल तरंगे उठी होंगी। इसके कारण ही बहुत सारा सूर्यांश पदार्थ आकाश में जा गिरा होगा। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार चन्द्रमा में ज्वार आ जाता है। सूर्य से पृथक् हुआ यह सूर्यांश पदार्थ पहले आग के गोले की भाँति ही गर्म रहा होगा। शनैः शनैः यह पदार्थ ठंडा होने लगा और सूर्य के आकर्षण में घूमते हुए इस पदार्थ ने ही ग्रह उपग्रहों का रूप धारण कर लिया।

3. जीन्सजेफ्रीज की ज्वारीय परिकल्पना

1919 ई. में सन् में सर जीन्स महोदय ने ज्वारीय परिकल्पना का प्रतिपादन किया। 1929 ई. में वर्ष में जेफ्रीज महोदय ने जीन्स महोदय की परिकल्पना में संशोधन किया। इस परिकल्पना के अनुसार आदिकालीन स्थिति में सूर्य एक गैसी पिंड था। एक तारा घूमता हुआ सूर्य के समीप आया। इस घूमते हुए तारे के कारण सूर्य में ज्वार की उत्पत्ति हुई अर्थात् सूर्य में ज्वार रूप में उभार आया। कालान्तर में वह तारा घूमता हुआ विलीन हो गया। सूर्य और तारे के मध्य में जो पदार्थ उत्पन्न हुए थे वे 'सिगार' की आकृति में थे। ज्वारीय पदार्थों के पिण्ड धीरे–धीरे सूर्य के आकर्षण में आए और आकर सूर्य के चारों ओर घूमने आरम्भ हुए। इस प्रकार धीरे–धीरे सौर–परिवार की उत्पत्ति हुई।

4. रसेल की युग्मतारा परिकल्पना

श्री. एच. एन. रसेल महोदय के अनुसार आदि काल में हमारे सूर्य के चारों तरफ एक तारा घूम रहा था। कुछ समय पश्चात् एक विशालकाय तारा घूते हुए तारे के बाहर से गुजर रहा था। उसके आकर्षण से जो सूर्य का चक्कर लगा रहा था उससे वायव्य पदार्थ आकर्षण से जो सूर्य का चक्कर लगा रहा था उससे वायव्य पदार्थ पृथक् हुआ। ये वायव्य पदार्थ ही सूर्य के चारों तरफ घूमता हुआ सौर–परिवार के रूप में परिणत हुआ।

5. फ्रेडहायल की नवतारा परिकल्पना

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के गणितज्ञ प्रो. फ्रेडहायल महोदय ने सन् 1939 ईस्वीय वर्ष में 'नेचर ऑफ दि यूनिवर्स' नामक एक निबन्ध लिखा। इसमें उन्होंने सौर–परिवार की उत्पत्ति की व्याख्या एक नूतर ढंग से की। इनके अनुसार सूर्य के समीपस्थ सुपरनोवा तारे में विस्फोट हुआ। उस विस्फोट के परावर्तन शक्ति के कारण सुपरनोवा तारे का केन्द्र भाग 'क्रोड' सूर्य के आकर्षण से बाहर निकल गया और वहाँ स्थित अवशिष्ट गैसीय मेघ (वायव्य पदार्थ) सूर्य के चारों तरफ घूमने लगा। इसी वायव्य पदार्थ ने सौर–परिवार का रूप धारण कर लिया।

निहारिका–ग्रहाणु परिकल्पनाओं में तुलना

निहारिका परिकल्पना	ग्रहानु परिकल्पना
(क) सौर–परिवार की उत्पत्ति एक ही तारे से हुई।	(क) सौर–परिवार की उत्पत्ति दो तारों के संघर्षण से हुई।
(ख) आदि अवस्था में गैसीय पदार्थ विद्यमान था।	(ख) ग्रहाणु आदि ठोस अवस्था में थे।
(ग) आरम्भ में ऊष्मा अवस्था थी।	(ग) आरम्भ में शीतलावस्था थी।
(घ) तापमान क्रमशः न्यूनता की ओर आया।	(घ) तापमान क्रमशः बढ़ा।
(ङ) आदि अवस्था में वायुमण्डल था।	(ङ) आदि अवस्था में वायुमण्डल नहीं था।

2.3.2 भारतीय चिन्तन धारा में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त

ग्रह, नक्षत्र, तारे, आकाशगंगाएँ, उल्काएँ, धूमकेतू, दैत्य, मानव, देवतादि समस्त जीव एवं भूर्भुवादि चतुर्दश लोक समन्वित भाव से जहाँ होते हैं उसी का नाम ब्रह्माण्ड है। इसी को विकल्प से सृष्टि कहा गया है। वेदों तथा उपनिषदों में ब्रह्माण्ड का वर्णन सम्यक् प्रकार से कई जगहों पर दिखाई देता है। आदिकाल से ही मनुष्यों के पास विश्वोत्पत्ति के रहस्य को जानने की मुख्यतः दो प्रविधियाँ उपलब्ध थीं। जिसमें पहली प्रविधि का नाम अध्यात्म विज्ञान तथा दूसरी प्रविधि का नाम भौतिक विज्ञान था। आध्यात्मिक विज्ञान में योग एवं दिव्य दृष्टि के द्वारा समस्त ज्ञान प्राप्त होता था। समग्र ज्ञान के लिए आध्यात्मिक विधि सर्वाधिक उपयुक्त एवं समीचीन है क्योंकि आधि–भौतिकविधि (फिजिकल टेक्नोलाजी) के द्वारा तो केवल पंचज्ञानेन्द्रिय गम्य ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है। इसके इतर विषयों का ज्ञान इस प्रविधि के द्वारा नहीं किया जा सकता है। यह ध्रुव सत्य है क्योंकि इस प्रविधि का अधिकतर ज्ञान परीक्षणशालाओं में होता है। परीक्षणशालाओं (प्रयोगशालाओं) की सीमा जहाँ समाप्त हो जाती है वहीं से प्रारम्भ होती है अध्यात्म विज्ञान की सीमा। इसलिए यह अध्यात्मक विज्ञान सामान्य के लिए अगम्य हो जाता है। अध्यात्मक विज्ञान ने **''यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे''** के सिद्धान्त के द्वारा ही सौर जगत के रहस्य को समझा और समझाने का भी प्रयत्न किया। इसी आधार पर हमारे वेदों, पुराणों एवं अन्य शास्त्रों के ब्रह्माण्डोत्पत्ति ज्ञान को मुख्यतः चार भागों में विभक्त किया गया था। यथा–

1. विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति।
2. विराट् पुरुष द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति।
3. ब्रह्मा के द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति।
4. प्रजापति के द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति।

1. विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति

ऋग्वेद में सृष्टि के स्रष्टा विश्वकर्मा हैं। परमेश्वर के गुणों की संज्ञा ही देवता है। ब्रह्माण्ड का सृजन देवताओं ने ही किया है। वे देवता हैं विश्वकर्मा, विष्णु, सविता, इन्द्र, वरुण आदि। ये देवता सृष्टि–निर्माण में विभिन्न कार्य करते हैं। इन्हीं के सहयोग से

ब्रह्माण्ड–निर्माण का कार्य पूर्ण हुआ। सृजन में जिस पदार्थ का उपयोग हुआ इन देवताओं ने उसका नाम अन्तरिक्ष धूलिमेघ कहा, जिसको आधुनिक वैज्ञानिक ''कास्मिक डस्ट'' के नाम से जानते हैं।[2]

2. विराट् पुरुष द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति

विराट पुरुष को ही लोग समग्र विश्व की आत्मा मानते हैं। जिनको वेदों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की आत्मा कहा गया उसे ही आज वैज्ञानिक लोग 'सुप्रीम स्प्रीट' के नाम से जानते हैं। संपूर्ण ब्रह्माण्ड का यह शरीर बीज मात्र है अर्थात् जैसे प्रत्येक वृक्ष के सूक्ष्म बीज में एक विशाल वृक्ष समाया रहता है उसी प्रकार एक ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म इकाई में विराट् ब्रह्माण्ड का स्वरूप समाहित रहता है। विराट पुरुष के अंगों से ही पृथ्वी, आकाश, वायु, सूर्य, चन्द्र, मनुष्य आदि जीवों के साथ हर पार्थिव तत्त्व की उत्पत्ति होती है।[1]

3. ब्रह्मा के द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में वर्णन मिलता है कि सृष्टि के आदि में न 'सत्' था और न 'असत्' था, न आकाश था, न वायुमण्डल था, न दिन था, न रात्रि थी, केवल ब्रह्मा की ही सत्ता मात्र थी। ब्रह्म के संकल्प मात्र से ही सृष्टि हुई। संकल्प एक जाज्वल्यमान तप था।[2] इसी तरह का वर्णन ऋग्वेद में कई जगहों पर मिलता है। *ऋग्वेद* के 10वें मण्डल के 190वें सूक्त में विशेष वर्णन मिलता है।[3] जाज्वल्यमान

10वें मण्डल के 190वें सूक्त में विशेष वर्णन मिलता है।[3] जाज्वल्यमान परम तेज से ऋत् (सत्य) की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् आकाश तथा आकाश के अनन्तर परमाणुओं की सृष्टि हुई तब पदार्थ का सृजन हुआ।[4]

4. प्रजापति के द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति

स्वयंभू परमेश्वर ने सर्वप्रथम विश्वोत्पत्ति के लिए प्रजापति की सृष्टि की। श्रुतियों में प्रजापति को ही हिरण्यगर्भ कहा गया है, यथा–**''हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्''।**[5] हिरण्यगर्भ एक ऐसी स्थिति है जहाँ से सृजन प्रक्रिया आज के वैज्ञानिकों को ठीक समझ में आती है क्योंकि जब तेज (ENERGY) हिरण्यगर्भ के रूप में परिणित होता है तभी विस्फोट होता है। विस्फोट के पूर्व की स्थिति हिरण्यगर्भ की ही है। कह सकते हैं कि तेज (ENERGY) की एक स्थिति ही हिरण्यगर्भ है। *शतपय ब्राह्मण* में इसी प्रसंग में हिरण्यगर्भ को अर्ध 'ज्योति' कहा गया है। यथा–**ज्योतिर्वै हिरण्यम्, ज्योतिरेषोऽमतं हिरण्यम्।**[6] निश्चित ही 'हिरण्यम्' एक अखंड मूल तत्व रूप ज्योति है। अमरकोशकार ने 'हिरण्यगर्भ' का निर्वचन इस प्रकार किया है यथा–**'हिरण्यं हिरण्यमयं अण्डं गर्भ इव।''** अर्थात् ज्योतिर्मय पिण्ड जिसके गर्भ में है वह हिरण्यगर्भ हुआ। वैदिक साहित्य में हिरण्यगर्भ का विवेचन विस्तृत रूप में मिलता है।

वेद दर्शन एवं विज्ञान सम्बन्धी रहस्यों के आगार हैं किन्तु वैदिक साहित्य की भाषा परोक्ष, प्रतीकात्मक एवं संकेतात्मक हैं। अलंकारों एवं रूपकों से परिपूर्ण भाषा है। सामान्य भाव में इन मन्त्रों के अर्थ एवं भाव समझ में नहीं आ पाते हैं क्योंकि वेदों के अपने प्रतीक (सिम्बल) हैं। वेद की परिकल्पनाओं के प्रतिपादन में उन प्रतीकों का वेद के भाव एवं अर्थ को समझने के लिए उसके प्रतीकों को समझना आवश्यक है अन्यथा हम वेद–वर्णित परिकल्पना को नहीं समझ सकते हैं।

1. तत्रैव, पुरुष सूक्त् 1/90, यजु. सं 31।2, अर्ध्य सं. 12।1
2. ऋग्वेद संहिता 10।229।2
3. ऋग्वेद संहिता 30।190।3
4. बृहदारण्यकोपनिषद् 2।9।20, विष्णुपुराण 1।2।23

5. यजुर्वेद संहिता 13।4, 60।9, ऋग्वेद सं. 10।121।1—7
6. शतपथ ब्राह्मण 6।7

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि में ब्रह्माण्डोत्पति के सिद्धान्त

सृष्टि विज्ञान (COSMOLOGY) आधुनिक गवेषणा का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। आइन्सटीन के सूत्रों के आधार पर आज आधुनिक विज्ञान ने सर्वाधिक प्रचलित सिद्धान्त महाविस्फोट माडल (बिगबैंग) तैयार किया। इस प्रतिमान के अनुसार सृष्टि का आरम्भ एक महान विस्फोट से प्रारम्भ हुआ। इसी प्रकार इस सिद्धान्त के सहित आधुनिक वैज्ञानिकों के ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सन्दर्भ में तीन सिद्धान्त विशेषतः प्रचलित हैं, यथा—

1. स्थिर दशा सिद्धान्त
2. विस्फोटक सिद्धान्त
3. स्पन्दनशील सिद्धान्त

1. स्थिर दशा सिद्धान्त

ब्रिटेन निवासी सुप्रसिद्ध खगोलशास्त्री डॉ. फ्रेडहायल महोदय इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं। इनके मतानुसार ब्रह्माण्ड का चिरकाल से ही अस्तित्व था। बहुत काल से प्रसारित होने वाले इस ब्रह्माण्ड में अभी तक परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है। आकाशगंगाएँ एक दूसरे से परस्पर दूर होती जा रही हैं। इस प्रसरण प्रक्रिया से आकाशगंगा के मध्य में जो अवकाश होता है अर्थात् जो खाली जगह होती है उस स्थान में हाइड्रोजन और गैसीय कणों की उत्पत्ति स्वयं ही होती है। ये गैसीयकण आकाशगंगा के मध्यभाग की रिक्तता को पूर्ण करते हैं। इस प्रकार यह ब्रह्माण्ड सतत प्रसरित हो रहा है। चिरकाल से ही इसकी उत्पादन प्रक्रिया चल रही है। आदि—अन्तहीन ब्रह्माण्ड वस्तुतः अनन्त और चिरजीवी है।

2. विस्फोटक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक कैम्ब्रिज निवासी खगोलशास्त्री श्री रायल महोदय हैं। वे कहते हैं कि इस ब्रह्माण्ड का जन्म एक हजार करोड़ वर्ष पूर्व सघन पदार्थों के मध्य महान विस्फोट से हुआ। विस्फोट के बाद तारों एवं आकाशगंगाओं का जन्म हुआ। ये सभी तारे, तारापुंज एवं आकाशगंगाएँ ब्रह्माण्ड के केन्द्र से परिधि की ओर फैल रही हैं। कह सकते हैं कि इसकी परिधि बढ़ रही है अर्थात् परिधि फैल रही है। यह प्रसरणशीलता महाविस्फोट से उत्पन्न हुई, ऐसा वैज्ञानिकों का मानना है। विस्फोट विशेषज्ञ खगोलशास्त्री मानते हैं कि जब प्रसरणशीलता अवरूद्ध होगी तो गुरुत्वाकर्षण से सभी आकाशीय पिंड परस्पर आकर्षण से विनष्ट हो जायेंगे। यह काल ब्रह्माण्ड के विनाश का काल होगा।

3. स्पन्दनशील सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का द्वितीय नाम दोलन सिद्धान्त भी है। इस सिद्धान्त के प्रवर्तक एलेन संडेज एवं उनके साथी वैज्ञानिक हैं। ये मानते हैं कि विस्फोट के अनन्तर प्रसरण होता है तथा प्रसरण के अनन्तर पुनः ब्रह्माण्ड संकुचित होता है। संकुचित होकर पुनः विस्फोट होता है तथा तब पुनः प्रसरण होता है। संडेज का कहना है कि प्रायः 120 करोड़ वर्ष पूर्व भयंकर विस्फोट हुआ, तब से यह विश्व फैलता जा रहा है। यह प्रसार—क्रम प्रायः 290 करोड़ वर्ष तक चलता रहेगा। तब गुरुत्वाकर्षण अधिक विस्तार पर रोक लगा देगा। इसके पश्चात् पदार्थ का संकुचन प्रारम्भ हो जाएगा। अन्ततः इसमें पुनः विस्फोट होगा और तब प्रसार होगा। यह प्रक्रिया 410 करोड़ वर्षों तक प्रायः चलती रहेगी। विश्व के विकास का यह नवीनतम सिद्धान्त समझा जाता है। इस प्रकार का क्रम, उत्पत्ति और विनाश का, सतत चलता रहता है। इस चक्र में आठ हजार करोड़ वर्ष व्यतीत होते हैं।

बोध प्रश्न : –

1. सौरमण्डल से क्या तात्पर्य हैं?
2. सौर परिवार की संरचना कैसे हुई?
3. सौर परिवार को परिभाषित करें।
4. सौर परिवार के उत्पत्ति के सिद्धान्त का विवेचन कीजिए?

ब्रह्माण्ड शब्द का व्यवहार विश्व शब्द से भी होता है। इस सन्दर्भ में डॉ. मुरारीलाल शर्मा महोदय कहते हैं कि विश्व शब्द से आज मात्र भौतिक विश्व ही ग्रहण किया जाता है। इस परिभाषा का सम्बन्ध विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र एवं गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से है। इसको हम ऐसा भी कह सकते हैं कि जहाँ भौतिकशास्त्र के नियमों का प्रयोग होता है। उसे ही भौतिक विश्व कहते हैं। यह विश्व दो प्रकार का उपलब्ध होता है–सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म विश्व में विद्युत कणों का संघात है जिनकी संज्ञा आधुनिक वैज्ञानिकों के द्वारा प्रोटोन, इलेक्ट्रोन, न्यूट्रान नाम से की गई है। प्रोटोन को धन विद्युत कण एवं इलेक्ट्रोन को ऋण विद्युत कण कहते हैं। न्यट्रान शून्य विद्युत कण है। इन विद्युत कणों के संख्या–भेद से विभिन्न मूल द्रव्यों का जन्म होता है। तापमान के परिस्थिति–भेद से विभिन्न मूल तत्वों की उत्पत्ति हो कर हमको स्थूल विश्व के रूप में दिखाई देते हैं। सूक्ष्म विश्व में विद्युत चुम्बक क्षेत्र की अदृश्य तरंगें भी विद्यमान हैं। गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र सुग्राह्य पदार्थ विशेष द्रव्य है। मूर्त्तद्रव्य की तीन प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं : तरल, जैसे–जलादि वस्तुएँ; गैस, जैसे धूम वाष्प आदि; दृढ़कायरूप, जैसे–मिट्टी पत्थर आदि। स्थूल विश्व में प्रायः मूर्त्तद्रव्यों का दर्शन होता है। यहीं स्थूल जगत के खगोलीय पिण्डों का दर्शन होता है। स्थूल एवं सूक्ष्म विश्व का विवेचन आधुनिक प्राचीन दोनों विधियों से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। इसी प्रसंग में भारतीय खगोलशास्त्रियों ने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सन्दर्भ में कुछ इस प्रकार कहा कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ब्रह्म–दिन के आरम्भ से हुई। ब्रह्मा के द्वारा ही समग्र की रचना हुई। ब्रह्म के दिन के अन्त में प्रलय और ब्रह्म के दिन के आरम्भ में पुनः सृष्टि हुई अर्थात् कह सकते हैं कि ब्रह्मा का दिन सृष्टि है तथा रात्रि प्रलय है। यह सृष्टि प्रलय का सिद्धान्त ब्रह्मा की पूर्णायु तक चलता रहेगा। इस ब्रह्माण्डोत्पत्ति की कल्पना में आधुनिक स्पन्दशील सिद्धान्त के समर्थक वैज्ञानिकों के द्वारा संपूर्ण ब्रह्माण्ड की आयु जो निश्चित की गई वह भी हमारे भारतीय सिद्धान्तों के ही समीप है, कह सकते हैं कि एक ही तरह की परिकल्पना है। यद्यपि एक कल्प में वर्षों की संख्या कुछ न्यून है। कल्प के अन्त में प्रलय की कल्पना की गई है। कल्प को ही ब्रह्म का दिन कहा गया है। ब्रह्मा के अहोरात्र में 2 कल्प हैं। क्योंकि जितने वर्षों का ब्रह्मा का दिन होता है उतने ही वर्षों की रात भी होती है, अतः एक कल्प में प्रायः 4.32×10^9 वर्ष माने गए हैं। इतने वर्षों तक सृष्टि की कल्पना तथा 4.32×10^9 वर्ष माने गए हैं। इतने वर्षों तक सृष्टि की कल्पना तथा इतने ही वर्षों तक प्रलय की कल्पना की गई है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने विश्व की कल्पना वलयाकर आकृति में की है परन्तु यह कल्पना भी नवीन नहीं है क्योंकि इसी प्रकार की कल्पना कई वर्षों पूर्व भास्कराचार्य ने अपने *सिद्धान्त शिरोमणि* में प्रस्तुत की है कि ब्रह्माण्ड का आकार 'सम्पुट कटाहवत्' (दो कड़ाइयों को मिलाने से जो आकृति बनती है) कहा है। भास्कराचार्य ने कटाहसम्पुटाकार ब्रह्मांड का व्यासमान 18712069200000000 योजन माना जो कि आइन्स्टीन के व्यासमान से कुछ न्यून है परन्तु यदि प्रसरणशील प्रक्रिया को स्वीकार किया जाए तो भास्कराचार्य का

व्यासमान न्यून ही होगा क्योंकि भास्कर के बाद आइन्सटाइन का सिद्धान्त प्रकाश में आया। इससे ज्ञात होता है कि हमारे आचार्यों ने भी ब्रह्मांड के विषय में अपनी स्वतंत्र कल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनका अनुकरण अप्रत्यक्ष रूप से आधुनिक वैज्ञानिकों ने किया है। भास्कराचार्य के अनुसार सृष्टि से शकारम्भ तक 1972947179 वर्ष व्यतीत हुए हैं अर्थात् अभी तक की आयु सृष्टि की 2 अरब वर्ष के समीप जाती है जबकि वर्तमान वैज्ञानिक 3 अरब वर्ष के समीप मानते हैं। इससे ज्ञात होता है कि भारतीय आचार्यों एवं वर्तमान विश्वोत्पत्ति के आचार्यों के विचारों में समानता है। यद्यपि संख्याओं का भेद दिखाई देता है परन्तु सैद्धान्तिक भेद की प्रतीति नहीं होती है।

ब्रह्माण्ड के स्थूल सदस्य

किसी भी स्थिति को समझने के लिए उसके घटकों को समझना भी आवश्यक है। ऐसा भी कह सकते हैं कि समष्टिगत रूप को समझने के लिए उसके प्रत्येक व्यष्टिगत रूप (इकाई) को समझना आवश्यक होगा। यदि हम आधे से अधिक मात्रा में व्यष्टिगत इकाइयों को समझ जाते हैं तो समष्टि को समझना सरल हो जाता है। अगर हम किसी व्यक्ति के शरीर की स्थूल कोशिकाओं को आधे से अधिक जानते हैं तो संपूर्ण शरीर के सन्दर्भ में हमको अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त हो सकती है। इसलिए ब्रह्माण्ड रूपी शरीर को समझने के लिए इसके व्यष्टिगत रूप को समझना आवश्यक होगा। सर्वप्रथम हम पृथ्वी से ही विचार करते हैं। पृथ्वी गोल है इसलिए इसको 'भूगोल' कहते हैं। प्राचीनकाल में ग्रहों की गणनाएँ पृथ्वी को ध्यान में रखकर की गईं। इसीलिए लोगों ने इस सिद्धान्त को भूकेन्द्रीय सिद्धान्त कह दिया। आज भी आकाश की स्थिति, परिस्थिति का ज्ञान पृथ्वी को ही ध्यान में रखकर किया जाता है। भारतीय प्राचीन ज्योतिषशास्त्र में यह धारणा स्पष्ट थी कि ग्रहों के केन्द्र में पृथ्वी नहीं है। पृथ्वी के बाहर उनका केन्द्र है इस गणना में इसे मात्र ग्रह केन्द्र के रूप में स्वीकार किया गया। इसी सन्दर्भ में आचार्य भास्कर (द्वितीय) कह रहे हैं कि–**यस्मिन वृते भ्रमति खचरो नास्ति मध्ये कुमध्ये''।**

आधुनिक विज्ञान में यह धारणा कोपरनिकस से प्रारम्भ होती है कि केन्द्र में पृथ्वी नहीं, सूर्य हैं। पृथ्वी अपने अक्ष पर भ्रमण करती है तथा वर्ष प्रमाण से वह सूर्य की परिक्रमा करती है। प्राचीन भारत में ग्रहों का भ्रमण प्रतिव्रत में माना जाता है जिसका केन्द्र ग्रह–केन्द्र के नाम से जाना जाता है। ग्रहों का स्पष्ट मान कक्षावृत्त में लिया जाता है जिसके केन्द्र में पृथ्वी है। इसी को ध्यान में रखकर लोगों ने भूकेन्द्रीय सिद्धान्त कह दिया। इस प्रकार, ग्रहों को स्पष्ट करने के लिए दो केन्द्रों की आवश्यकता समझ में आती है। आधुनिक खगोल सिद्धान्तकारों के अनुसार सभी ग्रह दीर्घवृत्ताकार कक्षा में भ्रमण करते हैं। भारतीय ज्योतिष की उच्चनीच परिकल्पना भी दीर्घवृत्ताकार परिकल्पना से भिन्न नहीं है, मात्र समझने का फेर है। सम्प्रति ग्रहों की गति के विषय में केपलर के तीन सिद्धान्त सर्वमान्य हैं जिनकी पुष्टि न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त से होती है। गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की चर्चा भी न्यूटन के कई सौ वर्ष पूर्व भारतीय ज्योतिष के ग्रन्थों में उपलब्ध होती है। ***सिद्धान्तशिरोमणि*** की रचना करते हुए गोलाध्याय में भास्कराचार्य ने सन् 1150 में ही स्पष्ट रूप में कहा है कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है जिसके कारण आकाश में स्थित गुरु पदार्थों को पृथ्वी अपनी ओर खींचती है।

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि सूर्य का परिवार ही सौर-परिवार कहा जाता है। इसी को 'सौरमण्डल' भी कहते हैं। इस ब्रह्माण्ड में असंख्य सूर्य हैं तथा असंख्य ही सौर-परिवार भी विद्यमान हैं। इन सारे सौर-परिवारों में हमारा सौर-परिवार अलग तरह का है क्योंकि अभी तक जीवन हमारे ही सौर-परिवार में दिखाई देता है। ऐसा नहीं कि अन्य सौर-परिवार जीवनविहीन हैं परन्तु अभी तक ऐसे अन्य सौर-परिवार का अन्वेषण नहीं हुआ जिसमें जीवन हो। अवश्य निकट भविष्य में हमारे सौर-परिवार का साथी खोज निकलेगा। इस प्रक्रिया में वैज्ञानिक सतत प्रयत्नशील हैं। प्रत्येक सौर-परिवार का संचालक उसका सूर्य (तारा) होता है। हमारा सूर्य नौ ग्रहों के परिवार का मुखिया है। ये ग्रह हैं-बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेप्च्यून और प्लूटो। इन ग्रहों के कम-से-कम 65 उपग्रह, सैकड़ों क्षुदग्रह हैं। सूर्य के परिवार में धूमकेतुओं और उल्कापिंडों को भी माना जाता है।

ब्रह्माण्ड शब्द का व्यवहार विश्व शब्द से भी होता है। इस सन्दर्भ में डॉ0 मुरारी लाल शर्मा महोदय कहते हैं कि

विश्व शब्द से आज मात्र भौतिक विश्व ही ग्रहण किया जाता है। इस परिभाषा का सम्बन्ध विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र

एवं गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र से है। इसको हम ऐसा भी कह सकते हैं कि जहॉं भौतिकशास्त्र के नियमों का प्रयोग होता है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

सौरमण्डल – सूर्य के परिवार को सौरपरिवार या सौरमण्डल कहते है।

ग्रह – गच्छतीति ग्रह :। जिसमें गति हो उसे ग्रह कहते है।

ब्रह्माण्ड - ग्रह, नक्षत्र, तारे, आकाशगंगायें, उल्का, धूमकेतु, देवता, दानव, मानवादि समस्त जीव एवं भूर्भुवादि चतुर्दश लोक समन्वित भाव से जहॉं होते है, उसी का नाम ब्रह्माण्ड है।

उल्का - टूटते हुए तारे का नाम 'उल्का' है।

बिगबैंग - ब्रह्माण्ड का जन्म एक महाविस्फोट के परिणाम स्वरूप हुआ है। इसे महाविस्फोट या बिगबैंग के नाम से जाना जाता है।

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सौर परिवार

2. ग्रह और उपग्रह

3. इस इकाई में छायाचित्र गूगल के **प्लेनेट इमेजस** से ली गई है ।

2.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सौर मण्डल के संरचना पर प्रकाश डालिये।

2. सौर मण्डल को परिभाषित करते हुए विस्तार से वर्णन कीजिये।

3. सौर मण्डल से क्या तात्पर्य है।

4. सौरमण्डल के विविध स्वरूपों पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 3 ग्रह–उपग्रह, तारे एवं तारापुंज

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 ग्रह एवं उपग्रह परिचय

3.3.1 प्राचीन एवं नवीन ग्रहों का भौतिक स्वरूप

3.4 तारा एवं तारकापुंज परिचय

3.4.1 तारों की उत्पत्ति एवं विनाश

3.4.2 तारों के नाम, गतियॉं, मापन, दूरियाँ

3.5 सारांशः

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 सहायक पाठ्यसामग्री

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई में आपका स्वागत है। यह इकाई ग्रह – उपग्रह से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने आकाशगंगा, निहारिका तथा सौर परिवार का अध्ययन कर लिया है, इस इकाई में आप ग्रह – उपग्रह की जानकारी प्राप्त करेगें।

सूर्य या किसी अन्य तारें के चारों ओर परिक्रमा करने वाले खगोलपिण्डों को **ग्रह** कहते हैं। अन्तराष्ट्रिय खगोल संघ के अनुसार हमारे सौरमण्डल में आठ ग्रह हैं - बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, वृहस्पति, शनि, यूरेनस और नेप्च्यून। इनके अतिरिक्त तीन बौने ग्रह और हैं – सीरीस, प्लूटों, एरीस। ज्योतिष के अनुसार ग्रह की परिभाषा अलग है। भारतीय ज्योतिष और पौराणिक कथाओं में नौ ग्रह माने जाते हैं, सूर्य, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि,राहु और केतु।

प्रस्तुत इकाई में हम ग्रह एवं उपग्रह का विस्तृत अध्ययन करेंगें। जिसके अध्ययन से पाठकों को उपरोक्त विषयों का ज्ञान सम्यक् रूप में हो जायेगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. सौरपरिवार को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. सौरपरिवार के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. सौरपरिवार के विभेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. सौरपरिवार का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. सौरपरिवार के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

3.3 ग्रह एवं उपग्रह परिचय

भारतीय ज्योतिष में ग्रहों की संख्या ९ मानी जाती हैं। १. सूर्य, २. चन्द्र, ३. मंगल, ४. बुध, ५. गुरु, ६. शुक्र, ७. शनि, ८. राहु व ९. केतु। यद्यपि कुल ग्रहों की संख्या 9 ही नही हैं, अपितु इससे और भी अधिक ग्रहों की संख्या हो सकती हैं, जो हमें ज्ञात नहीं परन्तु ज्योतिष शास्त्र में मूल रूप से ये **नवग्रह** को स्थान दिया गया है, अत: इससे सम्बन्धित चर्चा ही हम प्रस्तुत अध्याय में करेगें।

सामान्य अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें **ग्रह** कहा जाता है। सूर्य और चन्द्र तारा तथा उपग्रह हैं इसी प्रकार राहु और केतु छाया ग्रह हैं। छाया ग्रह अर्थात् सूर्य तथा चन्द्र के (पृथ्वी से देखने पर) पथों के मिलन के दो बिंदु (चौराहे) हैं। मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, व शनि यह **पाँच ग्रह** हैं, लेकिन ग्रंथों में कहीं-कहीं इन्हें तारा कहा गया हैं। भारतीय फलित ज्योतिष में प्लूटो आदि ग्रहों का स्थान नहीं है। इसमें कारण उनकी दूरी, प्रकाश की कमी या धीमा होना नहीं है, क्योंकि अन्य ग्रहों की तुलना में शनि बहुत दूर और धीमा ग्रह होते हुए भी अनुपात में अधिक प्रभावशाली है। राहु-केतु तो हैं ही नहीं

फिर भी प्रभावित करते हैं। प्लूटो आदि ग्रहों का विचार प्रमाणिक ग्रंथो में नहीं है, इसलिए हम केवल ९ ग्रहों का विचार करते हैं। हालांकि ९ ग्रहों के अतिरिक्त अन्य बहुत से ग्रह-उपग्रह-पिंडों का विचार प्रमाणिक ग्रंथों में मिलता है। लेकिन अभी हम केवल नौ ग्रहों का विचार करेंगे।

प्राकृतिक उपग्रह या **चन्द्रमा** ऐसी खगोलीय वस्तु को कहा जाता है जो किसी ग्रह, क्षुद्रग्रह या अन्य वस्तु के इर्द-गिर्द परिक्रमा करता हो। जुलाई २००९ तक हमारे सौर मण्डल में ३३६ वस्तुओं को इस श्रेणी में पाया गया था, जिसमें से १६८ ग्रहों की, ६ बौने ग्रहों की, १०४ क्षुद्रग्रहों की और ५८ वरुण (नॅप्ट्यून) से आगे पाई जाने वाली बड़ी वस्तुओं की परिक्रमा कर रहे थे। क़रीब १५० अतिरिक्त वस्तुएँ शनि के उपग्रही छल्लों में भी देखी गई हैं लेकिन यह ठीक से अंदाज़ा नहीं लग पाया है के वे शनि की उपग्रहों की तरह परिक्रमा कर रही हैं या नहीं । हमारे सौर मण्डल से बाहर मिले ग्रहों के इर्द-गिर्द अभी कोई उपग्रह नहीं मिला है लेकिन वैज्ञानिकों का विश्वास है की ऐसे उपग्रह भी बड़ी संख्या में ज़रूर मौजूद होंगे।

जो उपग्रह बड़े होते हैं वे अपने अधिक गुरुत्वाकर्षण की वजह से अन्दर खिचकर गोल अकार के हो जाते हैं, जबकि छोटे चन्द्रमा टेढ़े-मेढ़े भी होते हैं (जैसे मंगल के उपग्रह - फ़ोबस और डाइमस)।

ग्रह एवं उपग्रहों का महत्व -

समस्त ज्योतिष का मूलाधार ग्रह ही है, जिसके आधार पर हम ज्योतिषोक्त फलादेशादि कर्तव्य करते है । स्कन्धत्रय में सिद्धान्त स्कन्ध का मूलाधार ग्रह ही है । ग्रहों का उपग्रह होता है । **ग्रहस्य समीपं उपग्रहम्** । वस्तुत: उपग्रहों की चर्चा अर्वाचीन ज्योतिर्विदों ने की हैं । चन्द्रमा का कोई उपग्रह नहीं होता । ग्रहों का प्रभाव मानव जीवन पर भी पड़ता है, जिसका उदाहरण हम सूर्य एवं चन्द्रमा से प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त कर सकते है । ग्रहों का महत्व न की केवल मानव जीवन के लिए अपितु समस्त चराचर प्राणियों के लिए है ।

प्राचीन एवं नवीन ग्रहों का स्वरूप

आदित्य (सूर्य)

ऋग्वेद में सूर्यादि ग्रहों के उत्पत्ति के सन्दर्भ में विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा गया है कि सूर्य पूरे संसार की आत्मा है।[1] यही जीवन को देने वाला है। सूर्य के बिना पृथ्वी में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। यह सूर्य स्वयं जल कर हमें जीवन शक्ति प्रदान करता है। सूर्य से आने वाली ताप की मात्रा यदि कुछ ही परिवर्तित हो जाए तो पृथ्वी में जीवन का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। ताप की वृद्धि होने पर हम जल जाएँगे और ताप की न्यूनता होने पर ठंढ से सिकुड़ कर मर जाएँगे। इसलिए सूर्य जगत् की आत्मा है। सूर्य को हम आदि में उत्पन्न होने के कारण **आदित्य** कहते हैं। आदित्य को ही सूर्य भी कहा गया है। पृथ्वी–अन्तरिक्ष–द्यु की सृष्टि के पश्चात् द्यु स्थान में आदित्य की उत्पत्ति स्वीकार की गई। प्रजापति ने अपने सृजन कामना के अनन्तर वायु के सहयोग से अन्तरिक्ष में मिथुन का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् एक अण्डे की उत्पत्ति हुई, प्रजापति ने उस अंडे का स्पर्श किया और यशस्वी होने की कामना की, जिसके फलस्वरूप इसी से आदित्य की उत्पत्ति हुई।[2] *काठक संहिता* में कहा गया है कि वायु तथा अन्तरिक्ष के मिथुनीभाव से

सूर्य की उत्पत्ति हुई और अन्तरिक्ष में आप एवं अग्नि की मायास्वरूप वायु का स्वतंत्र अस्तित्व है इसलिए सूर्य में पार्थिवांश की बात निराधार हो जाती है। आदित्य में वायु, आपः तथा अग्नि का पूर्णतः समावेश होता है।[3] इस रश्मिपुंज रूपी आदित्य में 'आपः' की सत्ता विद्यमान रहती है। जैसा कि *शतपथ ब्राह्मण* में कहा गया है कि आदित्य आपः का अधिष्ठान है, जहाँ वह तपता है।[4] वैदिक विज्ञान में ईश्वर की मूल आद्या भौतिक शक्ति को, जो त्रिकाल सत् है, अदिति प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है। सृष्टि उत्पत्ति की ईश्वरीय कामना को वहन करने हेतु जब मूल आद्या शक्ति रचना के प्रधान चरण को वहन करने हेतु जब मूल आद्या शक्ति रचना के प्रधान चरण में नियोजित होती है तो उसकी वैदिक संज्ञा अप् या आपः है। कह सकते हैं कि वैदिक विज्ञान में सृष्टि रचना हेतु नियोजित मूल शक्ति का प्रथम रूप या परिणाम 'आपः' कहा गया है। सूर्य के प्राण वायु, अग्नि, आपः का समावेश है परन्तु सूर्य में पार्थिवांश नहीं के बराबर है। इस पार्थिवांश नहीं के बराबर है। इस पार्थिवांश के सन्दर्भ में एक योरोपीय वैज्ञानिक का मत निम्नांकित है, यथा–

The earth's density is same four times as great as the sun's since the mean density of the earth is 5.5 times that of water. That of the sun (taking the density of water as unity) is 1.4 already. We are begnning to glimpse the fact that the sun cannot be in a solid state for the constituent materials are on the everage much less dense. Then these solid materials of which the earth is compased.

The Sun's mean density which is only one quarter of the earth's and since the time of sacchi and lockyear it has been realised and repeatedly confirmed that the sun is a wholly gaseaus globe[1].

पृथ्वी का घनत्व सूर्य के घनत्व से प्रायः 4 गुणा अधिक हैं। यदि पानी का घनत्व 1 माने तो पृथ्वी का घनत्व 5.5 होगा। इसी आधार पर सूर्य का घनत्व 1.4 है और गुरु का 1. 3 है। घनत्व से स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूर्य ठोस पिंड नहीं अपितु हल्की गैसों से बना है। अब हमें ठीक ढंग से समझने के लिए पृथ्वी को समझना होगा। पृथ्वी का व्यास प्रायः 12700 कि.मी. है और इसका भार लगभग 6600000000000 टन है। सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास से 109 गुना अधिक है। सूर्य इतना बड़ा है कि इसमें हमारी पृथ्वी जैसे 12 लाख पिण्ड समा सकते हैं परन्तु सूर्य पृथ्वी से 13 लाख गुणा भारी नहीं है क्योंकि सूर्य हल्की गैसों से बना है। अर्थात् सूर्य का घनत्व पृथ्वी से कम है तथापि सूर्य पृथ्वी से प्रायः 330000 गुणा भारी है। यह हमसे प्रायः 149600000 किलोमीटर दूर है। ज्योतिष में इस दूरी को खगोलीय इकाई के रूप में ग्रहण किया जाता है। इस दूरी को एक मानकर अन्य ग्रहों की दूरियाँ नापी जाती है।

सूर्य की उत्पत्ति के विषय में दशम मण्डल में एक 'ऋचा'[1] की व्याख्या में *'वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य'* नामक पुस्तक में डॉ. विष्णुकान्त वर्मा महोदय ने कहा है कि सूर्य की उत्पत्ति के समय ही समस्त नक्षत्रों की उत्पत्ति होती है। उस समय कुछ लोक (सृष्टियाँ) जोड़े में उत्पन्न होते हैं जिन्हें राशियाँ (MULTIPLE STARS) कहते हैं। समस्त लोकों की उत्पत्ति हाइड्रोजन–हीलियम नामक युगल गैसों के साहचर्य से होती है। तत्त्व मीमांसक इस सूर्य को जब मूल शक्ति अदिति के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ देखते हैं तब ही यह समझना चाहिए कि वे समस्त लोगों के उद्भव को ठीक प्रकार से देख रहे हैं। ऋग्वेद की ही एक अन्य ऋचा[2] में कहा गया है कि किस प्रकार मूल आद्या शक्ति प्रकृति से आदि सृष्टि काल में प्रकट हुए महासूर्य हिरण्यगर्भ से कालान्तर में लोकों (पिण्डों) की उत्पत्ति

हुई। इस उत्पत्ति की अन्तिम कड़ी रूप सूर्य आज भी हमारे लिए ऊषाओं और दिन–रात का सृजन इसी प्रकार कर रहा है।

सूर्यताप

'असौ वै सूर्यो योऽसौ तपति'।[3] **'यश्चासौ तपते सूर्यः'**[4] **'सूर्यादुष्णं निस्रवते सोमाच्छीतं प्रवर्तते'**[5] वह सूर्य तपता है। सूर्य से ऊष्मा होती है। भूमिस्थ जीवन पर सूर्य के ताप का क्या प्रभाव होता है? इस प्रश्न का उत्तर वेदों एवं पुराणों में बहुत स्थलों पर दिखाई देता है, यथा–

उद्यन्तं च पुनः सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशात्।

1. यदेदेन मदधुर्यज्ञियासो दिवि देशः सूर्यमादितेयम्।
   यदा चरिष्णु मिथुनावभूतामादित प्रापश्यन्कुवनानि विश्वा।। ऋग्वेद 20।88।11
2. विश्वात्मा अग्निं भुवनाय देवाः वैश्वानरं केतुमह्यमकृष्वन्।
   आ यस्ततानोपसो विभातीरयो ऊर्णेति तमो अर्चिषायन्।। ऋग्वेद 10।88।12
3. कौषीतकि ब्राह्मण 5।8
4. ब्रह्माण्ड पुराण पू. 25।11
5. तत्रैव 22।20

उद्यन्तं च पुनः सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशात्।
यश्चासौ तपसे सूर्यः पिबन् अम्भो गभस्थिभिः।।
पार्थिवाग्निविमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः।
उदिते हि पुनः सूर्ये ह्यौष्ण्यमाग्नेय माविशेत्।
संयुक्तो वह्निना सूर्यस्तपते तु ततो दिवा।।[1]

अर्थात् पार्थिव अग्नि के परमाणु 'आपः' के साथ सूर्य रश्मियों द्वारा सूर्यमण्डल की शुचि अग्नि के साथ मिश्रित होते हैं। उदय होते हुए सूर्य में आग्नेय उष्णता प्रविष्ट होती है। वही पार्थिव अग्नि की उष्णता सूर्य रश्मियों में ताप उत्पन्न करती है। वह्नि से संयुक्त सूर्य दिव में तपता है। वैदिकालीन सृष्टि सम्बन्धित विचारों में 'आपः' एक महत्त्वपूर्ण परमाणु इकाई है 'वेद विद्या–निदर्शन' में पं. भगवत् दत्त ने कहा कि हाइड्रोजन 'आपः' का ही रूपान्तर है। यह सुव्यक्त है। अतः वैदिक विज्ञान की अवधारणा के अनुसार यह निश्चित है कि सूर्य में आपः की माया ही प्रधान है। इस आपः के अतिरिक्त सूर्य में सभी प्राणों का वास है परन्तु प्राणों में भार नहीं होता है। सम्भवतः सूर्य में आपः और आग्नेय परमाणुओं का अनुबन्ध होता रहता है। अतः सूर्य तपता रहता है।

सूर्य ताप के सन्दर्भ में पाश्चात्य वैज्ञानिकों का मत -

It has been said that the sun's atmosphere consists largely of hydrogen. As a working hypothesis, we shall take this to hold good also for the in teriar. Now we know that the mean density of water if hydrogen of this density were to behave like a gas, then the elementary gas-law-requires that far a pressure equal to the average calculated above, the temperature must be about 3 million degrees. Under these condition the hydrogen would practically campetely ionined and the value given for the temperature takes account of this.

किसी भी तारे की उत्पत्ति एवं विनाश एक विशेष प्रकार की घटना से होता है। इसी प्रकार 5 सौ करोड़ वर्ष पूर्व हमारा सूर्य भी उत्पन्न हुआ। क्योंकि हमारा सूर्य भी एक तारा ही है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह सूर्य धीरे–धीरे रक्तदानव अवस्था को प्राप्त करेगा। उस समय सूर्य का व्यास बहुत बढ़ जाएगा। बुध, शुक्र, पृथ्वी

सभी सूर्य की परिधि में आ जाएँगे और ये ग्रह नष्ट हो जाएँगे। प्रायः 500 करोड़ वर्षों में सूर्य 'श्वेतवामन' के रूप में परिणत होकर अपनी मृत्यु को प्राप्त करेगा।

तारों की उत्पत्ति एवं विनाश के सम्बन्ध में विशेष चर्चा इससे पूर्व की गई है।

प्रलय काल में सूर्य

स्वयं प्रकाशित होने वाले सूर्यादि लोक भी नाशवान है। ये भी नित्य प्रकाश के स्रोत नहीं हैं। सभी लोकों का प्रकाशक यदि कोई है तो वह परब्रह्म परमेश्वर सत्य ही हो सकता है, यथा–

वैश्वानरं विश्वहा दीदिवासं मन्त्रेग्निं कविमच्छावदामः।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वोतावस्ताहुत देवः परस्तात्।।[1]

Both sun and earth an account of sun's superior gravity have a relative movement based on mutual attraction.[2]

समस्त सौर–परिवार को प्रकाशित करने वाला सूर्य अपनी ही रश्मियों के द्वारा नष्ट हो जाता है। सारी रश्मियों के द्वारा नष्ट हो जाता है। सारी रश्मियाँ एक दूसरे में विलीन होती जाती हैं। इसका विवेचन *ब्रह्मांड पुराण* में मिलता है जिसका सारभूत स्वरूप इस प्रकार है–

सहस्रं यत्तु रश्मीनां सूर्यस्येह विनश्यति।।
ते सप्त रश्मयो भूत्वा एकेको जायते रवि।।
निर्दग्धेषु च लोकेषु तदा सूर्यस्तु सप्तभिः।।[3]

सूर्य पर हमेशा नित्य प्रति उथल–पुथल मचती रहती है। क्योंकि सम्प्रति सूर्य एक धधकता हुआ अग्निपिण्ड है जो क अपनी

1. ऋग्वेद 10 ।88 ।15
2. वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य पृ. 207
3. ब्रह्मांड पुराण पृ. 5 ।123, 125, 130

क्योंकि सम्प्रति सूर्य एक धधकता हुआ अग्निपिण्ड है जो क अपनी कुमारावस्था में चल रहा है। सूर्य की सतह पर ऊँची–ऊँची ज्वालाएँ उठती रहती है। सूर्य के खग्रास ग्रहण के समय इन ज्वालाओं को देखा जा सकता है। हर ग्यारह वर्ष बाद सूर्य अधिक सक्रिय हो जाता है। इन 11 वर्षों में सौर ज्वालाएँ कम–ज्यादा होती रहती हैं। इन्हीं वर्षों में सूर्य कलंक में भी ह्रास–वृद्धि देखी जाती है। आज वैज्ञानिकों ने पाया कि सूर्य की इस सक्रियता से भूमण्डल का जीवन प्रभावित होता है।

बुध

बुध, शशिज, चन्द्रज, सोमपुत्र, ज्ञ इत्यादि नामों से पुराणों में कहा गया है। यूनानी लोगों ने बुध को Mercury कहा। उनकी कथाओं के अनुसार बुध तेजी से एक देवता का सन्देश दूसरे देवता को देता है। भारत में बुध को वेदशास्त्र का ज्ञाता कहा गया है, यथा–

नारायण बुधं प्राहुर्वेदज्ञानविदो बुधः।[1]

वह बुधग्रह सूर्य का समीपवर्ती ग्रह है। अन्य ग्रहों की अपेक्षा यह सूर्य–ताप से अधिक प्रभावित है। प्रातः या सायं अर्थात् सूर्योदय से पहले पूर्व में तथा सूर्यास्त के पश्चात् पश्चिम में इसे देखा जा सकता है। बुधग्रह पर वायुमण्डल नहीं है। इसका धरातल प्रायः चन्द्र के धरातल के समान ही दिखाई देता है। चन्द्रमा के ही समान इस ग्रह का धरातल भी उल्का पिण्डों के टकराने से बने क्रेटरों से भरा पड़ा है। कुछ वैज्ञानिकों का मानना यह भी है कि बुध कभी शुक्र का उपग्रह रहा होगा। इस ग्रहा का अक्षीय भ्रमणकाल पृथ्वी की

अपेक्षा बहुत कम है इसलिए यहाँ दिन काफी बड़ा होता है। मेरिनर 10 ने हमें बताया कि बुध के चारों ओर एक चुम्बकीय क्षेत्र भी है परन्तु वह पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की अपेक्षा 100 गुणा निर्बल है। बुध ग्रह प्रायः पृथ्वी के 59 दिनों में अपने अक्ष पर एक चक्कर लगा लेता है। इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि बुध का एक दिन हमारे 59 दिनों के बराबर होता है। चन्द्र की तरह बुध भी हमें घटती–बढ़ती कलाओं के रूप में दिखाई देता है। बुध की इन कलाओं को दूरबीन से देखा जा सकता है। अमेरिकी अन्तरिक्ष यान मेरिनर–10 ने 1974 में यह बताया कि बुध पर खड्डे हैं तथा हाइड्रोजन व हीलियम का स्वल्प वायुमण्डल है जो ना के बराबर है। इस ग्रह पर जीवन के अस्तित्व की कोई सम्भावना नहीं है।

बुध ग्रह का भौतिक स्वरूप

1. सूर्य से दूरी	57909100 कि.मी.
2. व्यासमान	4878 कि.मी.
3. अक्ष परिभ्रमण काल	58.6 दिन
4. सूर्य के चारों तरफ भ्रमणकाल	87.97 दिन
5. द्रव्यमान	0.055 (पृथ्वी के सापेक्ष) 6. कक्षीय
उत्केन्द्रता	0.206 अंश
7. कक्षीय झुकाव	7^0.00 अंश (भूकक्षीय तल से)
8. कक्षीय गति	47.8 (कि.मी./सेकेंड)
9. पलायन गति	4.2 (कि.मी./सेकेण्ड)
10. गुरुत्वाकर्षण	0.38 (पृथ्वी = 1)
11. घनत्व	0.98 (पृथ्वी = 1)
12. पृष्ठीय तापमान	400^0 सेंटीग्रेड
13. उपग्रह संख्या	0 (शून्य)

शुक्र

शुक्र, दैत्यगुरु, सित, उशना, काव्य, भार्गव आदि नामों से शुक्र को जाना जाता है। आकाश में यह ग्रह बहुत चमकीला दिखाई देता है। शुक्र की खोज आकाश में आसानी से की जा सकती है। पश्चिम में सूर्य के अस्त के बाद सर्वाधिक चमकने वाला ही शुक्र होता है। शुक्र मे सन्दर्भ में *ब्रह्माण्ड पुराण* में एक मत मिलता है कि–

भार्गवस्य रथः श्रीमान् तेजसा सूर्यसन्निभः।
पृथिवीसम्भवैर्युक्तो ना वा वर्णे हयोत्तमैः।।
श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः।
कृष्णश्च हरितश्चैव पृषत् पृश्निरेव च।।[1]

अर्थात् भार्गव का रथ तेज में सूर्य के सदृश है। इसमें जो अश्व युक्त हैं वे पृथ्वी से उत्पन्न हैं। ये दश वर्ण के हैं–श्वेत, पिशंग, अश्व युक्त हैं वे पृथ्वी से उत्पन्न हैं। ये दश वर्ण के हैं–श्वेत, पिशंग, सारंग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित, पृषत और पृश्निः। इतने वर्ण शुक्र की रश्मियों के द्योतक हैं। शुक्र का तेज सूर्य के सदृश है। इस सन्दर्भ में आधुनिक वैज्ञानिकों का कहना है कि–

Venus reflects about 60 percent of the sunlight that falls upon it.[1]

सूर्योदय के पूर्व पूर्व आकाश में तथा सूर्यास्त के बाद पश्चिम आकाश में प्रायः एक

चमकीला तारा दिखाई देता है यही तारा शुक्र कहा जाता है। देहातों में इसे लोक सुकवा, भोरा का तारा, सायंकाल का तारा आदि भिन्न रूपों में कहते हैं परन्तु वास्तविक रूप में यह तारा नहीं, शुक्र ग्रह है। यह ग्रह बहुत प्राचीनकाल से ही पहचाना जाता है। वैदिक साहित्य में इसे शुक्र, वेन आदि नामों से जाना जाता है। यूनानी लोग इसे 'कुप्रिस' और रोमन लोग 'वीनस' नाम से पुकारते हैं। रोम में 'वीनस' को सौन्दर्य की देवी कहते हैं। 'वेन' और 'वीनस' शब्दों में अधिक साम्यता प्रतीत होती है। शुक्र ग्रह हमारी अपेक्षा सूर्य के अधिक पास है इसलिए उसे सूर्य से अधिक ऊष्मा मिलती है। शुक्र ग्रह को सूर्य की ऊर्जा हमसे ढाई गुणा अधिक मिलती है। शुक्र का सतही तापमान 400^0 सेंटीग्रेड से भी अधिक है। सोवियत संघ ने 'वेनेरा' और अमेरिका ने 'मेरिनर' नामक विमान शुक्र की खोज ने निमित्त शुक्र पर भेजे। इन्होंने शुक्र ग्रह का अन्वेषण किया तथापि शुक्र ग्रह के सन्दर्भ में अनेक बातें अज्ञात हैं क्योंकि शुक्र ग्रह के अक्षीय वेग के सन्दर्भ में वैज्ञानिकों के विभिन्न मत हैं। कुछ का कहना है कि एक दिन में शुक्र अपनी धुरी का एक भ्रमण पूरा करता है। अगर 243 दिनों की बात सही है तो चन्द्र, बुध, एवं शुक्र का प्रायः एक गोलार्द्ध अधिकतर सूर्य की ओर रहता होगा। शुक्र ग्रह में एक विशेष बात और है जो अन्य ग्रहों में नहीं है। शुक्र अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर नहीं बल्कि पूर्व से पश्चिम की ओर चक्कर लगाता है। इसी बात को लेकर हम इसे सौर–परिवार का एक अद्भुत ग्रह कह सकते हैं। शुक्र पर वायुमण्डल का दाब पृथ्वी की अपेक्षा 90 गुणा अधिक है। इसके वायुमण्डल में 96 प्रतिशत कार्बन–डायआक्साइड, 3.4 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा अल्प मात्रा में अन्य कुछ गैसें हैं, परन्तु ऑक्सीजन की मात्रा नहीं है। अतः जीवन की सम्भावना नहीं बन सकती। इस ग्रह के अपने चन्द्र भी नहीं हैं। पृथ्वी के कई गुणा अधिक शक्तिशाली विद्युत विसर्जन शुक्र ग्रह के वायुमंडल में उत्पन्न होती है।

शुक्र ग्रह का भौतिक स्वरूप

1. सूर्य से दूरी	108208900 कि.मी.
2. व्यासमान	12100 कि.मी.
3. अक्ष परिभ्रमण काल	243 दिन
4. सूर्य के चारों तरफ भ्रमणकाल	224.7 दिन
5. द्रव्यमान	0.8 (पृथ्वी के सापेक्ष)
6. कक्षीय उत्केन्द्रता	0.007 अंश
7. कक्षीय झुकाव	$7^0.24^1$ अंश (भूकक्षीय तल से)
8. कक्षीय गति	35.0 (कि.मी. / सेकेंड)
9. पलायन गति	10.3 (कि.मी. / सेकेण्ड)
10. गुरुत्वाकर्षण	0.89 (पृथ्वी = 1)
11. घनत्व	0.88 (पृथ्वी = 1)
12. पृष्ठीय तापमान	450^0 सेंटीग्रेड
13. उपग्रह संख्या	0 (शून्य)

पृथ्वी

एक समय आकाश में सर्वत्र वाष्प कण (गैस) व्यापक रूप से व्याप्त थे। वाष्प कणों के आकर्षण एवं विकर्षण से अणु–परमाणुओं की उत्पत्ति हुई। ये ही अणु परमाणु पृथ्वी की उत्पत्ति के कारणस्वरूप हैं। जैन दर्शन इसकी व्यापक चर्चा करता है, यथा–

अण्वादीनां संघाताद द्व्यणुकादय उत्पद्यन्ते।
तत्र स्वावस्थिताकृष्टशक्ति रेवाघसंयोगे कारणभावामापद्यते।।

इस सन्दर्भ में श्रुति कहती है– **''आकाशाद्वायुर्वायोरग्नि- रग्नेरापः अद्भयः पृथ्वी चोत्पद्यते''** अर्थात् आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। इससे ज्ञात होताअग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। इससे ज्ञात होता है कि आरम्भ में मात्र आकाश व वाष्प कण ही समस्त जगत्–मण्डल में व्यापक रूप से व्याप्त थे। इन्हीं के आकर्षण–विकर्षण से सृष्टि हुई।

हमारी पृथ्वी का भूमध्यरेखीय व्यास मान 12756 किलोमीटर है तथा ध्रुवीय व्यास 12714 कि.मी. है। इसके चारों तरफ वायुमण्डल का एक मोटा आवरण है जो अन्तरिक्ष से आने वाली घातक विकिरणों एवं उल्कापातों से हमारी रक्षा करता है। पृथ्वी के धरातल का 71 प्रतिशत भाग जल से ढका है तथा शेष भाग ही भूतल के रूप में जाना जाता है जिस पर दुनिया के सभी महाद्वीप हैं। पृथ्वी का एक चुम्बकीय क्षेत्र भी है और इसके चारों ओर आवेशित कणों की दो विकिरण पट्टियाँ हैं जिन्हें वान एलेन विकिरण पट्टियाँ कहते हैं। पृथ्वी अपनी धुरी पर झकोरा खाते हुए लट्टू के समान घूमती है। इस प्रकार अक्ष 26000 वर्षों में लट्टू के आकार में घूमते हुए एक चक्कर पूरा करती है। इसी के आधार पर तारों के सापेक्ष ध्रुव की स्थिति बदलती रहती है। वर्तमान में 'पोलारिस' तारा हमारा ध्रुव तारा है। परन्तु लगभग सन् 14000 तक 'लीरा' नक्षत्र मण्डल में स्थित 'वेगा' तारा ध्रुव तारा हो जाएगा। भारतीय ज्योतिष में कमलाकर भट्ट ने सर्वप्रथम ध्रुव तारे को चल–तारा कहा और यह स्पष्ट रूप में कहा कि ध्रुव स्थिर नहीं है, वह स्थान बदलता है। हमारी पृथ्वी सौरमण्डल का सबसे बड़ा ग्रह नहीं है। बुध, शुक्र, मंगल से हमारी पृथ्वी बड़ी है परन्तु शनि, बृहस्पति, यूरेनस तथा नेप्च्यून से छोटी है। सौर–परिवार का सबसे बड़ा ग्रह बृहस्पति है। यह हमारी पृथ्वी से 1300 गुणा बड़ा तथा 318 गुणा भारी है। कह सकते हैं कि बृहस्पति के अन्दर यदि हम पृथ्वी को डालें तो कम–से–कम 1300 पृथ्वियाँ बृहस्पति में समा सकती हैं। हमारी पृथ्वी का एक उपग्रह है जिसे हम चन्द्र कहते हैं। इसी के कारण पृथ्वी में ज्वारभाटा आता है तथा इसी के कारण सूर्य एवं चन्द्रग्रहण मुख्य रूप से होते हैं। पूरे सौर–परिवार में मात्र हमारी पृथ्वी ही ऐसी है जिस पर जीवन है।

पृथ्वी का भौतिक स्वरूप

1. पृथ्वी का व्यासमान–	
भूमध्यरेखीय	12756 कि.मी.
ध्रुवीय	12714 कि.मी.
2. अक्ष परिभ्रमण काल	23 धण्टा, 56 मिनट, 04 सेकेण्ड
3. कक्षीय परिभ्रमण काल	365.5 दिन
4. सूर्य से दूरी	149600000 कि.मी.
5. कक्षीय गति	29.8 कि.मी / सेकेण्ड
6. अक्षीय झुकाव	23.5 अंश
7. पलायन गति	11.2 कि.मी / सेकेण्ड
8. घनत्व	05.52 (जल की अपेक्षा)
9. पृष्ठीय तापमान	22^0 सेंटीग्रेड
10. वायुमण्डल के मुख्य अंग–	
नाइट्रोजन	78.5 प्रतिशत
ऑक्सीजन	21.0 प्रतिशत

11. भूपटल के मुख्य अंग–	
ऑक्सीजन	47 प्रतिशत
सिलिकन	28 प्रतिशत
एल्यूमिनियम	08 प्रतिशत
लोहक पदार्थ	05 प्रतिशत
12. भूतर का क्षेत्रफल	148326000 वर्ग कि.मी.
13. भूतल क्षेत्र	29 प्रतिशत
14. जलीय क्षेत्रफल	361740000 वर्ग कि.मी.
15. जलीय क्षेत्रफल	71 प्रतिशत
16. आयतन	1083208850000 घन कि.मी.
17. सर्वोच्च पर्वत (एवरेस्ट)	8848 मीटर
18. गहनतम गर्त (प्र. म. मैरीयन)	11033 मीटर
19. परिक्रमण मार्ग से दूरी	96 करोड़ कि.मी.
20. उपग्रह संख्या	01 (चन्द्र)

भूपटल

पृथ्वी की जिस ऊपरी सतह पर हम अपना व्यवहार करते हैं अर्थात् जिस पर हम मकान बना कर रहते हैं, खाद्य पदार्थ उपजाते हैं, वह भूपटल का ऊपरी भाग है। संक्षेप में कहें तो हम कह सकते हैं कि मिट्टी व शिलाओं से बने पृथ्वी के बाहरी आवरण को ही भूपटल कहते हैं। इसे ही पृथ्वी की पपड़ी भी कहते हैं। सन् 1928 में एफ. डब्ल्यू. क्लार्क और एच. एस. वाशिंगटन ने पृथ्वी के विभिन्न भागों से बहुत प्रतिदर्श (SAMPLES) एकत्रित किए और उनका रासायनिक विश्लेषण किया। लगभग 5159 विश्लेषणों के आधार पर पृथ्वी की पपड़ी की जो रासायनिक संरचना बताई गई वह निम्नलिखित सारिणी में दिया गया है।

भूपटल में रासायनिक योग

	तत्व	तत्वों के प्रतीक	मात्रा प्रतिशत में
1.	ऑक्सीजन	O	46.71
2.	सिलिकॉन	Si	27.69
3.	एल्युम्यूनियम	Al	08.07
4.	लोहा	Fe	05.05
5.	कैलसियम	Ca	03.65
6.	सोडियम	Na	02.75
7.	पोटिशयम	K	02.58
8.	मैग्नीशियम	Mg	02.08
9.	टाइटेनियम	Ti	00.62
10.	हाइड्रोजन	H	00.14
11.	फास्फोरस	P	00.13
12.	कार्बन	C	00.094
13.	मैगनीज	Mn	00.090
14.	गन्धक	s	00.052

15.	बेरियम	Ba	00.050
16.	विरल तत्व		00.244
		योग	100.00

भूपटल के अणुओं का योग

	अणु	**अणु सूत्र**	**मात्रा प्रतिशत में**
1.	सिलिका	$Si\ O_2$	59.07
2.	ऐल्यूमिना	$Al_2\ O_3$	15.22
3.	लोहिक आक्साइड	$Fe\ O_3$	03.10
4.	लोहस आक्साइड	$Fe\ O_2$	03.71
5.	मैगनीशिया	$Mg\ O$	03.45
6.	कैलसियम आक्साइड	$Ca\ O$	05.10
7.	सोडियम आक्साइड	$Na_2\ O$	03.71
8.	पोटेशियम आक्साइड	K_2O	03.11
9.	हाईड्रोजन आक्साइड	H_2O	01.30
10.	कार्बन–डाईआक्साइड	CO_2	00.35
11.	टाइटेनियम आक्साइड	$Ti\ O_2$	01.03
12.	फासफोरस आक्साइड	$P2\ O_2$	00.30
13.	मैगनीज डाईआक्साइड	$Mn\ O_2$	00.11
14.	जिरकॉन आक्साइड	$Zr\ O_2$	00.04
15.	बोरियम आक्साइड	$Ba\ O$	0.05
16.	स्ट्राशियम आक्साइड	$Sr\ O$	0.02
17.	शेष		0.33
		योग	**100.00**

अभ्यास प्रश्न -

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये ?

1. ग्रहों की संख्या –––––––– हैं ।

2. पृथ्वी का घनत्व सूर्य के घनत्व से ––––– अधिक है ।

3. शशिज .... को कहते है ।

4. सूर्य का समीपवर्ती ग्रह .... है।

5. पृथ्वी का अक्षपरिभ्रमण काल .... है।

उत्तर –

1. 9 2. 4 गुणा 3. बुध 4.बुध 5. 23 घण्टा 56 मिनट 8 सेकेण्ड

पृथ्वी का अन्तर्भाग : -

पृथ्वी के गर्भ में क्या है? वहाँ कैसी स्थिति है? इस विषय में बहुत मतमतान्तर हैं। प्रायः पृथ्वी के गर्भ में गर्म पिघला हुआ लावा अधिकतर लोग मानते हैं। वेदों में भी पृथ्वी को

अग्निगर्भा कहकर उद्धृत किया गया है। यथा–**'आग्नेयी पृथिवी'**[1], **'आग्नेयोऽयं लोकः'**[2], **'अग्निगर्भा पृथिवी'**[3]**।** इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में भी यह धारणा थी कि पृथ्वी का गर्भ अग्निवत् है।

1. ताण्डय ब्राह्मण 15।4।8 2. जैमिनीयोपनिषद् 9।37।2 3. शतपथ ब्राह्मण 14।94।21

पृथ्वी की लगभग 70 कि.मी. गहरी एक नरम परत है जिसको हम **भूपृष्ठ** कहते हैं। महाद्वीप एवं महासागर इसी पृष्ठभाग में स्थित है। भूकम्प जैसी घटनाएँ भी इसी क्षेत्र में होती हैं। इसके नीचे लगभग 700 कि.मी. तक गहरी कठोर चट्टानी परत है यही ज्वालामुखी चट्टानें भी विद्यमान रहती हैं। इसके अन्दर 2000 कि.मी. मोटी परत प्रायः अंगारे के समान गर्म परत है यह अधिक कठोर नहीं है। इसे भीतर का भाग खौलते हुए लोह आदि धातुओं से भरा है। इसके मध्य में एक ठोस गोलाकार पिण्ड भूकेन्द्र में धातुओं से भरा है। इसके मध्य में एक ठोस गोलाकार पिण्ड भूकेन्द्र में विद्यमान है जिसे हम सौलिड कोर भी कह सकते हैं।

भूकम्प की लहरों, ज्वालामुखियों, खदानों तथा संछिद्रों के अध्ययनोपरान्त पृथ्वी के अन्तर्भाग के सन्दर्भ में दो मुख्य बातें स्पष्ट होती है। पहली यह कि पृथ्वी के अन्दर गहराई की वृद्धि के साथ ही तापमान की वृद्धि भी होती है तथा दूसरी यह कि गहराई के साथ–साथ घनत्व की बढ़ोतरी भी होती है। पृथ्वी के गर्भ की दशा कैसी है? अन्तर्भाग ठोस है, द्रव है या वायत्व (गैसीय) है–जिसमें से एक उबला हुआ तथा दूसरा बिना उबला हुआ था–यह दिखाया कि उबला हुआ अंडा ही घूम सकता है। क्योंकि इसका भीतरी भाग ठोस है। पृथ्वी भी अपनी धुरी पर घूमती है। इसके विपरीत दूसरे वैज्ञानिकों ने यह माना कि पृथ्वी का तरल पदार्थ (लावा) इसका प्रमाण है। कुछ का कहना है कि गहराई में अत्यधिक दबाव विद्यमान है जिसके कारण स्थलीय पदार्थ उच्च तापमान पर होने पर भी ठोस वस्तुओं की तरह ही व्यवहार करते हैं। यदि किसी कारण से दबाव में कमी हो जाए तो ये वस्तुएँ तरल रूप में परिवर्तित हो जाएँगी तथा किसी भी दरार आदि के द्वारा बाहर निकल कर धरातल पर बहने लगेंगी। इसी प्रक्रिया को ज्वालामुखी कहते हैं। अतः यह कह सकते हैं कि ज्वालामुखी का लावा यह प्रमाणित नहीं करता कि भूगर्भ में तरल पदार्थ है। अभी कुछ वर्ष पूर्व तक भूविशेषज्ञों का कहना था कि पृथ्वी का अन्तःकेन्द्र निकिल और लोह का बना हुआ है परन्तु आधुनिकतम रूसी वैज्ञानिकों का कहना है कि यह केन्द्र भाग भी शैल पदार्थों से ही बना है, परन्तु यहाँ सर्वाधिक दबाव की स्थिति है जिसके कारण पृथ्वी का आन्तरिक घनत्व भी अधिक है। उत्तरोत्तर अनुसंधानों से नित्य–नूतन विचार भी आते रहते हैं।

चन्द्रमा

चन्द्र ही एक ऐसा ग्रह जिसने सर्वप्रथम मनुष्य को सर्वाधिक आकर्षित किया।

भारतीय वैदिक एवं वैदिकेतर साहित्य में शशि, इन्दु, विधु, चन्द्र, कलाधर, हिमगु, शीतांशु, क्षपाकर, हिमांशु, शीतरश्मि, प्रालेयांशु, सोम, शशांक, मृगांक, हिमकर, सुधांशु, रजनीकर आदि नामों से जाना जाता है। चन्द्र ही एक ऐसा पृथ्वी का उपग्रह है जिस पर मनुष्य के चरण पड़ चुके हैं।

प्रजापति ने सर्वप्रथम भूमि अथवा भूमितत्व को उत्पन्न किया। इसके पश्चात् मरुत गण आदि उत्पन्न हुए तदनन्तर प्रजापति ने आदित्य की सृष्टि की तथा आदित्य से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। इस सन्दर्भ में माध्यन्दिन मुनि का प्रवचन है कि–**सोऽकामयत। भूय एव स्यात्। प्रजायेतेति। स आदित्येन दिवं मिथुनं सम्भवत्। तत अण्डं समवर्तत। तद् अभ्यभृशत्।**

रेतो विवृहीति। ततश्चन्द्रमाऽसृज्यत। एष वे रेतः। अथ यदश्रु संरक्षितमासीत, तानि नक्षत्राण्यभवन्। अथ य कपाले रसो लिप्त आसीत् ता अवानतरदिशोऽभवन्। अथ यत् कपामासीत् ता दिशोऽभवन्।[1] पुनः इसी सन्दर्भ में अन्य विचार भी उपलब्ध होते हैं। यथा–**'आदित्याद्वै चन्द्रमा जायते'**[2] अर्थात् आदित्य से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। पुनः **'चन्द्रमा मनसो जातः'**[3] अर्थात् चन्द्र का चन्द्रत्व आह्लादकारी गुण प्रजापति के मन से उत्पन्न हुआ। पुराणों ने भी कुछ इसी प्रकार कहा। यथा–**ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्य सम्भवाः**[4]' **शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृतिकासु निशाकरः**[5]' **।**

1. शतपथ ब्राह्मण 6 |1 |2 |4
2. ऐतरेय ब्राह्मण 40 |5
3. तैतिरीय आरण्यक 3 |12, ऋग्वेद संहिता 10 |90 |10
4. वायु पुराण 1 |53 |28
5. ब्रह्माण्ड पुराण 1 |24 |130

चन्द्रोत्पत्ति के सन्दर्भ में पाश्चात्य मत

पाश्चात्य विद्वान मानते हैं कि चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई। चार्ल्स डारविन महोदय के पुत्र जार्ज एच. डार्विन महोदय के मत को लिखते हुए गेमो कहते हैं कि–The Separation of the moon from the parent body of the earth took place during a comparatively late stage of the evaluation.[1]

इमेनुएल–वेलीकोब्सकी महोदय तो इस मत के ठीक विपरीत कहते हैं कि चन्द्र से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। यहाँ पर चन्द्र का स्वल्पाकार सिद्धान्त में बाधक नहीं है, यथा–

The problem of the origin of the moon can be regarded as disturbing to the tidal theory. Being smaller than the earth the moon completed earlier the process of cooling and shrinking and the lunar volcanos had already ceased to be active. It is assumed that the moon possesser a higher specific weight than the earth.

It is assumed that the moon was produced from the superficial layers of the earth's body which are rich in light silicon.

But since the specific weight of the moon is greater than that of the earth it would sum to be move in accord with the theory that the earth was born of the moon despite its smallness.[2]

चन्द्रमा भौतिक स्वरूप

चन्द्र ही पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह है। यह पृथ्वी की अपेक्षा बहुत छोटा है। इस ग्रह का कक्षीय भ्रमण एवं अक्षीय भ्रमण तुल्य है। इसको ऐसा भी कह सकते हैं कि जितने समय में चन्द्र अपनी कक्षा में एक चक्कर पूरा करता है उतने ही समय में वह अपने अक्ष पर भी घूमता है। चन्द्रमा लगभग एक किलोमीटर प्रति सेकेण्ड के वेग से 27 दिन 7 घंटे, 43 मिनट, 11 सेकेण्ड में पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी करता है। इतने ही समय में अपने अक्ष (धुरी) पर एक चक्कर काट लेता है। इसीलिए चन्द्र का एक गोलार्द्ध सदा पृथ्वी की ओर रहता है। पृथ्वी से हमें चन्द्र का दूसरा गोलार्द्ध कभी नहीं दिखाई देता है। चन्द्रमा पर वायुमण्डल नहीं है। इसलिए वहाँ जीवन की सम्भावना नहीं है। वहाँ पर जलविहीन मरुस्थल दिखाई देते हैं। चन्द्रमा पर उल्का पिंडों की वृष्टि होती रहती है जिसके कारण वहाँ बहुत गहरे गड्ढों (गर्तों) की संख्या अधिक है। उन गर्तों के आकार विभिन्न प्रकार के हैं। चन्द्रमा पर पृथ्वी की अपेक्षा अति उतुङ्ग (ऊँचे) पर्वत शिखर हैं। चन्द्रमा के दक्षिण ध्रुव

प्रदेश में सबसे ऊँचा पर्वत शिखर 10660 मीटर का है। यह पृथ्वी के एवरेस्ट से भी ऊँचा है। वायुमण्डल के अभाव में यहाँ ध्वनि का संचार नहीं होता। ध्वनि संचार के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता होती है। वायुमण्डल के अभाव के कारण चन्द्रमण्डल से आकाश का वर्ण काला दिखाई देता है। चन्द्रमा में दिन के समय का तापमान 110^0 सेंटीग्रेट तक पहुँच जाता है जबकि रात का तापमान शून्य से नीचे 180^0 सेंटीग्रेट तक उतर जाता है। पृथ्वी की अपेक्षा चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति 1/6 भाग है अर्थात् जिस वस्तु का वजन पृथ्वी पर 60 कि.ग्रा. होगा उसका वजन चन्द्रमा पर केवल 10 कि.ग्रा. ही होगा। मनुष्य चन्द्र की मिट्टी व पाषाण खंडों को पृथ्वी पर लाया है और चन्द्र की सतह पर कई आधुनिक किस्म के यन्त्र स्थापित किए गए हैं जो नई–नई जानकारियाँ हमें दे रहे हैं। चन्द्र की भूमि पर 'लूनाखोद' जैसी स्वचालित गाड़ियाँ भी उतारी गई हैं।

चन्द्रमा का भौतिक स्वरूप

1.	पृथ्वी से दूरी	384400 कि.मी.
2.	व्यासमान	3476 कि.मी.
3.	अक्षीय भ्रमण काल	27.6 दिन
4.	कक्षीय भ्रमण काल	27.6 दिन
5.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0.055 अंश
6.	कक्षीय अवनतता (झुकाव)	5^0 9^0
7.	द्रव्यमान	0.0123 (पृथ्वी = 1)
8.	घनत्व	3.34 (जल = 1)
9.	गुरुत्वाकर्षण	0.165 (पृथ्वी = 1)
9.	गुरुत्वाकर्षण	0.165 (पृथ्वी = 1)
10.	पलायन गति	2.38 (कि.मी./सेकेण्ड)
11.	तापमान, अधिकतम	110^0 सेंटीग्रेट
	न्यूनतम	-180^0 सेंटीग्रेट

पृथ्वीग्रहण

चन्द्रग्रहण की ही तरह पृथ्वीग्रहण भी होता है। वास्तविक रूप में सूर्यग्रहण ही पृथ्वीग्रहण होता है क्योंकि चन्द्र छाया पृथ्वी पर पड़ती है अतः जिस पर छाया पड़ती है उसी का ग्रहण कहलाता है। प्रकाशमान वस्तु पर छाया तो पड़ ही नहीं सकती है। पृथ्वीग्रहण लोक व्यवहार में न होने के कारण हम उसे सूर्यग्रहण के नाम से जानते हैं।

यदि चन्द्र न होता तो

1. पृथ्वी का अहोरात्र मान 11 से 12 घंटे तक का होता।
2. समुद्री ज्वार सदा एक रूप में ही आते। ज्वार की ऊँचाई भी कम होती।
3. गुरुत्वाकर्षण नियम का सत्यापन विलम्ब से होता।
4. चन्द्रवार नहीं होता।
5. चन्द्रमा के बारह महीने नहीं होते।
6. भूमध्यरेखीय भार की अपेक्षा ध्रुवीय भार अधिक होता।
7. सारी रातें अमावस्या की तरह अंधकारमय होती।

सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी की गतियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक समय ऐसा

आएगा जब ग्रहण नहीं होगा। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि चन्द्र स्वकक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए कुछ दूर हट रहा है और पृथ्वी सर्पिलाकार कक्षा में सूर्य का चक्कर लगाते हुए सूर्य की तरफ जा रही है। यदि यह प्रक्रिया आगे भी जारी रही तो एक समय ऐसा आएगा जब चन्द्र सूर्य का ग्रह होगा और पृथ्वी के उपग्रह के अभाव में ग्रहण का अभाव हो सकता है, परन्तु यह समय बहुत दूर है।

मंगल

मंगल ग्रह का वर्णन पुराणों में बहुत स्थानों पर दृष्टिगोचर होता है और भौम, लोहितांग, अंगारक, सुरसेनापति, स्कन्द, कुज, भूमिपुत्र, कुमार आदि नामों से इसे जाना जाता है। यथा –

सुरसेनापतिः स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः।[1]
संयद्वसुश्च यो रश्मिः सा योनिर्लोहितस्य तु।।[2]
अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान् भौमस्यापि ग्रहो महान्।
पद्मारागारुणैरश्चैः संयुक्तो वह्निसम्भवैः।।[3]
अष्टाश्चः काञ्चनः श्रीमान् भौमस्यापि रथोत्तमः।
असङ्गैर्लोहितैरश्चैः सर्वगैरग्निसम्भवैः।।
प्रसर्पति कुमारो वै ऋजुवक्रानुवक्रगैः।[4]

अर्थात् अंगारक को सुरसेनापति अथवा स्कन्द भी कहते हैं। संयद्वसु जो रश्मि है वह लोहित (मंगल) की योनि है। आठ अश्वों का सुवर्ण–तुल्य, पद्मराग, अरुण और लोहित वर्ण अग्नि से उत्पन्न अश्वों वाला भौम का रथ है। मंगल (कुमार) के अश्व, ऋतु, वक्र और अनुवक्र गति से प्रसर्पण करते हैं।

पुराणों में कई नामों में से मंगल का एक नाम भूमिपुत्र भी है। वैज्ञानिक दृष्टि से इसका क्या अभिप्राय है, यह स्पष्ट नहीं है परन्तु इसका वर्णन ज्योतिष शास्त्र के अतिरिक्त अन्य कर्मकाण्डादि ग्रंथों में भी उपलब्ध होता है जहाँ जन्मस्थान अर्थात् उद्भूत स्थान पृथ्वी में उज्जैन निर्दिष्ट किया गया है। भारतवर्ष में मंगल को कई स्थानों पर सुरसेनापति अथवा युद्ध का देवता भी कहा गया है। मंगल के लाल रंग के कारण प्राचीन भारतीय इसे अंगारक एवं लोहितांग कहा करते होंगे।

मेरिनर–9 और वाइकिंग टोहक यानों द्वारा भेजे गए चित्रों और आँकड़ों से ज्ञान हुआ कि मंगल का धरातल लाल मिट्टी का है जिसके कारण उसका वर्ण लाल दिखाई देता है। यह लाल मिट्टी का

1. ब्रह्माण्ड पुराण पू. 24।48
2. वायु पुराण 53।48
3. विष्णु पुराण 2।12।28
4. ब्रह्माण्ड पुराण पू. 21।84–85

जिसके कारण उसका वर्ण लाल दिखाई देता है। यह लाल मिट्टी का है जिसके कारण उसका वर्ण लाल दिखाई देता है। यह लाल मिट्टी सम्भवतः लिमोनाइट (लोहे का एक आक्साइड) है। धरातल पर विभिन्न प्रकार के पत्थरों के टुकड़े बिखरे हुए हैं। मंगल पर धूल भरी आँधियाँ चलती हैं जिनके कारण वायुमण्डल गुलाबी रंग का दिखाई देता है। इसके वायुमण्डल में 95 प्रतिशत कार्बन–डायआक्साइड के अतिरिक्त नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और आर्गन गैसें लगभग समान मात्रा में है। कार्बन–डाइआक्साइड में अन्य गैसें अल्प मात्रा में विद्यमान हैं। वायुदाब बहुत कम है। पृथ्वी के वायुमण्डल के दाब से 260 गुना कम दाब है। इतने कम दाब में बर्फ सीधे ही भाप में परिवर्तित हो जाती है। इसीलिए मंगल की

सतह पर पानी नहीं है परन्तु प्रतीत होता है कि मंगल के वायुमण्डल में बादलों में भाप या क्रिस्टलों के रूप में अल्पाति–अल्प मात्रा में पानी विद्यमान है।

मंगल आकार में पृथ्वी से छोटा है। जब यह पृथ्वी के पास होता है तो इसका परीक्षण आसानी से किया जा सकता है। ऐसी स्थिति प्रत्येक दो वर्ष बाद आती है जब मंगल और पृथ्वी सूर्य के एक ही ओर होते हैं। मंगल पर बालू के टीले उसी प्रकार दिखाई देते हैं जैसे पृथ्वी के रेगिस्तानों में। टोहक विमानों द्वारा ज्ञात हुआ कि मंगल की सतह पर सूखी हुई नदी के विस्तृत मैदान, नहरें, गहरे विशाल गर्त और घाटियाँ हैं। एक विशालतम गड्ढा (गर्त) लगभग 5000 कि.मी. लम्बा, 120 कि.मी. चौड़ा तथा 6 कि.मी. गहरा है। मंगल के धरातल का आधा भाग क्रेटरों (गर्तों) से भरा है जबकि दूसरे अर्द्ध भाग पर, सौर–परिवार के सर्वाधिक विशालकाय निष्क्रिय ज्वालामुखी पहाड़ दिखाई देते हैं। सबसे बड़ा ज्वालामुखी 'निक्स ओलम्पिका' या 'ओलिम्पस मॉन्स' अपने आधार पर लगभग 600 कि.मी. चौड़ा है। मंगल की धुरी भी पृथ्वी की धुरी की भाँति अपने कक्षा तल पर 24^0 के कोण पर झुकी है, इसलिए वहाँ भी पृथ्वी की ही भाँति मौसम होते हैं। वैज्ञानिकों की गणना के अनुसार, मंगल के अक्ष का झुकाव प्रति दस लाख वर्षों में अधिकतम 35^0 से न्यूनतम 15^0 के बीच परिवर्तित होता रहता है। मंगल अत्यन्त निर्बल चुम्बकीय क्षेत्र है। मंगल पृथ्वी के दिनों के अनुसार 687 दिनों में सूर्य की एक परिक्रमा करता है। मंगल के दो उपग्रह हैं।

मंगल का भौतिक स्वरूप

1.	सूर्य से दूरी	225560000 कि.मी.
2.	सूर्य से अधिकतम दूरी	247040000 कि.मी.
3.	सूर्य से न्यूनतम दूरी	207000000 कि.मी.
4.	विषुवत् वृत्तीय व्यास मान	6794 कि.मी.
5.	ध्रुवीय व्यास मान	6752 कि.मी.
6.	कक्षीय परिभ्रमण काल	686.98 कि.मी.
7.	अक्षीय परिभ्रमण काल	24घं27मि.23से.
8.	कक्षीय उत्केन्द्रता	$0^0.092^1$
9.	कक्षीय झुकाव	$1^0 51^1$
10.	द्रव्यमान	0.11 (पृथ्वी = 1)
11.	आयतन	0.15 (पृथ्वी = 1)
12.	न्यूनतम तापमान	22^0 सेंटीग्रेड
13.	न्यनतम तापमान	-70^0 सेंटीग्रेड
14.	कक्षीय गति मान	24.00 (कि.मी. / सेकेण्ड)
15.	पलायन गति	5.0 (कि.मी. / सेकेण्ड)
16.	गुरुत्वाकर्षण	0.38 (पृथ्वी=1)
17.	घनत्व	0.71 (पृथ्वी=1)
18.	उपग्रह	02

मंगल के चन्द्र

हमारी पृथ्वी का एक चन्द्र है। पूर्व काल में लोगों को सौर–मण्डल के एक ही चन्द्र की जानकारी थी जो पृथ्वी का था। इसलिए चन्द्र शब्द से एक का ही ज्ञान होता था। इस समय हमारे सौर–मण्डल में चन्द्रों की संख्या प्रायः 65 से अधिक हो गई है। मंगल के

'फोबोस' 'डिमॉस' नाम के दो उपग्रह हैं। यूनानी भाषा में 'फोबोस' शब्द का अर्थ 'भय' और 'डिमॉस' शब्द का अर्थ 'संत्रास' होता है। 'फोबोस' उपग्रह एक अहोरात्र में मंगल की तीन परिक्रमा तथा 'फोबोस' उपग्रह एक अहोरात्र में मंगल की तीन परिक्रमा तथा 'डिमॉस' एक अहोरात्र में पाँच परिक्रमा पूरी करता है। फोबोस उपग्रह को मंगल धीरे–धीरे अपनी ओर खींच रहा है। वैज्ञानिकों का मत है कि आज से 3–7 करोड़ वर्षों के अनन्तर 'फोबोस' मंगल के ऊपर गिरेगा।

मंगल के इन चन्द्रों की खोज आकाश में नहीं हुई, यह एक दिलचस्प बात है। अंग्रेजी के लेखक जीनाथन स्विफ्ट ने 1726 में प्रकाशित अपने कल्पित कथानक 'गुलिवर की यात्राएँ' में जानकारी दी कि लापुत के खगोलविदों ने मंगल ग्रह के इन दो चन्द्रों की खोज की है। स्विफ्ट ने मंगल ग्रह के बारे में जो जानकारी दी, वह काफी हद तक सही है। जोनाथन स्विफ्ट ने कैसे अनुमान लगाया कि मंगल के दो चन्द्र हैं? स्विफ्ट से पूर्व 1610 में ही केपलर अनुमान लगा चुके थे कि मंगल के दो चन्द्र होने चाहिए। क्योंकि इसी साल गैलीलियो ने बृहस्पति के चार चन्द्रों की खोज की थी। केपलर ने सोचा कि चन्द्रों की संख्या ज्यामितीय श्रेणी में बढ़नी चाहिए। पृथ्वी का एक चन्द्र, बृहस्पति के चार चन्द्र तो मंगल के इस आधार पर दो चन्द्र होने चाहिए। बहुत अधिक सम्भव है कि जोनाथन स्विफ्ट को केपलर के इस अनुमान की जानकारी रही हो। जो भी हो, परन्तु स्विफ्ट के समय तक इन दो चन्द्रों को आकाश में खोज पाना सम्भव हुआ। अमेरिकी खगोलविद् 'आसफ हाल' ने कई रातों तक निरन्तर प्रयास करने पर एक शक्तिशाली दूरबीन से मंगल के इन दो चन्द्रों को खोज निकाला।

फोबोस का भौतिक स्वरूप

1.	भौम से दूरी	5955 कि.मी.
2.	व्यासमान	16 कि.मी.
3.	कक्षीय परिभ्रमण काल	7घं.39मि.14सें.
4.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0^{0}.017
5.	कक्षीय झुकाव	2^{0} (अंश)

डिमॉस का भौतिक स्वरूप

1.	भौम से दूरी	23490 कि.मी.
2.	व्यासमान	08 कि.मी.
3.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0^{0}·003
4.	कक्षीय परिभ्रमण काल	30घं.18मि.
5.	कक्षीय झुकाव	7^{0}

बृहस्पति

बृहस्पति हमारे सौर–परिवार का सबसे बड़ा ग्रह है। यह इतना बड़ा है कि हमारी पृथ्वी के आकार के 1300 पिंड इसमें समा सकते हैं। इसको हम ऐसा भी कह सकते हैं कि बृहस्पति नामक थैले में हमारी जैसी 1300 पृथ्वियाँ आ सकती हैं। भारतीय वाङ्मय में इसे सबसे बड़ी होने के कारण ही गुरु कहा गया है। भारतीय आख्यानों के अनुसार गुरु को बृहस्पति, सुराचार्य, देवाचार्य, आंगिरस, बृहत्तेज, जीव आदि कहा गया है। यूनानियों ने इसे 'जुपिटर' कहा। 'जुपिटर' इनका प्रमुख देवता है। वेदों में बृहस्पति को अंगिरस कहा गया है। यथा–

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तु विजातो रवेण विसप्तरश्मिरधमत् तमांसि।।[1]

अर्थात् बृहस्पति पहले उत्पन्न होता हुआ, महान् ज्योति से परम व्योम (आकाश) में सात मुख वाला, उच्च जन्म वाला, शब्द के साथ, सात रश्मियों से उसने परे फूँक दिया अंधकारों को।

अन्य ग्रहों की तुलना में बृहस्पति ग्रहा का गुरुत्वमान व भौतिक स्वरूप अधिक है। इसीलिए यह गुरु हो गया। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार गुरु का घनत्व सूर्य से किंचिद ही न्यून है। बृहस्पति की उत्पत्ति तिष्य नक्षत्र से हुई ऐसा कुछ लोगों का कहना है। यथा–

''बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः तिष्यं नक्षत्रमभिसम्बभूव।''[2]

1. ऋग्वेद 4।50।4
1. तैत्तीरिय ब्राह्मण 3।1।1

बृहस्पति की उत्पत्ति पुष्यनक्षत्र से हुई यह मत समीचीन प्रतीत नहीं होता है। इसका प्रथम दर्शन पुष्यनक्षत्र में हुआ होगा, इसलिए ऐसा कहा गया होगा। पहले किसी ने कल्पना की थी कि बृहस्पति भी सूर्य के सदृश ही है परन्तु आज यह स्पष्ट हो चुका है कि सूर्य से बृहस्पति की स्थिति भिन्न है। सर्वप्रथम तो यह कि सूर्य का पिण्ड उष्ण तथा बृहस्पति का पिण्ड शीतल (ठण्डा) है। इसके चारों तरफ का वायुमण्डल हजारों किलोमीटर ऊँचा है। इसमें मुख्य रूप से हाइड्रोजन, मीथेन तथा एमोनिया जैसी विषैली गैसें हैं। ऑक्सीजन का सर्वथा अभाव है। बृहस्पति का गुरुत्व बल पृथ्वी की अपेक्षा 2.64 गुना अधिक है। अतः पृथ्वी के किसी भी वस्तु का भार, गुरु पर 2.64 गुना अधिक होगा। बृहस्पति प्रायः 78 करोड़ कि. मी. की दूरी से सूर्य की परिक्रमा करता है। बृहस्पति की कक्षा विशाल है क्योंकि 13 कि.मी. प्रति सेकेंड के वेग से भी यह लगभग 12 साल में अपनी परिक्रमा पूरी करता है। कह सकते हैं कि पृथ्वी के 12 वर्षों के बराबर बृहस्पति का एक वर्ष होता है। अर्थात् इसको हम ऐसा भी कह सकते हैं कि हमारी पृथ्वी के लगभग 1036 दिनों का बृहस्पति का एक वर्ष होता है। जैसा कि हमने आपको कहा कि गुरु पृथ्वी से 1300 गुना बड़ा है परन्तु यह इतना गुना भारी नहीं है क्योंकि इसक घनत्व पृथ्वी के घनत्व से कम है। यदि हम कहें कि पानी का घनत्व 1.0 है तो पृथ्वी का घनत्व इसी अनुपात में 5.5 होता है। जबकि बृहस्पति का घनत्व 1.3 ही है, फिर भी बृहस्पति पृथ्वी से 310 गुना अधिक भारी है। अगर बृहस्पति को छोड़कर सभी ग्रह–उपग्रहों का एक कल्पित पिण्ड भी बना लें तो भी बृहस्पति इस पिंड से दुगुना बड़ा होगा। सूर्य बृहस्पति से 1047 गुना बड़ा है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि बृहस्पति वास्तव में कितना बड़ा है। इतना बड़ा होने पर भी यह ग्रह प्रायः 10 घंटे में अपनी धुरी पर एक चक्कर पूरा कर लेता है। कह सकते हैं कि इस ग्रह का दिन मात्र 10 घं. का होता है।

अभी तक के अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि बृहस्पति के कुल 39 उपग्रह हैं। सर्वप्रथम दूरबीन के आविष्कारक गैलीलियों ने ही गुरु के 4 चन्द्रों (उपग्रहों) को खोजा। इसी खोज के आधार पर मंगल के दो उपग्रह खोजे गए। बृहस्पति के चन्द्रों में से चार ही चन्द्र बड़े हैं। शेष चन्द्र बहुत छोटे हैं। इन चार चन्द्रों में भी दो चन्द्र तो बुध से भी बड़े हैं। इसके नाम हैं–गायनेमीड और कैलिस्टो। ईओ और यूरोपा नामक चन्द्र भी बड़े चन्द्रों में से हैं परन्तु इसमें भी ईओ बड़ा है। यह तो हमारे चन्द्र से भी बड़ा है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि बृहस्पति के चार चन्द्र उलटी दिशा में परिक्रमा करते हैं। निम्नलिखित भौतिक विवरण से ग्रह का प्रायः स्पष्ट स्वरूप ज्ञात होता है।

बृहस्पति का भौतिक स्वरूप

1.	सूर्य से दूरी	778333000 किलोमीटर
2.	विषुवद् वृत्तीय व्यासमान	142880 किलोमीटर
3.	ध्रुवीय व्यासमान	133540 किलोमीटर
4.	अक्षीय परिभ्रमण काल	9.9 घंटे
5.	कक्षीय परिभ्रमण काल	11.9 वर्ष
6.	द्रव्यमान (भार)	318.4 (पृथ्वी = 1)
7.	कक्षीय उत्केन्द्रता	$0^{0}.048$
8.	कक्षीय अवनतता (झुकाव)	$1^{0}\ 18^{1}$
9.	कक्षीय गति	13.00 (कि.मी./सेकेण्ड)
10.	पलापयन गति	60.2 (कि.मी./सेकेण्ड)
11.	गुरुत्वाकर्षण	02.64 (पृथ्वी = 1)
12.	घनत्व	0.23 (पृथ्वी = 1)
13.	पृष्ठीय तापमान	-140^{0} सेंटीग्रेट
14.	उपग्रह	39

बृहस्पति के प्रमुख उपग्रहों का भौतिक स्वरूप

क्र. सं.	उपग्रहों के नाम	अन्वेषक का नाम	अन्वेषण वर्ष	ग्रह से दूरी (कि.मी.)	व्यास (कि.मी.)	कक्षीय उत्केन्द्रता	कक्षीय झुकाव	आवर्त काल दिनों में
1.	ईओ	गैलीलियो	1610	421760	3657	00.00	$0^{0}00'$	1.769
2.	यूरोपा	गैलीलियो	1610	671050	3100	00.00	$0^{0}00'$	3.551
3.	गायनेमीड	गैलीलियो	1610	1070400	5270	00.00	$0^{0}00'$	7.155
4.	कैलिस्टो	गैलीलियो	1610	1882600	5000	00.00	$0^{0}00'$	16.689
5.	एलमथिया	बर्नाड	1892	181000	240	00.003	$0^{0}24'$	00.498
6.	लीडा	–	–	11100000	15	00.00	$0^{0}00'$	239.00
7.	हिमालि	पेरीने	1904	11477600	100	00.158	$27^{0}38'$	250.566
8.	लाइसिथिआ	पेरीने	1905	11720250	20	00.207	$24^{0}46'$	259.219
9.	एलारा	निकल्सन	1938	11736700	30	00.130	$29^{0}01'$	259.653
10.	एनाकी	निकल्सन	1951	21200000	20	00.169	$147^{0}00'$	631.000
11.	कारमे	निकल्सन	1938	22600000	20	0.207	$164^{0}00'$	692.000
12.	पासीफे	पेलोते	1908	23500000	20	0.378	$145^{0}00'$	744.000

13.	थैबे	–	–	22000	100	–	–	0.675
14.	एड्रास्टिया	–	–	129000	1875	–	–	0.298
15.	मैटिस	–	–	128000	20	–	–	0.295

शनि

'शनैश्शनैश्चलतीति शनैश्चरः'' अन्य ग्रहों की अपेक्षा आकाश में जो ग्रह धीरे–धीरे चलता हुआ दिखाई दिया, उसे ही हमारे आचार्यों ने शनैश्चर अथवा शनि कहा। धीरे–धीरे चलने से पर्याय मन्द भी है। इसलिए इसको मन्द भी कहा गया। भारतीय पौराणिक साहित्य में इसे–सौरि, अर्कपुत्र, आर्कि, असित, क्रोड, विरूप, यम, पिंगल, बभ्रु आदि नामों से जाना जाता है। जैसा कि पुराणों में मिलता भी है–

कोणस्थः पिंगलो बभ्रुः कृष्णो रोद्रोऽन्तको यमः
शौरिः शनैश्चरो मन्दः पिपलादेन संस्तुतः।।
रुद्रो वैवस्वतः साक्षाद् यमो लोक प्रभुः स्वयम्।
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मन्दगामी शनैश्चरः।।[1]

पाश्चात्य ज्योतिषि इसे 'सैटर्न' कते हैं। यूनानी आख्यानों में सैटर्न जूपिटर के पिता हैं जबकि भारतीय आख्यानों में इसे सूर्यपुत्र कहा गया है। रोमन लोग शनि को कृषि देवता मानते हैं।

हमारे सौर–परिवार में बृहस्पति के पश्चात सबसे बड़ा ग्रह शनि आकाश में अत्यन्त सुन्दर एवं रमणीक दिखता है। यह हमारी पृथ्वी से 750 गुना बड़ा एवं सूर्य से 143 करोड़ कि.मी. दूर है। शनि प्रति सेकेंड 9.6 कि.मी. की गति से सूर्य की परिक्रमा प्रायः 30 वर्षों में पूरी करता है। सूर्य से बृहस्पति जितना दूर है प्रायः उतना ही दूर बृहस्पति से शनि है। जैसा की आपको पहले बताया जा चुका है कि हमारी पृथ्वी से यह ग्रह 750 गुना बड़ा है अर्थात् शनि के पिण्ड में हमारी 750 पृथ्वियाँ समा सकती हैं परन्तु यह इतनी पृथ्वियों के बराबर भारी नहीं है। यह केवल 95 पृथ्वियों के बराबर भार का ग्रहा है। इस ग्रह का घनत्व जल के घनत्व से कम है जहाँ जल का घनत्व = 1 है वहीं इस ग्रह का घनत्व = 0.7 घन सेंटीमीटर है। अगर शनि को किसी विशालकाय महासागर में डाल दिया जाए तो वह डूबेगा नहीं, बल्कि तैरने लग जाएगा। हमारे सौर–परिवार में सबसे कम घनत्व शनि का ही है। शनि ग्रह का दिन हमारे दिन से छोटा होता है क्योंकि इस ग्रहा का अक्ष–भ्रमण पृथ्वी के हिसाब से 10 घंटे, 14 मिनटों का ही है। अतः इसको ऐसा भी कह सकते हैं कि शनि के एक वर्ष में पृथ्वी के 25300 दिन होते हैं। सूर्य से अधिक दूर होने के कारण शनि के वायुमण्डल का तापमान -155^0 सेंटीग्रेड के आस–पास होता है। बृहस्पति की भाँति शनि का वायुमण्डल भी हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन, तथा एमोनिया गैसों से बना है। शनि के सतह की अभी तक अधिक जानकारी ज्ञात नहीं हो पाई है, मात्र इसके चमकीले वायुमण्डल को हम देख सकते हैं। अभी तक की जानकारी के अनुसार चन्द्र, मंगल, एवं शुक्र की सतक की तरह शनि की सतह पर उतरना सम्भव नहीं है।

शनि के अभी तक 20 उपग्रह खोजे जा चुके हैं और भी उपग्रह हो सकते हैं। टाइटन इसका सबसे बड़ा (हमारे चन्द्र से भी बड़ा) एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपग्रह है। यह बृहस्पति के 'गायनीमीड' उपग्रह से थोड़ा ही छोटा है। पहले इसको ही सबसे बड़ा माना जाता था। टाइटन का मौजूद घना वायुमण्डल मुख्य रूप से नाइट्रोजन से था। टाइटन का मौजूद घना वायुमण्डल मुख्य रूप से नाइट्रोजन से बना है तथा पृथ्वी के वायुमण्डल से

अधिक घना एवं भारी है। जहाँ शनि की सतह पर अन्तरिक्ष यान उतरना सम्भव नहीं है वहीं टाइटन की सतह पर अन्तरिक्ष यान उतारा जा सकता है। शनि ग्रह अपने वलयों के कारण ही सबसे आकर्षक लगता है। सबसे पहले वलयों के सहित शनि को गैलीलियो ने देखा था। ये वलय इसके विषुवत् वृत्तीय धरातल में ही परिक्रमा करते हैं। बृहस्पति, यूरेनस, नेपच्यून के भी वलय हैं परन्तु शनि के वलय अधिक विस्तृत एवं सुस्पष्ट हैं। इसी तरह बुध के भी वलय देखे गए हैं। शनि के वलय छोटे–छोटे ठोस टुकड़ों के बने हो सकते हैं। ये बर्फ से आच्छादित रहते हैं इसलिए खूब चमकते हुए दिखाई देते हैं। खगोलविदों का कहना है कि कभी शनि के समीप एक उपग्रह रहा होगा जो विषुवतीय धरातल में परिक्रमा करता रहा होगा। किसी कारणवश यह उपग्रह विखंडित हो गया और उसके छोटे–छोटे टुकड़ों ने वलय का रूप धारण कर लिया। कुछ का कहना है कि शनि के उत्पत्ति काल से ही वलय मौजूद हैं और इन्हीं वलयों से उपग्रह बनते हैं। शनि के अवशिष्ट वलय भी भविष्य में उपग्रहों का रूप धारण कर सकते हैं। सम्भवतः इसी प्रकार के वलयों से शनि के उपग्रह बने होंगे।

शनि का भौतिक स्वरूप

1.	सूर्य से दूरी	1426978000 किलोमीटर
2.	विषुवद् वृत्तीय व्यास	120500 किलामीटर
3.	ध्रुवीय व्यासमान	106900 किलोमीटर
4.	अक्षीय परिभ्रमण काल	10.3 घंटे
5.	कक्षीय परिभ्रमण काल	29.5 वर्ष
6.	द्रव्यमान	95.2 (पृथ्वी = 1)
7.	कक्षीय उत्केन्द्रता	$0^0.052$
8.	कक्षीय अवनतता (झुकाव)	$2^0\ 29'$
9.	कक्षीय गति	9.6 (कि.मी. / सेकेण्ड)
10.	पलायन गति	36.2 (कि.मी. / सेकेण्ड)
11.	गुरुत्वाकर्षण	01.17 (पृथ्वी = 1)
12.	घनत्व	0.13
13.	पृष्ठीय तापमान	-155^0 सेंटीग्रेट
14.	उपग्रह	30

शनि के प्रमुख उपग्रहों का भौतिक स्वरूप

क्र. सं.	उपग्रह नाम अन्वेषक	अन्वेषण वर्ष	ग्रह से दूरी (कि.मी.)	व्यास (कि.मी.)	कक्षीय उत्केन्द्रता	कक्षीय झुकाव	आवर्त काल दिनों में
1.	एललस (एस. 28)	1980	137170	800	–	–	–
2.	प्रोमेथस (एस. 27)	1980	139353	220	–	–	–
3.	पैन्डोरा (एस. 26)	1980	141700	200	–	–	–
4.	एपिमैथस (एस. 3)	1980	151422	1980	–	–	–
5.	एल–9	1980	151422	9000	–	–	–
6.	जेनस	1980	159000	300	–	–	0 / 17 / 59
7.	मीमास / हर्शेल	1780	185590	500	0.02.0	$1^0 31'$	0 / 22 / 37
8.	एनसीलेडस / हर्शेल	1780	238100	600	0.004	$0^0 01'$	1 / 8 / 53
9.	टेथीस / कासिनी	1684	294700	1000	0.00	$1^0 06'$	1 / 21 / 19

10. एस. 25	1980	294700	30से40	—	—	—
11. एस 13	1980	294700	30से40	—	—	—
12. डिओने / कासिनी	1684	377500	800	0.002	$0^0 01'$	2 / 17 / 41
13. रीआ / कासिनी	1672	527200	1600	0.001	$0^0 21'$	4 / 12 / 25
14. टाइटन / हाइगेन्स	1655	1221620	5400	0.029	$0^0 21'$	15 / 22 / 42
15. हाइपेरियन / बाड	1848	1483000	500	0.104	$0^0 26'$	21 / 6 / 30
16. इआपेटस / कासिनी	1671	3560200	1600	0.028	$14^0 43'$	79 / 7 / 56
17. फोबे / पिकरिंग	1898	12951440	200	0.163	150^0	550 / 8 / 5
18. पेन	—	—	20	—	—	—

अरुण (यूरेनस)

हमारे सौर–परिवार में यह ग्रह भी एक विशाल–काय ग्रह है। बृहस्पति एवं शनि के पश्चात् आकार में इसी ग्रह का स्थान आता है। यूरेनस, नेपच्यून, प्लूटो ग्रहों की खोज में गैलीलियो के दूरबीन आविष्कार एवं केपलर के ग्रहगति के नियमों का तथा न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का के ग्रहगति के नियमों का तथा न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का सर्वाधिक योगदान है। इंगलैंड के एक ज्योतिषी विलियम हर्शेल ने 13 मार्च 1781 को घोषणा की कि मैंने एक ग्रह की खोज की है। इंग्लैंड के गणितज्ञ एवं ज्योतिषी इससे पहले इनका नाम नहीं जानते थे क्योंकि हर्शेल तो मूल रूप से संगीत के प्रेमी थे। ज्योतिष का अध्ययन तो इन्होंने शौकिया शुरू किया था। इन्हें दूरबीनों को बनाने का शौक था। अपनी स्वनिर्मित शक्तिशाली दूरबीनों से ही इन्होंने इस ग्रह की खोज की। सौरमण्डल का यह तीसरा बड़ा ग्रह है। इसका व्यासमान लगभग 50 हजार कि.मी. है। यह पृथ्वी से प्रायः चौगुना बड़ा ग्रह है। इसका आयतन पृथ्वी से 64 गुना अधिक है। यह प्रायः 7 कि.मी. प्रति सेकेण्ड के वेग से सूर्य की परिक्रमा कर रहा है, इस परिक्रमा को यह 84 वर्ष में पूरा करेगा। इस ग्रह का अक्षीय वेग अधिक है। इसलिए यह हमारी पृथ्वी के हिसाब से 11 घंटों में अपनी धुरी पर एक चक्कर काट लेता है। यह ग्रह भी कुछ–कुछ बृहस्पति और शनि की ही तरह है। इसका बाहरी वायुमण्डल ही हमको दिखाई देता है। यह घना वायुमण्डल मुख्यतः हाइड्रोजन और मीथेन गैसों से बना है। सूर्य का ताप इस ग्रह तक बहुत कम पहुँच पाता है इसलिए इसका पृष्ठीय तापमान प्रायः -180^0 सेंटीग्रेड के आसपास रहता है। हमारे सौर–परिवार में प्रायः सभी ग्रह अपने अक्ष पर झुके हुए परिक्रमा करते हैं, जिसमें सर्वविदित है कि पृथ्वी अपने अक्ष पर 23.5 अंश झुककर सूर्य की परिक्रमा करती है। एकमात्र यूरेनस ऐसा ग्रह है जो सर्वाधिक अर्थात् 98 अंश अपने अक्ष पर झुककर सूर्य की परिक्रमा करता है। अतः हम ऐसा भी कह सकते हैं कि इस कारण जैसी स्थिति पृथ्वी के ध्रुवीय प्रदेशों में रहती है उसी प्रकार की स्थिति यूरेनस के विषुवत पर रहती होगी।

अभी तक यूरेनस के 15 उपग्रहों (चन्द्रों) की खोज हो चुकी है। इसका सबसे बड़ा चन्द्र 'टाइटेनिया' है जिसका व्यास प्रायः 1600 कि.मी. के आसपास है। इस ग्रह के पाँच ही चन्द्र बड़े हैं, शेष छोटे–छोटे हैं। अन्य ग्रहों के चन्द्रों की तरह यूरेनस के चन्द्र भी विषुववृत्त के समतल में परिक्रमा करते हैं। यूरेनस सर्वाधिक अक्षीय झुकाव के कारण इसके चन्द्र अन्य ग्रहों के साथ समकोण बनाए हुए परिक्रमा करते हैं। यूरेनस के चन्द्रो को यदि यूरेनस के उत्तरी ध्रुव के ऊपर से देखा जाए तो अन्य ग्रहों के चन्द्रो की ही भाँति परिक्रमा करते हुए दिखाई देंगे परन्तु पृथ्वी से उल्टी दिशा में चक्कर काटते हुए दिखाई देते हैं।

अरुण (यूरेनस) का भौतिक स्वरूप

1.	सूर्य से दूरी	2870991000 किलोमीटर
2.	विषुवद् वृत्तीय व्यास	51400 किलोमीटर
3.	ध्रुवीय व्यासमान	50300 किलोमीटर
4.	अक्षीय परिभ्रमण काल	10 घंटे 49 मिनट
5.	कक्षीय परिभ्रमण काल	84.0 वर्ष
6.	द्रव्यमान	14.6 (पृथ्वी=1)
7.	अक्षीय झुकाव	98^0
8.	पृष्ठीय तापमान	-180^0 सेंटीग्रेट
9.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0.044 अंश
10.	कक्षीय झुकाव	0^0 66′
11.	कक्षीय गति	6.8 (कि.मी./सेकेण्ड)
12.	पलायन गति	22.4 (कि.मी./सेकेण्ड)
13.	गुरुत्वाकर्षण	1.05 (पृथ्वी=1)
14.	घनत्व	0.23 (पृथ्वी=1)
15.	उपग्रह	21

अरुण के प्रमुख उपग्रहों का भौतिक विवरण

क्र. सं.	उपग्रह नाम	अन्वेषक नाम	अन्वेषण वर्ष	ग्रह से दूरी (कि.मी.)	व्यास (कि.मी.)	कक्षीय उत्केन्द्रता	कक्षीय झुकाव	आवर्त काल दिनों में
1.	मिरान्डा	क्वीपर	1948	129390	4180	0.01	0^0	1.41348
2.	एरियल	लासेल	1851	191020	1158	0.003	0^0	2.52038
3.	अमब्रियल	लासेल	1851	266300	1172	0.004	0^0	4.14418
4.	टाइटेनिया	हर्शेल	1787	425910	1580	0.002	0^0	8.70587
5.	आवेरान	हर्शेल	1787	583520	1524	0.001	0^0	13.46324
6.	बेलिन्द्रा	–	–	49770	50	–	–	0.33503
7.	कार्डलिया	–	–	53790	50	–	–	0.37641
8.	आफलिया	–	–	59170	50	–	–	0.43450
9.	डेस्डिमोना	–	–	61780	60	–	–	0.46357
10.	रोसालिन्ड	–	–	62680	60	–	–	0.47365
11.	क्रैसिडा	–	–	64350	80	–	–	0.49307
12.	बाइन का	–	–	66090	80	–	–	0.51320
13.	जूलियट	–	–	69940	60	–	–	0.55846
14.	पोर्सिया	–	–	75260	50	–	–	0.62353
15.	पक	–	–	86010	170	–	–	0.76183

वरुण (नेप्च्यून)

यूरेनस की गति का सम्यक् अध्ययन करते हुए सौरमण्डल के इस आठवें ग्रह की खोज सन् 1846 में फ्रांस के खगोलविद् 'लवरिये' ने अपने कागज के पन्नों पर ही कर ली थी। गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त से यह ज्ञात होता है कि विश्व का हर पिण्ड एक दूसरे से आकर्षित होता है। प्रत्येक ग्रह अपने सूर्य का चक्कर लगाता है परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि ग्रह को उसका उपग्रह अथवा सौर–परिवार का अन्य ग्रह आकर्षित ही नहीं करता, अपितु हर पिंड अपनी–अपनी सामर्थ्य के अनुरूप सबको अपने प्रति आकर्षित करता है। गणितज्ञों ने यूरेनस की खोज के पश्चात् जब आकाश के सारे ग्रहों उपग्रहों को ध्यान में रखकर यूरेनस की कक्षा व गति निर्धारित की तथा कुछ समय के पश्चात् दिखाई दिया कि गणित के अनुसार ग्रह को जहाँ होना चाहिए था वहाँ नहीं है। इस अन्तर को पाकर फ्रांस के खगोलविद् 'लवेरिये' गम्भीरता से विचार करने लगे। अन्त में वे इस नतीजे पर पहुँचे कि इसके परे (बाहर) भी कोई महत्वपूर्ण बड़ा पिंड होना चाहिए। लवेरिये ने अपने ही कमरे में कागज के पन्नों पर एक कल्पित ग्रह की कल्पना की और उसकी गति निर्धारित करके कक्षा का निर्धारण करने लगे। अन्ततः उन्होंने इस कार्य में सफलता पाई परन्तु वे आकाश में उसको प्रत्यक्ष नहीं कर पाए क्योंकि उस समय पेरिस (फ्रांस) में कोई शक्तिशाली दूरबीन नहीं थी। अतः उन्होंने बर्लिन के खगोलविद प्रो. जोहान गाल्ले को पत्र लिखकर एक नए ग्रह की गति एवं स्थिति की जानकारी दी। पत्र पाकर प्रो. जोहान ने अपनी दूरबीन से आकाश के उस भाग की ओर देखा जिसको 'लवेरिये' ने इंगित किया था। उन्होंने पाया कि अवश्य वहाँ एक छोटा तारा दिखाई दे रहा है, दो तीन दिन लगातार देखने से ज्ञात हुआ कि यह तारा नहीं कोई ग्रह है। यह वही ग्रह है जिसका अनुमान 'लवेरिये' ने किया था। इसका नाम नेपच्यून रखा गया। रोमन कथाओं में 'नेप्च्यून' सागरों के देवता हैं। हमारे देश में इसको वरुण कहा जाने लगा। यह ग्रह भी यूरेनस की ही तरह का है। इसका व्यास प्रायः 48600 कि.मी. है यह हमारे सूर्य से 4.5 अरब किलोमीटर दूर है। इसका घनत्व यूरेनस से अधिक है। यह भी हमारी पृथ्वी से भारी ग्रह है। यह 5.4 कि.मी. प्रति सेकेण्ड की गति से सूर्य की परिक्रमा 165 वर्षों में पूरी करता है। यह ग्रह अपने अक्ष पर 29 अंश झुका हुआ है। यह 15 घंटे 48 मिनट में अपने अक्ष पर एक परिभ्रमण करता है अर्थात् इसका अहोरात्र 15 घंटे 48 मिनट होता है। इसके वायुमण्डल में भी मीथेन एवं हाइड्रोजन गैंसे विद्यमान है इसके चन्द्रों की संख्या 8 है। 'ट्राइटन' इसका सबसे बड़ा ग्रह है। खगोलविदों का कहना है कि यह हमारे सौर–परिवार का सबसे भारी उपग्रह है और यह ग्रह (नेपच्यून) अन्यों की अपेक्षा उलटी दिशा में परिक्रमा करता है। सर्वाधिक दूरी से परिक्रमा करने वाला उपग्रह 'नीरीड' है परन्तु यह आकार में छोटा है।

वरुण (नेपच्यून) का भौतिक स्वरूप

1.	सूर्य से दूरी	4497070000 किलोमीटर
2.	विषुवद् वृत्तीय व्यास	48600 किलोमीटर
3.	ध्रुवीय व्यास	47500 किलोमीटर
4.	अक्षीय परिभ्रमण काल	15 घंटे 48 मिनट
5.	कक्षीय परिभ्रमण काल	164.8 वर्ष
6.	द्रव्यमान	17.3 (पृथ्वी=1)
7.	पृष्ठीय तापमान	–210 सेंटीग्रेड
8.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0.007 अंशात्मक
9.	अक्षीय झुकाव	29.00 अंशात्मक

10.	कक्षीय झुकाव	01^0 46′
11.	कक्षीय गति	5.4 (कि.मी./सेकेण्ड)
12.	पलायन गति	23.9 (कि.मी./सेकेण्ड)
13.	पृष्ठीय तापमान	01.21 (पृथ्वी=1)
14.	घनत्व	0.29 (पृथ्वी=1)
15.	उपग्रहों की संख्या	8 (आठ)

वरुण के उपग्रहों का भौतिक स्वरूप

क्र. सं.	उपग्रह नाम	अन्वेषक नाम	अन्वेषण वर्ष	ग्रह से दूरी (कि.मी.)	व्यास (कि.मी.)	कक्षीय उत्केन्द्रता	कक्षीय झुकाव	आवर्त काल दिनों में
1.	ट्राइटन	लासेल	1846	355250	3800	0.0159^0	57′	5.877
2.	नीरीड	क्वीपर	1949	5545000	300	0.76 27^0	27′	360.2
3.	एन–1		1989	117500	420	–	–	1.1223
4.	एन–2		1989	73000	200	–	–	0.56
5.	एन–3		1989	62000	160	–	–	0.43
6.	एन–4		1989	52000	140	–	–	0.34
7.	एन–5		1989	50000	90	–	–	0.31
8.	एन–6		1989	48200	50	–	–	0.29

बोध प्रश्न - 1

1. ग्रह को परिभाषित करें।
2. सूर्य, बुध एवं शुक्र के स्वरूपों का वर्णन कीजिए।
3. ग्रह एवं उपग्रह के महत्व का निरूपण कीजिए।
4. ग्रह एवं उपग्रह में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. ग्रह एवं उपग्रह के स्वरूपों का वर्णन कीजिए।

3.4 तारे एवं तारकापुंज परिचय

हम रात्रि में तारों से भरे आकाश को देखते हैं। इनमें से कुछ बड़े, कुछ छोटे, कुछ पीले, कुछ नीले दिखाई देते हैं। आकाशगंगा का लगभग 98% भाग तारों से बना है, शेष 2% भाग में खगोलीय गैस और बहुत ही अधिक घने रूप में छाई धूल है। खगोल में ऐसे तारे अपवाद रूप में हैं जो अलग–थलग अकेले पड़े हों। ऐसे तारों की संख्या 25 प्रतिशत से अधिक नहीं है। युग्म तारे खगोल में लगभग 33% हैं, शेष सभी प्रकार के तारे बहुसंख्यक हैं। इन समस्त तारों का वर्गीकरण इनकी द्युति, वर्ग, ताप एवं स्वरूप आदि का ज्ञान भौतिक लक्षणों के द्वारा प्राप्त होता है। तारों में कोई अधिक तीव्र प्रकाश वाला तथा कोई मन्द प्रकाश वाला दिखाई देता है। इसी को तारों का कान्तिमान कहते हैं। मुख्यतः कान्तिमान के द्वारा ही भौतिकशास्त्र में तारों का अध्ययन होता है।

हमारी आकाशगंगा में कितने तारे हैं, इनका अनुमान करना प्रायः कठिन है तथापि कह सकते हैं कि हमारी आकाशगंगा में लगभग एक खरब तारे हैं। इससे कुछ अनुमान कर सकते हैं कि हमारी आकाशगंगा कितनी बड़ी है। हमारी आकाशगंगा का व्यास प्रायः एक लाख प्रकाश वर्ष है। इससे हमें ज्ञात होता है कि प्रकाश की किरणें आकाशगंगा के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक पहुँचने में एक लाख वर्ष समय लेती हैं। जबकि सूर्य की किरणें पृथ्वी तक पहुँचने में आठ मिनट का समय लेती हैं। हमारा सूर्य भी एक तारा है। यह आकाशगंगा के केन्द्र में स्थित न होकर प्रायः केन्द्र से तीस हजार प्रकाश वर्ष दूर किनारे पर स्थित है। यह अपने परिवार के साथ आकाशगंगा में 43 हजार मील प्रति घंटे की गति से भ्रमण कर रहा है। एक अन्य प्रसंग में खगोलशास्त्रियों का अनुमान है कि हमारा सूर्य 220 किमी. प्रति सेकेंड की गति से आकशगंगा की परिक्रमा कर रहा है। यह परिक्रमा सूर्य लगभग 25 करोड़ वर्षों में पूर्ण करता है। खगोलविदों ने प्रायः तीन सौ गोलाकार तारागुच्छों की और करीब ढेढ़ हजार बिखरे हुए तारापुंजों की खोज की है। इनमें भी गोलाकार हजार बिखरे हुए तारापुंजों की खोज की है। इनमें भी गोलाकार तारागुच्छ अधिक पुरातन एवं खुले बिखरे हुए तारापुंज नवीन लगते हैं। खगोशास्त्री यह भी अनुमान करते हैं कि खुले हुए या तारे गुच्छ गोलाकार तारागुच्छाकृति की ओर गतिमान हैं।

तारों की उत्पत्ति एवं विनाश –

तारों की उत्पत्ति आकशगंगा में विद्यमान हाइड्रोजन एवं हीलियम गैसों के संगठन से होती है। अन्ततः इन दोनों गैसों की सघनता लघु मेघों के रूप में परिणत होती हैं। हम जानते हैं कि आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से सारे पदार्थ प्रायः 209 मूल तत्वों से बने हैं। जो मूल तत्व हमारी पृथ्वी पर पाए जाते हैं वे तारों एवं मन्दाकिनियों में भी पाए जाते हैं। विश्व द्रव्य में हाइड्रोजन एवं हीलियम गैसों की प्रधानता है। पृथ्वी के वायुमण्डल से ये हल्की गैसें काफी पहले उड़ गई हैं। अतः पृथ्वी पर आज भारी तत्त्व कुछ अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की द्रव्यराशि में हाइड्रोजन की मात्रा सर्वाधिक एवं 15.9 प्रतिशत हीलियम गैसें हैं। शेष सभी तत्त्वों के प्रमाणों की मात्रा 0.2 प्रतिशत सम्मिलित रूप में हैं। हाइड्रोजन तारों का ईंधन है। हाइड्रोजन के परमाणुओं का संगठन होकर जब यह हीलियम में रूपान्तरित होती है तो तब ताप नाभिकीय भीषणतम ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। इन्हीं दो गैसों की संघटनता–जो मेघों के रूप में परिवर्तित होती है, के आकार बढ़ने के अन्तर उनमें गुरुत्वाकर्षण के कारण निपात होता है। हाइड्रोजन, हीलियम गैसों का सम्मिश्रण होकर सम्मिश्रित मेघों का तापमान 173 डिग्री सेंटीग्रेड होता है। गुरुत्वाकर्षण के कारण ये गैसीय विशाल मेघखंड उत्तरोत्तर संकुचित एवं घनीभूत होकर तारों का रूप धारण करते हैं। यह प्रक्रिया प्रायः एक अरब वर्ष तक चलती है। इस अवस्था में तारों का तापमान 173 डिग्री सेंटीग्रड से आरम्भ होकर एक करोड़ सेंटीग्रड तक होता है। धीरे–धीरे गैसीय पिण्ड का आन्तरिक तापमान और घनत्व बढ़ता जाता है। परिणामतः यह पिण्ड प्रज्जवलित होकर सम्पूर्ण तोरे का रूप धारण कर लेता है। तारों के आन्तरिक प्रभाव में वृद्धि होने से गैसीय पदार्थों का निपात अवरुद्ध हो जाता है। इस स्थिति में तारों में विरुद्धधर्मी दो वलयों के मध्य ऐसा सामंजस्य होता है कि पहला वलय गर्भ की ओर संकुचित होता है और दूसरा वलय परिधि की ओर फैलता है, जैसे इस समय हमारा सूर्य सन्तुलित अवस्था में है। हमारे सूर्य की उत्पत्ति प्रायः 46 अरब वर्ष पहले हुई है। अभी हमारा सूर्य अपनी कुमारावस्था में आगे बढ़ रहा है। भविष्य में भी ऊर्जा का विमोचन अपने यथाक्रम प्रमाण से ही करेगा। तारों के मध्य भाग जिसको हम क्रोड भी कहते हैं, के संकुचित होने से आवरण का तथा विकसित होने से विकृत ऊर्जा का प्रभाव न्यून होता है। आवरण के क्षेत्रफल से बढ़ने से

तारे रक्तदानव अवस्था में प्रवेश करते हैं। उस समय तारों का स्वरूप लाल होता है। आज से पाँच हजार अरब वर्षों के बाद हमारा सूर्य भी रक्तदानव अवस्था में होगा। उस समय सूर्य की बाहरी परिधि का प्रसारण बुध, शुक्र, पृथ्वी की कक्षा से बाहर तक होगा। मंगल की कक्षा भी प्रभावित होगी। तब इन ग्रहों का अस्तित्व भी नष्ट हो जाएगा। हो सकता है कि पृथ्वी मात्र दग्ध हो अर्थात् कह सकते हैं कि पृथ्वी की जैविक सृष्टि तो पूर्ण नष्ट हो जाएगी। जिन तारों का द्रव्यमान सूर्य के समान होता है उन तारों की अन्तिम परिणति श्वेतवामन के रूप में होती है। यदि सूर्य की तुलना में तारे का द्रव्यमान अधिक हो तो उस तारे का अन्त रोचक हो सकता है। प्रायः इस प्रकार के तारों का क्रोड भाग अधिक संकुचित होता चला जाता है तथा इस संकुचन क्रिया से तापमान उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है तथा बाहरी कवच में संकुचित ऊर्जा के कारण विस्फोट होता है। इसी विस्फोट को खगोलशास्त्रियों ने 'सुपरनोवा विस्फोट' की संज्ञा दी है। सुपरनोवा विस्फोट के बाद क्रोड भाग अत्यधिक सम्पीडित होकर अपरिमित घनत्व को प्राप्त होता है। अत्यधिक संघनित द्रव्य का यह पिण्ड 'न्यट्रान तारा' कहलाता है। घूमते हुए यह तारा रेडियो तरंगों को उत्पादित करता है। इसी को आधुनिक खगोलशास्त्री 'पल्सार' के नाम से जानते हैं। हमारी आकाशगंगा में अभी तक पाँच ही 'सुपरनोवा' विस्फोट खोजे गए हैं। वैज्ञानिकों का तर्क है कि सुपरनोवा की घटनाएँ हमारी आकाशगंगा में प्रति शताब्दी दो या तीन तक हुआ करती हैं। अन्यों की अपेक्षा इनका पृष्ठीय तापमान काफी न्यून होता है। 'एस' वर्ग में ये तारे आते हैं। इनका पृष्ठीय तापमान 800 डिग्री सें. ग्रे. के आसपास होता है।

आकाशगंगा के तारों को उपर्युक्त वर्णक्रम में बाँटा गया है। इनसे भी न्यून पृष्ठीय तापमान वाले तारे पाए जाते हैं। सूक्ष्मता के लिए खगोल–शास्त्रियों ने प्रत्येक वर्ग के तारों को पुनः 10 उपवर्गों में बाँटा है। सम्प्रति इन उपवर्गों को G1, G2, G3, G4, G5, G6, G7, G8, G9, G10 के रूप में दर्शाया जाता है। वास्तविक रूप में खगोलशास्त्रियों ने हमारे सूर्य को G2 वर्ग का तारा कहा है। यह रही तारों के पृष्ठीय तापमान की बात, परन्तु तारों का गर्भीय तापमान प्रायः 20000000^0 सें. ग्रे. के तुल्य होता है। तारों के तापक्रम बढ़ने के साथ–साथ वर्णक्रम क्रमशः पीला, श्वेत नीला आदि होता जाता है। अत्यधिक तप्त तारे नीले वर्ण में दिखाई देते हैं। सरल रूप से हम निम्न प्रकार से भी तारों के वर्ण को समझ सकते हैं–

वर्ण	**तापमान**
लाल	प्रायः 300 डिग्री सें. ग्रे. तक के तारे
नारंगी	3000 डिग्री सें. ग्रे. से 5000 डिग्री सें. ग्रे. तक के तारे
पीला	5000 डिग्री सें. ग्रे. से 6000 डिग्री सें. ग्रे. तक के तारे
श्वेत पीले	6000 डिग्री सें. ग्रे. से 8000 डिग्री सें. ग्रे. तक के तारे
श्वेत	8000 डिग्री सें. ग्रे. से 10000 डिग्री सें. ग्रे. तक के तारे
नील श्वेत	15000 डिग्री सें. ग्रे. से अधिक के तारे
नीले	25000 डिग्री सें. ग्रे. से अधिक के तारे

तेजस्विता के आधार पर तारों की सची संलग्न हैं। सारणी में व्याध नामक तारे का आभासिक कान्तिमान 1.43 है। केवल आरम्भ से चार तारों का आभासिक कान्तिमान ऋणात्मक है। इस सारणी में जैसे–जैसे तारों की द्युतिता न्यून होती है वैसे–वैसे तारों का कान्तिमान अधिकाधिक धनात्मक होता है। स्पष्टता के लिए सारणी देखेंगे। सारिणी में प्रायः मुख्य एवं बहुत कम तारों को दिया गया हैं। इस सारणी में सूर्य (तारा) को नहीं दर्शाया गया है। सूर्य का कान्तिमान इतना कम है कि इस कान्तिमान के कोई भी तारे नहीं दिए

गए हैं। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि आकाशीय कान्तिमान बढ़ते क्रम में है अर्थात् जिन तारों का कान्तिमान अधिक है वे ऋण में दिखाए गए हैं। उत्तरोत्तर जिनका कान्तिमान कम होता गया उनको धन में दर्शाया गया है। हमारे सूर्य का कान्तिमान +4.7 है। यह G2 वर्णक्रम का तारा है। इससे भी कम कान्तिमान वाले तारे को +10.0, +15.0 आदि क्रम में दिखाया जा सकता है। तेजस्वी तारों की एक छोटी सूची–

क्रम सं.	भारतीय नाम	पाश्चात्य वर्णक्रम	वर्णक्रम श्रेणी	आभासीय कान्तिमान	दैर्घ्यमान प्रकाश वर्षों में	परम कान्ति–मान
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.
1.	व्याध	सिरियस	ए–1 पंचम	–1.43	8.7	+1.5
2.	अगस्त्य	कैनोपस	एफ प्रथम ए	–0.73	1174	–4.4
3.	मित्रम्	एल्फोसेन्टॉरी	जी 2 पंचम	–0.27	4.3	+4.1
4.	स्वाति	आर्कट्यरस	के 2 तृतीय	–0.06	36	–0.3
5.	अभिजित्	वीगा	ए पंचम	+0.04	26	+0.05
6.	ब्रह्महृदय	कैपेला	(जी)	+0.09	42	–0.06
7.	राजन्य	रिगल	बी 8 प्रथम ए	+0.15	900	–6.4
8.	प्रश्वा	प्रोसिऑन	एफ 5 चतुर्थ पंचम	+0.37	11.3	+2.7
9.	अग्रनद	एशर्नार	बी 3 पंचम	+0.53	85	–2.7
10.	मित्रक	बीटासेण्टॉरी (हडर)	बी 5 पंचम	0.66	456	–3.3
11.	काशी	बीटलज्यूस	एम 2 प्रथम ए बी	+ 0.7	310	–2.9
12.	श्रवण	अलटेयर	ए 7 चतुर्थ पंचम	+0.80	16.6	+2.3
13.	रोहिणी	एल्डेबेरान	के 5 तृतीय	+0.85	68	–0.7
14.	–	एल्फाक्रूसिस	बी 5 पंचम	+0.87	359	–3.2
15.	ज्येष्ठा	एण्टेरिज	एम 1 प्रथम बी	+0.98	326	–2.6
16.	चित्रा	स्पाइका	बी 1 पंचम	+1.00	258	–2.4
17.	मीनास्य	फोमैल्हॉट	ए 3 पंचम	+1.16	22	+2.0
18.	पुनर्वसु	पोलक्स	के तृतीय	+1.16	36	+1.0
18.	पुनर्वसु	पोलक्स	के तृतीय	+1.16	36	+1.0
19.	हंस	डैनेव	ए 2 प्रथम ए	+1.26	1826	–4.8
20.	–	बीटा क्रूसिस	बी .5 चतुर्थ	+1.31	424	–3.5
21.	मघा	रैगुलस	बी 7 पंचम	+1.36	84	–0.7
22.	–	अढर	बी 2 द्वितीय	+1.49	489	–3.0
23.	पुनर्वसु	कैस्टर	(ए)	+1.59	46	+1.0
24.	मूल	शोला	बी 2 चतुर्थ	+1.62	274	–1.3
25.	–	वैलाट्रिक्स	बी 2 तृतीय	+1.64	359	–1.3

बोध प्रश्न - 2

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए –

1. **तारे** स्वयंप्रकाशित उष्ण गैस की द्रव्यमात्रा से भरपूर विशाल हैं।

   क. ग्रह पिण्ड ख. खगोलीय पिण्ड ग. गैलक्सी घ. गैस पिण्ड

2. आकाशगंगा का लगभग कितना भाग तारों से बना है।

   क. 95 प्रतिशत ख. 96 प्रतिशत ग. 97 प्रतिशत घ. 98 प्रतिशत

3. तारों का निर्माण किन दो गैसों से होता है।

   क. हाइड्रोजन एवं हिलीयम ख. हाइड्रोजन एवं नाइट्रोजन ग. नाइट्रोजन एवं ऑक्सीजन

घ. हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन

4. तारों का गर्भीय तापमान होता है ।

क. 2000000^0 ख. 20000000^0 ग. 200000^0 घ. 20000^0

5. अभिजित का पाश्चात्य नाम हैं ।

क. सीटा ख. वीगा ग. कैपेला घ. रिगा

तारों के नाम

कुछ चमकते तारों के समूह आकाश को विभिन्न भागों में बाँट देते हैं। इन तारों के समूह को 'तारामंडल' (constellations) कहते हैं। पूरे आकाश को 88 तारामंडलों में विभक्त करके उन तारामंडलों के नाम रख दिए गए हैं। राशिचक्र के तारामंडल बहुत प्रसिद्ध हैं, इनकी संज्ञा मेष, वृष आदि है। किसी एक तारामंडल के तारों को उनके दृश्य (visual) कांतिमान (magnitude) के अवरोह क्रम में चुन लिया जाता है। फिर तारामंडल के नाम के आगे ग्रीक भाषा के अक्षर रखकर तारों का नामकरण किया जाता है, जैसे मेष राशि के सबसे चमकीले तारे का नामकरण एल्फातरीज़ किया गया है। कुछ तारामंडलों में तारों की संख्या इतनी अधिक है कि ग्रीक वर्णमाला के अक्षरों की संख्या उनके लिए कम पड़ जाती है। ऐसे तारों के नामकरण के लिए तारामंडल के पूर्व लैटिन अक्षर तथा आवश्यकता पड़ने पर संख्याएँ लिख देते हैं। कुछ तारे अतिप्रकाशित होने के कारण अतिप्रसिद्ध हैं तथा उनके नाम तारामंडलों के संदर्भ के बिना भी जाने जा सकते हें, जैसे लुब्धक (Sirius), मघा (Regulus), चित्रा (Spica) आदि। इस प्रकार के नामकरण से तारों को पहचानने में सहायता मिलती है।

तारों के कांतिमान (Steller Magnitudes)

खाली आँखों से देखने पर कुछ तारे अधिक चमकीले तथा कुछ कम चमकीले दिखाई देते हैं। इनकी कांति (luminosity) के यूनाधिक्य के अनुसार हम तारों को कई कांतिमानों में वर्गित कर लेते हैं। तारे हमसे बहुत अधिक दूरी पर स्थित हैं। दूरी के बढ़ने से कम चमकीले तारे हम दिखाई नहीं देते। बिना यंत्र की सहायता के हमारी आँखें छठे कांतिमान तक के तारे देख सकती हैं। कांतिमानों का वर्गीकरण इस प्रकार है किजो तारे सबसे अधिक चमकीले दिखलाई पड़ते हैं, उनका कांतिमान न्यूनतम संख्या माना जाता है, उससे कम चमकीले तारों का उससे अधिक इत्यादि। कांतिमान के तारे की अपेक्षा उसे पूर्ववर्ती कांतिमान तारे की चमक अथवा 2.512 गुना अधिक होती है। इस प्रकार प्रथम कांतिमान का तारा द्वितीय कांतिमान के तारे से 2.512 गुना चमकीला तथा द्वितीय कांतिमान का तारा तृतीय कांतिमान के तारे से 2.512 गुना चमकीला होता है। यदि हम छठे कांतिमान के तारे की चमक 1 मान लें, तो प्रथम कांतिमान से छठे कांतिमान तक के तारों की चमक 100:39.82:15.85:6:31 : 2:51 : 1 अनुपात में होगी। इस दृश्य कांतिमान के मापन में सूर्य की कांतिमान - 26.72, चंद्रमा का - 12.5 तथा लुब्धक तारे कर कांतिमान - 1.5 है। माउंट पालोमार

वेधशाला के 200 इंच व्यास के (वर्तमान काल के विशालतम) परावर्ती (reflector) दूरदर्शी से हम 23 कांतिमान तक के तारे देख सकते हैं।

कांतिमान का मापन

कांतिमान मापन का अर्थ है तारे के प्रकाश की तीव्रता का मापन। पहले यह कार्य विशेष प्रकार के फोटोमीटरों की सहायता से आँखों द्वारा किया जाता था। इस प्रकार ज्ञात किए गए कांतिमान को दृश्य कांतिमान (Visual magnitude) कहते हैं। आँखें पीले प्रकाश की सुग्राही (sensitive) हैं, अत: दृश्यकांतिमान पीले और हरे रंग के प्रकाश के मापक हैं। बाद में कांतिमापन फोटोग्राफी की प्लेटों की सहायता से किया जाने लगा। इस प्रकार से ज्ञात कांतिकान को फोटोग्राफीय कांतिमान कहते हैं। फोटोग्राफीय कांतिमान नीले रंग के प्रकाश के मापक हैं। तारे कई रंगों के प्रकाश विकीर्ण (emit) करते हैं। अत: तारों के कांतिमान ज्ञात करने के लिए विभिन्न रंगों की सुग्राही प्लेटों के द्वारा तथा वर्णशोधकों (filters) के उपयोग से उनके प्रकाश की तीव्रता आँकी जाती है। पीले रंग की सुग्राही प्लेटों पर पीले रंगशोधकों से फोटोग्राफीय (नीले) तथा दृश्य (पीले) कांतिमानों के अंतर को वर्ण सूचक (Colour index) कहते हैं। इससे तारों का ताप ज्ञात होता है। कांतिमान फोटोग्राही सेलों पर प्रकाश को ग्रहण कर तथा उसे बहुगुणित कर प्रकाश की तीव्रता मापी जाती है। कांतिमान को मापते समय हमें वायुमंडल के प्रभाव तथा तारों की अंतर्वर्ती धूल तथा गैसों के प्रभाव को भी दृष्टि में रखना पड़ता है। कांतिमान के यथार्थ ज्ञान से हमें तारों की दूरियाँ तथा बहुत से भौतिक पदार्थो को जानने में सहायता मिलती है।

निरपेक्ष (Absolute) कांतिमान

बहुत से तारों का निजी प्रकाश बहुत अधिक है, किंतु अत्याधिक दूरी पर स्थिर होने के कारण उनका दृश्य कांतिमान अधिक दिखलाई पड़ता है। यथार्थ कांतिमान तो तभी ज्ञात हो सकता है, जब वे उपमात्र से समान दूरी पर स्थित हों। समस्त तारों को 10 पारसेक की दूरी पर कल्पित करके ज्ञात किए गए कांतिमान को निरपेक्ष कांतिमान कहते हैं। यदि हमें तारे का दृश्य कांतिमान ज्ञात हो तथा उसकी दूरी ज्ञात हो तो हम निम्नलिखित सूत्र से निरपेक्ष कांतिमान जान सकते हैं:

निरपेक्षकांतिमान दृश्यकांतिमान 5 - 5 लघुगणक दूरी, पारसेकों में है। विलोमत: यदि हमें निरपेक्ष कांतिमान ज्ञात हो तो हम तारों की दूरियाँ भी जान सकते हैं। सूर्य का निरपेक्ष कांतिमान 4.7 है।

तारों की संख्या : पूर्णतया निर्मल आकाश में हमें दृष्टि सहायक यंत्रों के 3,200 से अधिक तारे नहीं दिखलाई पड़ते। चूँकि हम आकाश के केवल आधे हिस्से को ही देख पाते हैं अत: चक्षुदृश्य तारों की संख्या 6,500 (2x3,200+100) के लगभग है। इनमें -

1,5 कांतिमान से अधिक चमकीले 20 तारे

2 कांतिमान तक चमकीले 50 तारे हैं

3 कांतिमान तक चमकीले 150 तारे हैं

4 कांतिमान तक चमकीले 500 तारे हैं

तारा 5 कांतिमान तक चमकीले 1500 तारे हैं

शेष चक्षुदृश्य तारे छठे कांतिमान के है। यदि हम अपनी दृष्टि को 10 गुनी अंतर्मुखी कर लें तो दृश्य तारों की संख्या 1000 गुना बढ़ जाएगी, अर्थात् यदि तारों को समरूप से फैला हुआ मान लिया जाए तो उनकी संख्या उनकी दूरी की छह गुनी बढ़ जाएगी। यह संबंध अधिक चमकीले तारों तक ही सीमित है। कम गैलेक्सी में विशालतम दूरदर्शी द्वारा ज्ञात तारों की संख्या लगभग 1,00,00,00,00,000 (एक खरब) है।

तारों की गतियाँ (Steller motions) -

तारे की वास्तविक गति तथा गमनदिशा ज्ञात करने के लिए हम उसकी गति को दो भागों में बाँट लेते हैं। दृष्टिसूत्र पर लंब दिशा की गति के कोणीय मान को तारे की निजी गति (proper motion) कहते हैं। तारों की निजी गतियाँ कम होतीं हैं। उन्हें ज्ञात करने के लिए हमें बहुत दूरवर्ती कालों में लिए गए तारों के फोटोग्राफों की तुलना करनी पड़ती है। जो तारे हमारे निकट हैं, वे दूरवर्ती तारों के सापेक्ष आगे पीछे हट जाते हैं। इस कोणीय मान को काल के अंतराल से भाग देने पर निजी गति ज्ञात हो जाती हैं। इस कोणीय दृष्टिसूत्र की दिशा की तारक गति को त्रैज्य वेग (Radial velocity) कहते हैं। त्रैज्य वेग जानने के लिए हम वर्णक्रमदर्शी (spectrograph) की सहायता से तारे का वर्णक्रम (spectrum) ले लेते हैं। यदि वर्णक्रम रेखाएँ नीले छोर की तरफ हटी हों, तो हम डॉपलर सिद्वांत की सहायता से जान लेते हैं कि तारा हमारी ओर आ रहा है तथा, यदि वर्णक्रम रेखाएँ लाल छोर की ओर हटी हों, तो हम से दूर जा रहा है। रेखाओं का स्थानांतरण (shift) उनके त्रैज्यवेग का अनुक्रमानुपाती (directly proportional) होता है। बनार्ड ने ओफियूकस (सर्पधर) तारामंडल के एक दश्म कांतिमान् के तारे की निजी गति 10.3 प्रति वर्ष ज्ञात की है, जो विशालतम है। निजी गति का ज्ञान तारापुंजों के अध्ययन में सहायक होता है तथा इससे हम यह भी जान जाते हैं कि अधिक नीली गति के तारे अपेक्षाकृत हमारे निकट हैं। त्रैज्य वेग का सूर्य के सापेक्ष ज्ञान करने के लिए, हमें पृथ्वी की गति को भी ध्यान में रखना पड़ता है। निजी गति तथा त्रैज्य वेग के ज्ञान से बल-समांतर-चतुर्भुज के सिद्धांत द्वारा वास्तविक गति तथा उसकी दिशा ज्ञात हो जाती है।

तारों की दूरियॉ -

तारों की दूरियाँ ज्ञात करने के लिए त्रिकोणमितीय विधियों का प्रयोग किया जाता है। हमसे अति समीप तारा भी इतनी दूरी पर है कि यदि हम पृथ्वी के व्यास को आधार मानकर उसकी दिशाओं को देखें तो वे समांतर प्रतीत होतीं हैं, अर्थात् तारे का लंबन (parallax) शून्य ही आता है। अत: तारों के लंबन को ज्ञात करने के लिए हमें बड़े आधार की आवश्यकता पड़ती है। अत: पृथ्वी की कक्षा (orbit) के व्यास को हम आधार बनाते हैं। यदि हम किसी तारे की दिशा के एक वेध के छ: महीने बाद उसका वेघ करें तो हमें पृथ्वी की कक्षा के व्यास (2 x 6,30,00,000 मील के लगभग) का आधार मिल जाता है। इस प्रकार के वेध से समीपस्थ तारे दूरस्थ तारों के सापेक्ष (जिनका हमें उनकी

निजी गति के अध्ययन से ज्ञान है) थोड़ा दिक् परिवर्तन दिखलाते हैं। इसे निकालते समय हमें तारे की निजी गति के प्रभाव पर भी विचार करना पड़ता है। तो भी यह इतना कम है कि निकटतम तारे का लंबन 76 है। *यदि किसी तारे का लंबन 1* हो तो वह पृथ्वी से पृथ्वी की कक्षा की त्रिज्या से 2,06,265 गुनी दूरी पर होता है। इस दूरी को एक पारसेक (पारलैक्स सेकंड का संक्षिप्त रूप) कहते है। दूरी मापने के लिए जिस अन्य इकाई का प्रयोग किया जाता है, वह है प्रकाशवर्ष (light year)। प्रकाश का वेग 1,86,000 मील प्रति सेकंड है। इस वेग से प्रकाश एक वर्ष में जितनी दूरी तक जाता है उतनी दूरी को एक प्रकाश वर्ष कहते हैं यह दूरी लगभग 60,00,00,00,00,000 मील होती है। एक पारसेक लगभग 3.26 प्रकाश वर्ष के तुल्य होता है। त्रिकोणमितीय विधि से हम केवल अत्यंत समीपस्थ तारों की दूरियाँ ही ज्ञात कर सकते हैं। अत: दूरवर्ती तारों की दूरियाँ ज्ञात करने के लिए हमें अन्य विधियों का आश्रय लेना पड़ता है। यदि हम किसी प्रकार तारों के निरपेक्ष कांतिमान को जान सकें, तो हम निरपेक्ष कांतिमान शीर्षक में दिए गए सूत्र की सहायता से उनकी दूरियाँ ज्ञात कर सकते हैं। सौभाग्य से हमें सेफिइड (Cepheid) तथा लाइरा (Lyra) वर्ग के तारे उपलब्ध हैं, जिनके निरपेक्ष कांतिमान हम ज्ञात कर सकते हैं।

तारों के लंबनों को ज्ञात करने की निम्नलिखित अन्य विधियाँ हैं:

- सूर्य की निजि गति से लंबन ज्ञात करना -
- पारिकाल्पनिक लंबन (Hypothetical parallax);

वर्गीकरण

- रचना तथा आकारगत वर्गीकरण
- गैलेक्सी की सर्पिल भुजाओं (spiral arms) तथा नाभिक (nucleus) में उपलब्ध तारे;
- तारों का वर्णक्रमीय (spectroscopic) वर्गीकरण;
- प्रकाश के घटने बढ़ने के कारण तारों का वर्गीकरण -- चल तारे (variable stars);
- पुंजों (clusters) में उपलब्ध तारे;
- द्विक (double) तथा बहुसंख्यक (multiple) तारे आदि।

इन वर्गीकरणों का निजी महत्व है और इनसे हमें तारों के विश्लेषण में विशेष सहायता मिलती है। इन वर्गीकरणों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है:

उर्जा का स्रोत (Source of Energy)

तारे अपनी ऊर्जा नाभिकीय अभिक्रिया से प्राप्त करते हैं। तारों के नाभिक के ताप के कारण तारों के हाइड्रोजन के परमाणु नाभिक्रिया से हीलियम के परमाणुओं में परिवर्तित होते रहते हैं। इसके परिणाम स्वरूप तारों में अत्यधिक ताप की उत्पत्ति होतीं हैं, जिसे ये प्रकाश के रूप में विकीर्ण करते रहते हैं। बहुत अधिक ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए इन्हें अत्यल्प विद्युत्कण खोने पड़ते हैं। अतएव इनकी द्रव्यमात्रा में कोई भारी कमी नहीं होती तथा इनका जीवन भी करोड़ों वर्षों का हो जाता है।

तारों का वायुमंडल (Steller Atmosphere)

तारों के वायुमंडल का अध्ययन भी वर्णक्रम की रेखाओं से किया जाता है। सूर्य के वायुमंडल के अध्ययन से हमें पता चला है कि इसमें हाइड्रोजन अत्यधिक मात्रा में हैं। दूसरा स्थान हीलियम का है। अन्य तत्व कम मात्रा में हैं, तथापि मैग्नीशियम और ऑक्सीजन के परमाणु निश्चित रूप से विद्यमान हैं। ज्ञात रासायनिक तत्वों में 61 तत्व सूर्य के वायुमंडल में पहचाने जा चुके हैं। अधिकाशं तारों का वायुमंडल सूर्य सरीखा है, तथापि सभी तारों का वायुमंडल बिलकुल एक सा नहीं है। इनमें कार्बन तथा ऑक्सीजन की मात्राओं में अंतर है।

तारों का मूल तत्व -

तारों के मूल तत्वों को उनके वर्णक्रम की रेखाओं के अध्ययन से जाना जाता है। प्रयोगशाला में विभिन्न मूल तत्वों के वर्णक्रम ले लिए जाते हैं तथा तारों के वर्णक्रमों का उनसे मिलान करके तारों में उपलबध मूल तत्वों की पहचान की जाती है। इस प्रकार के अध्ययन से पता चला है कि औसत तारों में लगभग 70 हाइड्रोजन, 28 हीलियम, 1.5 कार्बन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन तथा निऑन और 0.5 लोह वर्ग के तथा अन्य भारी तत्व होते हैं। भारी तत्व पॉपुलेशन प्रथम के तारों में लगभग 3 होते हैं तथा पॉपुलेशन द्वितीय वालों में 1 से भी कम।

तारों का विकास (Steller Evolution)

तारों का जन्म तारों के अंतर्वर्ती गैस तथा धूल के कणों से होता है। गैस के बादलों के विद्युत्कण सामान्यतया उदासीन अवस्था में रहते हैं, किंतु जब कोई अत्यधिक उष्ण तारा इनके समीप से जाता है तो ये आयनीकृत होकर गतिशील हो जाते हैं तथा इनमें एक नाभिक (nuclues) बन जाता है, जो आसपास के गैस तथा धूल के द्रव्यकणों को आकृष्ट करके विशालरूप धारण करने लगता है। गति तथा संकोचन से नाभिक का ताप बढ़ने पर, इनमें नाभिकीय अभिक्रिया (neclear reaction) प्रारंभ हो जाती है, जिससे ये प्रकाश ऊर्जा (light energy) को विकीर्ण करने लगते तथा हमें नए तारों के स्वरूप में दिखलाई देने लगते हैं। विभिन्न प्रकार के तारों की ऊर्जा विकीर्णता के अध्ययन से पता चला है कि पॉपुलेशन द्वितीय के तारे बहुत प्राचीन हैं तथा पापुलेशन प्रथम के तारे अपेक्षाकृत बाद में निर्मित हैं।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारतीय ज्योतिष में ग्रहों की संख्या ९ मानी जाती हैं। १. सूर्य, २. चन्द्र, ३. मंगल, ४. बुध, ५. गुरु, ६. शुक्र, ७. शनि, ८. राहु व ९. केतु। यद्यपि कुल ग्रहों की संख्या 9 ही नही हैं, अपितु इससे और भी अधिक ग्रहों की संख्या हो सकती हैं, जो हमें ज्ञात नहीं परन्तु ज्योतिष शास्त्र में मूल रूप से ये **नवग्रह** को स्थान दिया गया है, अत: इससे सम्बन्धित चर्चा ही हम प्रस्तुत अध्याय में करेगें।

सामान्य अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें **ग्रह** कहा जाता है। सूर्य और चन्द्र तारा तथा उपग्रह हैं इसी प्रकार राहु और केतु छाया ग्रह हैं। छाया ग्रह अर्थात् सूर्य तथा चन्द्र के (पृथ्वी से देखने पर) पथों के मिलन के दो बिंदु (चौराहे) हैं। मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, व शनि यह **पाँच ग्रह** हैं, लेकिन ग्रंथों में कहीं-कहीं इन्हें तारा कहा गया हैं। भारतीय फलित ज्योतिष में प्लूटो आदि ग्रहों का स्थान नहीं है। तारों की उत्पत्ति आकशगंगा में विद्यमान हाइड्रोजन एवं हीलियम गैसों के संगठन से होती है। अन्ततः इन दोनों गैसों की सघनता लघु मेघों के रूप में परिणत होती हैं। हम जानते हैं कि आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से सारे पदार्थ प्रायः 209 मूल तत्वों से बने हैं। जो मूल तत्व हमारी पृथ्वी पर पाए जाते हैं वे तारों एवं मन्दाकिनियों में भी पाए जाते हैं। विश्व द्रव्य में हाइड्रोजन एवं हीलियम गैसों की प्रधानता है। पृथ्वी के वायुमण्डल से ये हल्की गैसें काफी पहले उड़ गई हैं। अतः पृथ्वी पर आज भारी तत्त्व कुछ अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की द्रव्यराशि में हाइड्रोजन की मात्रा सर्वाधिक एवं 15.9 प्रतिशत हीलियम गैसें हैं। शेष सभी तत्त्वों के प्रमाणों की मात्रा 0.2 प्रतिशत सम्मिलित रूप में हैं। हाइड्रोजन तारों का ईंधन है। हाइड्रोजन के परमाणुओं का संगठन होकर जब यह हीलियम में रूपान्तरित होती है तो तब ताप नाभिकीय भीषणतम ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। इन्हीं दो गैसों की संघटनता—जो मेघों के रूप में परिवर्तित होती है, के आकार बढ़ने के अन्तर उनमें गुरुत्वाकर्षण के कारण निपात होता है। आकाश में कई ऐसे स्वरूप हमें दिखते है, जिनका अवलोकन कर उनके बारें में हमें जानने की इच्छा होती हैं। टिमटिमाते हुए असंख्य तारें भी उन स्वरूपों में से एक हैं, जिनके बारें में हमें जानने की जिज्ञासा होती हैं हम पृथ्वी के सापेक्ष तो उसे देखते हैं, परन्तु वहीं तारे नजदीक से कैसे दिखलाई देते हैं, उनका स्वरूप कैसा होता हैं, उनका खगोल एवं मानव जीवन में क्या महत्व हैं आदि इत्यादि विषयों का अध्ययन आप प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद प्राप्त कर पायेंगे ।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रह – सूर्य या किसी अन्य तारें के चारों ओर परिक्रमा करने वाले खगोलपिण्डों को ग्रह कहते है।

उपग्रह - ग्रहस्य समीपं उपग्रहम्।

आदित्य – सूर्य का आदि में उत्पत्ति होने के कारण उसे आदित्य कहते है।

सुरसेनापति – मंगल
कार्बनडाइऑक्साइड – CO_2 गैस
प्रत्यक्ष – ऑखों के सामने दिखलाई पड़ना
वरूण - पाश्चात्य मत में सौरमण्डल का आठवॉ ग्रह
ज्यूपिटर – वृहस्पति
सैटर्न - शनि
खगोलविद् – जो खगोल सम्बन्धित ज्ञाता हो

तारा – तारा स्वयं प्रकाशित उष्ण गैस की द्रव्यमात्रा से भरपूर विशाल खगोलीय पिण्ड है।

तारापुंज - तारों के प्रकाश को तारापुंज कहते है।

खगोलीय पिण्ड - खगोल में स्थित ग्रहपिण्ड को खगोलीय पिण्ड कहते है।
जिज्ञासा – जानने के लिये उत्सुक
पापुलेशन - जनसंख्या
अवलोकन – देखना
प्रयोगशाला- वह स्थान प्रयोग किया जाता हो।
वेधशाला - वह स्थान जहॉ यन्त्रों के द्वारा वेध किया जाता है ।
नाभिकीय अभिक्रिया - एक रासायनिक अभिक्रिया

3.7 बोध प्रश्न 2 के उत्तर -

1. ख
2. घ
3. क
4. ख
5. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ग्रह और उपग्रह
2. सूर्यसिद्धान्त
3. अर्वाचीनं ज्योतिर्विज्ञानम्
4. ज्योतिर्विज्ञानम्

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रह एवं उपग्रह को परिभाषित करते हुए उसके महत्व पर प्रकाश डालें।
2. ग्रह एवं उपग्रह की विस्तृत व्याख्या कीजिये।
3. तारों को परिभाषित करते हुए उसके उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन कीजिये।
4. तारकापुंज क्या है। तारा के महत्व बतलाते हुए तेजस्वी तारों का वर्णन करें।

इकाई – 4 क्षुद्र, वामन ग्रह, धूमकेतु तथा उल्का

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 क्षुद्र एवं वामनग्रह परिचय

4.3.1 क्षुद्र ग्रहों का भौतिक स्वरूप एवं वर्गीकरण

4.4 धूमकेतु तथा उल्का परिचय

4.5 बोध प्रश्न के उत्तर

4.6 सारांशः

4.7 पारिभाषिक शब्दावली

4.8 बोधप्रश्नों के उत्तर

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई 'क्षुद्र, वामनग्रह, धूमकेतु तथा उल्का' से सम्बन्धित हैं। इसके पूर्व के अध्यायों में आपने आकाशगंगा, निहारिका, सौर - परिवार, ग्रह-उपग्रह, तारे एवं तारापुंज आदि का ज्ञान प्राप्त किया हैं, उसी क्रम में खगोल ज्ञान के अन्तर्गत आकाश से जुडा एक भाग क्षुद्र, वामनग्रह, धूमकेतु तथा उल्का भी हैं, जिसका ज्ञान आप सम्यक् रूप से इस अध्याय में करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको ज्ञात हो जायेगा कि क्षुद्र एवं वामन ग्रह क्या हैं, तथा उसका स्वरूप एवं महत्व क्या हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. क्षुद्र एवं वामनग्रह को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेगें।
2. क्षुद्र एवं वामनग्रह के महत्त्व को समझा सकेगें।
3. क्षुद्र एवं वामनग्रह के विभेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. धूमकेतु को परिभाषित कर स्पष्ट रूप से समझा सकेंगे।
5. उल्का का विवेचन कर सकेंगे।

4.3 क्षुद्र एवं वामन ग्रह परिचय

क्षुद्र ग्रह (Asteroids) या अवांतर ग्रह -- पथरीले और धातुओं के ऐसे पिंड है जो सूर्य की परिक्रमा करते हैं लेकिन इतने लघु हैं कि इन्हें ग्रह नहीं कहा जा सकता। इन्हें **लघु ग्रह या क्षुद्र ग्रह या ग्रहिका** कहते हैं। हमारी सौर प्रणाली में लगभग 100,000 क्षुद्रग्रह हैं लेकिन उनमें से अधिकतर इतने छोटे हैं कि उन्हें पृथ्वी से नहीं देखा जा सकता। प्रत्येक क्षुद्रग्रह की अपनी कक्षा होती है, जिसमें ये सूर्य के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। इनमें से सबसे बड़ा क्षुद्र ग्रह हैं 'सेरेस'। इतालवी खगोलवेत्ता पीआज्जी ने इस क्षुद्रग्रह को जनवरी 1801 में खोजा था। केवल 'वेस्टाल' ही एक ऐसा क्षुद्रग्रह है जिसे नंगी आंखों से देखा जा सकता है यद्यपि इसे सेरेस के बाद खोजा गया था। इनका आकार 1000 किमी व्यास के सेरस से 1 से 2 इंच के पत्थर के टुकड़ों तक होता है। ये क्षुद्र ग्रह पृथ्वी की कक्षा के अंदर से शनि की कक्षा से बाहर तक है। इनमें से दो तिहाई क्षुद्रग्रह मंगल और बृहस्पति के बीच में एक पट्टे में है। 'हिडाल्गो' नामक क्षुद्रग्रह की कक्षा मंगल तथा शनि ग्रहों के बीच पड़ती है। 'हर्मेस' तथा 'ऐरोस' नामक क्षुद्रग्रह पृथ्वी से कुछ लाख किलोमीटर की ही दूरी पर हैं। कुछ की कक्षा पृथ्वी की कक्षा को काटती है और कुछ ने भूतकाल में पृथ्वी को टक्कर भी मारी है। एक उदाहरण

महाराष्ट्र में **लोणार झील** है।

ऐरोस एक छोटा क्षुद्रग्रह है जो क्षुद्रग्रहों की कक्षा से भटक गया है तथा प्रत्येक सात वर्षों के बाद पृथ्वी से 256 लाख किलोमीटर की दूरी पर आ जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि चन्द्रमा के अतिरिक्त यह पृथ्वी के सबसे नजदीक का पिंड बन जाता है। इसकी खोज 1898 में जी.विट ने की थी । वैज्ञानिकों ने अपने हाल ही के अध्ययनों में प्लूटो की कक्षा से परे भी क्षुद्रग्रहों का एक बैल्ट (पट्टी) की उपस्थिति की संभवना प्रकट की है। ये पिंड शक्तिशाली दूरबीनो के माध्यम से उड़नतश्तरियों जैसे हैं। उनमें से कुछ बहुत चमकदार हैं, जबकि कुछ अन्य बहुत मध्यम हैं। उनके आकारों को उनकी चमक के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

अधिकतर क्षुद्रग्रह उन्हीं पदार्थों से बने हैं, जिनमें पृथ्वी पर पाए जाने वाले पत्थर बने हैं। हालांकि उनकी सतह के तापमान भिन्न हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार ये मंगल और गुरु के बीच में किसी समय रहे प्राचीन ग्रह के अवशेष है जो किसी कारण से टुकड़ों में बंट गया। इस कल्पना का एक कारण यह भी है कि मंगल और गुरु के बीच का अंतराल सामान्य से ज़्यादा है। दूसरा कारण यह है कि सूर्य के ग्रह अपनी दूरी के अनुसार द्रव्यमान में बढते हुये और गुरु के बाद घटते क्रम में है। इस तरह से मंगल और गुरु के मध्य में गुरु से छोटा लेकिन मंगल से बड़ा एक ग्रह होना चाहिये। लेकिन इस प्राचीन ग्रह की कल्पना सिर्फ़ एक कल्पना ही लगती है क्योंकि यदि सभी क्षुद्र ग्रहो को एक साथ मिला भी लिया जाये तब भी इनसे बना संयुक्त ग्रह 1500 किमी से कम व्यास का होगा जो कि हमारे चन्द्रमा के आधे से भी कम है। एक दूसरी कल्पना के अनुसार क्षुद्र ग्रह सौर मंडल बन जाने के बाद बचे हुये पदार्थ है। यद्यपि उनके जन्म के बारे में कुछ भी ठीक से कहा नहीं जा सकता ।

प्रथम दस क्षुद्रग्रहों का भौतिक स्वरूप

क्र. सं.	ग्रहों का नाम	अन्वेषण वर्ष	सूर्य से दूरी कि.मी.	आवर्तकाल वर्ष	कक्षीय झुकाव	व्यासमान कि.मी.
1.	सिरीज	1801	413513000	4.60	$10^0\ 37'$	687
2.	पालाज	1802	414156600	4.61	$34^0\ 48'$	450
3.	जूनो	1804	398710200	4.36	$13^0\ 00'$	241
4.	वेस्टा	1807	352853700	3.63	$7^0\ 08'$	388
5.	ऐस्ट्रेआ	1845	385033700	4.14	$5^0\ 21'$	179
6.	हेवे	1847	362346800	3.78	$14^0\ 45'$	170
7.	आइरिस	1847	356393500	3.68	$5^0\ 31'$	150
8.	लोरा	1847	328879600	3.27	$5^0\ 54'$	124
9.	मैंटिस	1848	356715300	3.69	$5^0\ 36'$	267
10.	हाइगिया	1849	470793400	5.59	$3^0\ 49'$	354

पृथ्वी के समीप आने वाले क्षुद्र ग्रह

क्र.	ग्रहों के	अन्वेषण	आवर्त काल	कक्षीय	कक्षीय

सं.	नाम	वर्ष	वर्ष	झुकाव	उत्केन्द्रता
1.	इरोज	1899	1.76	$10^0.8$	0.22
2.	ऐमोर	1932	2.67	$11^0.9$	0.44
3.	पेपोली	1932	1.81	$6^0.4$	0.57
4.	ऐडोनि	1936	2.76	$1^0.5$	0.78
5.	हर्मीज	1936	1.47	$4^0.7$	0.48
6.	इकारस	1949	1.12	$23^0.0$	0.83

यम (प्लूटो)

हमारे सौरमण्डल के इस नौवें ग्रह की खोज भी कुछ नेपच्यून की ही तरह सन् 1930 में हुई। यूरेनस की कक्षा में गति एवं स्थिति की गड़बड़ी ने ही पुनः वैज्ञानिकों को यह विचार करने को विवश किया कि नेपचून के परे भी कोई पिंड हो सकता है। प्रसिद्ध खगोलशास्त्री 'लोवेल' 1905 ईस्वीय वर्ष से ही इसकी खोज में जुट गए। लोवेल ने अफ्रीका के 'फ्लैगस्टाफ' नामक स्थान में इस कार्य के निमित्त एक वेधशाला स्थापित की परन्तु सन् 1916 में इनकी मृत्यु हो गई जिसके कारण ये इस ग्रह को खोज नहीं सके। इसके पश्चात् अन्य खगोलशास्त्रियों ने खोज जारी रखी। 1929 में टॉमबो जो अमेरिकावासी थे, इन्होंने भी इस ग्रह की खोज प्रारम्भ कर दी। इस समय तक आकाश के चित्र लेने की 'तकनीकी' का विकास हो चुका था। इसी आधार पर कई रातों तक आकाश के ग्रह–नक्षत्रों के चित्र लिए गए। अन्ततः इसी विधि से 'टॉमबो' ने सौरमण्डल का नौवाँ ग्रह खोज निकाला। जिसको 'प्लूटो' नाम दिया गया। यूनान में प्लूटो को मृत्यु का देवता कहा जाता है इसलिए भारतीयों ने इसे यम कह दिया। कुछ लोगों ने इसे कुबेर कहा। 4.7 कि.मी. प्रति सेकेण्ड के वेग से चलते हुए यह 248 वर्षों में सूर्य की एक परिक्रमा पूरी करता है। यह सूर्य से लगभग 6 अरब किलोमीटर दूरी पर स्थित है। खगोलज्ञों के अनुमान से यह नौवाँ ग्रह भारी होना चाहिए था परन्तु नूतन अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि प्लूटो ग्रह पृथ्वी से हलका है। प्लूटो ग्रह की कक्षा अन्य ग्रहों की अपेक्षा अधिक अण्डाकार है। इसी कारण न्यूनतम दूरी के समय प्लूटो की कक्षा नेपच्यून की कक्षा के भीतर आ जाती है। प्लूटो का एक चन्द्र भी है जिसकी खोज 1978 ई. में हुई।जाती है। प्लूटो का एक चन्द्र भी है जिसकी खोज 1978 ई. में हुई। प्लूटो के इस चन्द्र का नाम चेरॉन (कारॉन) रखा गया। इसका व्यास 1400 कि.मी. के आसन है। इसका आवर्तकाल 6.3748 दिनों का होता है।

यम (प्लूटो) का भौतिक स्वरूप

1.	सूर्य से दूरी	5913510000 किलोमीटर
2.	व्यास मान	5500 किलोमीटर
3.	अक्षीय परिभ्रमण काल	6 दिन 9.3 घंटे
4..	कक्षीय परिभ्रमण काल	248.5 वर्ष
5.	द्रव्यमान	6.57 (पृथ्वी=1)
6.	पृष्ठीय तापमान	-220^0 सेंटीग्रेड
7.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0.248 अंशात्मक
8.	कक्षीय झुकाव	17^0 10′
9.	कक्षीय गति	4.7 (कि.मी. / सेकेण्ड)
10.	पलायन गति	5.4 (कि.मी. / सेकेण्ड)

11.	गुरुत्वाकर्षण	0.58 (पृथ्वी = 1)
12.	घनत्व	0.96 (पृथ्वी = 1)
13.	उपग्रहों की संख्या	1 (एक)

वरुण और यम ग्रह के अन्वेषण के ही अनुरूप यम की कक्षा से बाहर एक और ग्रह हो सकता है। कुछ भारतीयों एवं कुछ पाश्चात्य ज्योतिर्विदों की स्पष्ट अवधारणा है कि दसवां ग्रह अवश्य है, मात्र दूरी अधिक होने के कारण उसकी खोज करना कठिन है। अभी तक यह स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर नहीं हो पाया है। कुछ विद्वानों का कहना है कि सूर्य से इस ग्रह की दूरी औसतन 1150 करोड़ किलोमीटर है। विद्वानों का मानना है कि सौर–परिवार में आने वाले कुछ धूमकेतु यम की कक्षा से सुदूर बाहर जाकर पुनः सूर्य के समीप आते हैं। यम से सुदूर का अभिप्राय है कि ये धूमकेतु उस दशम ग्रह की कक्षा से बाहर जाकर लौटते हैं। प्लूटो का चन्द्रमा चेरॉन (कारॉन) प्रायः प्लूटो का आधा है। यह द्विग्रह का आभास भी कराता है। इस ग्रह की सर्वप्रथम स्पष्ट कल्पना भारतीय ज्योतिर्विद केतकर महोदय ने की थी। इस समय सभी इसकी सत्ता स्वीकार करते हैं। आज वैज्ञानिक इस दसवें ग्रह एवं अन्य ग्रहों, उपग्रहों के अन्वेषण में निरन्तर अध्ययन एवं अनुसंधान कार्य में संलग्न है।

बोध प्रश्न

1. क्षुद्र ग्रह क्या है ?
2. वामन ग्रह से आप क्या समझते है ?
3. प्रथम दस क्षुद्र ग्रहों का नाम लिखिए ?
4. क्षुद्र ग्रहों के स्वरूपों का वर्णन करें ।
5. यम प्लूटों का वर्णन करें।

क्षुद्र ग्रह का स्वरूप

क्षुद्र ग्रहों के बारे में हमारी जानकारी उल्कापात में बचे हुये अबशेषो से है । जो क्षुद्र ग्रह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से पृथ्वी के वातावरण में आकर पृथ्वी से टकरा जाते है उन्हें उल्का (Meteoroids) कहा जाता है। अधिकतर उल्काये वातावरण में ही जल जाती है लेकिन कुछ उल्काये पृथ्वी से टकरा भी जाती है। इन उल्काओं का 22% भाग सीलीकेट का और 5% भाग लोहे और निकेल का बना हुआ होता है। उल्का अवशेषो को पहचाना मुश्किल होता है क्योंकि ये सामान्य पत्थरों जैसे ही होते हैं। क्षुद्र ग्रह, सौर मंडल के जन्म के समय से ही मौजुद है। इसलिये वैज्ञानिक इनके अध्यन के लिये उत्सुक रहते हैं। अंतरिक्षयान जो इनके पट्टे के बिच से गये है उन्होंने पाया है कि ये पट्टा सघन नहीं है, इन क्षुद्र ग्रहो के बीच में काफ़ी सारी ख़ाली जगह है। अक्टूबर 1991 में गलेलियो यान क्षुद्र ग्रह क्रमांक **951 गैसपरा** के पास से गुजरा था। अगस्त 193 में गैलीलियो ने क्षुद्र ग्रह क्रमांक **243 इडा** की नजदिक से तस्वीरे ली थी। ये दोनो ‘S’ वर्ग के क्षुद्र ग्रह है।
अब तक हज़ारों क्षुद्रग्रह देखे जा चुके है और उनका नामकरण और वर्गीकरण हो चुका है। इनमे

प्रमुख है टाउटेटीस, कैस्टेलिया, जीओग्राफोस और वेस्ता। 2 पालास, 4 वेस्ता और 10 हाय्जीया ये 400 किमी और 525 किमी के व्यास के बीच है। बाकि सभी क्षुद्र ग्रह 340 किमी व्यास से कम के है । धूमकेतु, चन्द्रमा और क्षुद्र ग्रहों के वर्गीकरण में विवाद है। कुछ ग्रहों के चन्द्रमाओं को क्षुद्रग्रह कहना बेहतर होगा जैसे- मंगल के चन्द्रमा फोबोस और डीमोस, गुरु के बाहरी आठ चन्द्रमा, शनि का बाहरी चन्द्रमा फोएबे आदि ।

सौर मण्डल के बाहरी हिस्सों में भी कुछ क्षुद्र ग्रह है जिन्हें सेन्टारस कहते हैं। इनमे से एक 2060 शीरॉन है जो शनि और यूरेनस के बीच सूर्य की परिक्रमा करता है। एक क्षुद्र ग्रह 5335 डेमोकलस है जिसकी कक्षा मंगल के पास से यूरेनस तक है। 5145 फोलुस की कक्षा शनि से नेपच्युन के मध्य है। इस तरह के क्षुद्र ग्रह अस्थायी होते हैं। ये या तो ग्रहों से टकरा जाते हैं या उनके गुरुत्व में फंसकर उनके चन्द्रमा बन जाते हैं। क्षुद्र ग्रहों को आंखों से नहीं देखा जा सकता लेकिन इन्हें छोटी दूरबीन से देखा जा सकता है।

वर्गीकरण

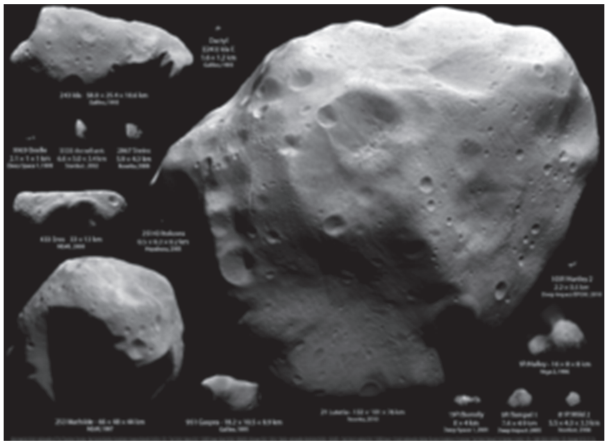

क्षुद्रग्रह

Asteroids

1. **C वर्ग** :-- इस श्रेणी में 75% ज्ञात क्षुद्र ग्रह आते हैं। ये काफ़ी धुंधले होते हैं। (albedo 0.03)। ये सूर्य के जैसे संरचना रखते हैं लेकिन हाइड्रोजन और हीलियम नहीं होता है।
2. **S वर्ग** :-- 17%, कुछ चमकदार (albedo 0.10 से 0.22), ये धातुओं लोहा और निकेल तथा मैगनेशियम सीलीकेट से बने होते हैं।
3. **M वर्ग** :-- अधिकतर बचे हुये :- चमकदार (albedo 0.10 से 0.18), निकेल और लोहे से बने।

इनका वर्गीकरण इनकी सौरमण्डल में जगह के आधार पर भी किया गया है।

1. मुख्य पट्टा : मंगल और गुरु के मध्य। सूर्य से 2 - 4 AU दूरी पर। इनमे कुछ उपवर्ग भी है :- हंगेरीयास, फ़्लोरास, फोकीआ, कोरोनीस, एओस, थेमीस, सायबेलेस और हिल्डास। हिल्डास इनमे

मुख्य है।

2. पृथ्वी के पास के क्षुद्र ग्रह (NEA)
3. ऐटेन्स :- सूर्य से 1.0 AU से कम दूरी पर और 0.983 AU से ज़्यादा दूरी पर।
4. अपोलोस :- सूर्य से 1.0 AU से ज़्यादा दूरी पर लेकिन 1.017 AU से कम दूरी पर।
5. अमार्स :- सूर्य से 1.017 AU से ज़्यादा दूरी पर लेकिन 1.3 AU से कम दूरी पर।
6. ट्राजन :- गुरु के गुरुत्व के पास।

वामन ग्रह या तारा

सौरमंडल बाह्य जीवन योग्य ग्रहो की खोज मे एक नयी सफलता मीली है। वैज्ञानिको ने एक त्रिक तारा समूह(Triple Star System) में एक ग्रह खोजा है जो कि हमारे सौरमंडल के समीप 22 प्रकाशवर्ष की दूरी पर है। इससे बड़ा उत्साहजनक बात यह है कि यह ग्रह गोल्डीलाक क्षेत्र (जीवन योग्य क्षेत्र) मे है । इस ग्रह का नाम GJ 667Cc है ।

GJ 667 यह एक तीन तारो का समूह है और हमारे सौरमंडल के समीप है, केवल 22 प्रकाशवर्ष की दूरी पर, जो कि इसे सौरमंडल के सबसे समीप के तारो मे स्थान देता है। इस समूह के दो तारे हमारे सूर्य की तुलना मे छोटे और ठंडे है। ये दोनो तारे एक दूसरे की काफी समीप से परिक्रमा करते है जबकि एक तीसरा छोटा तारा इन दोनों तारों की 35 अरब किमी दूरी पर से परिक्रमा करता है। एकाधिक तारों के समूह में तारों को रोमन अक्षरो के कैपीटल अक्षर से दर्शाया जाता है, इसलिये इस समूह के दो बड़े तारे GJ 667A तथा GJ 667B है, तीसरे छोटे तारे का नाम GJ667C है।

इसमें तीसरा तारा हमारे लिये महत्वपूर्ण है। यह एक ठंडा M वर्ग(M Class) का वामन तारा(Dwarf Star) है, इसका व्यास सूर्य के व्यास का एक तीहाई है। सूर्य की तुलना मे यह धूंधला है क्योंकि वह तुल्नात्मक रूप से सूर्य के प्रकाश का 1% ही उत्सर्जित करता है। इसके आसपास ग्रह की खोज के लिये अध्ययन कुछ वर्षो से जारी थे और इसके संकेत भी मीले थे। नयी खोज मे पहली बार इस तारे की परिक्रमा करते ग्रह के ठोस प्रमाण मीले है।

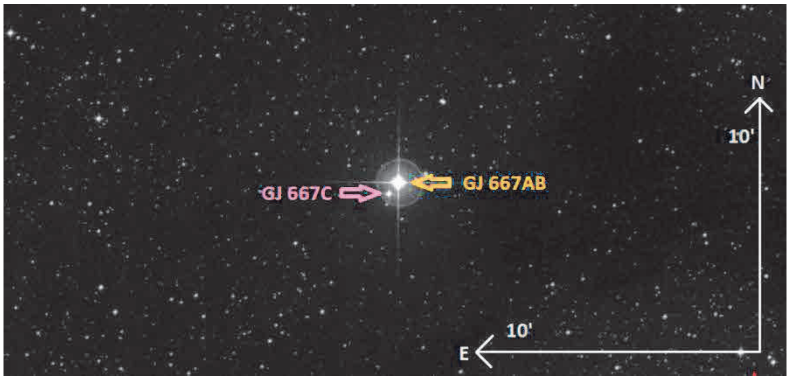

GJ667 तारासमूह प्रणाली

इस अध्ययन मे डाप्लर प्रभाव का प्रयोग किया गया। जब कोई ग्रह किसी तारे की परिक्रमा करता है तब उसका गुरुत्वाकर्षण अपने मातृ तारे को भी खिंचता है। मातृ तारे पर यह प्रभाव सीधे सीधे मापा नही जा सकता है लेकिन डाप्लर प्रभाव के द्वारा उस तारे के वर्णक्रम(Spectrum) मे एक स्पष्ट विचलन दिखायी देता है। यह किसी दूर जाती ट्रेन की ध्वनि की पीच मे आये बदलाव के जैसा ही है। यदि इस वर्णक्रम का मापन ज्यादा सटिक होतो यह वर्णक्रम ग्रह का द्रव्यमान, कक्षा तथा परिक्रमाकाल तक की जानकारी दे सकता है।

इस मामले मे वर्णक्रम दर्शाता है कि GJ667C के चार ग्रह हो सकते है। दो सबसे गहरे संकेत इन ग्रहो का परिक्रमा काल 7दिन तथा 28 दिन दर्शाते है, तीसरे ग्रह का परिक्रमा काल 75 दिन है। चौथे ग्रह के संकेत उसके परिक्रमा काल को लगभग 20 वर्ष दर्शाते है।

इनमे से 28 दिनो के परिक्रमा काल वाला ग्रह महत्वपूर्ण है। इस ग्रह का द्रव्यमान पृथ्वी से 4.5 गुणा है, जो इसे भारी और विशाल बनाता है। 28 दिनो की कक्षा ग्रह को मातृ तारे की समीप की कक्षा अर्थात लगभग 70 लाख किमी – 50 लाख किमी की कक्षा मे स्थापित करती है। (तुलना के लिए बुध सूर्य से 570 लाख किमी दूरी की कक्षा मे है।) लेकिन ध्यान दे कि GJ667 यह एक धूंधला और अपेक्षाकृत ठंडा तारा है, जिससे इस दूरी पर यह ग्रह जीवन योग्य क्षेत्र के मध्य मे आता है। किसी ग्रह पर जल द्रव अवस्था मे की उपस्थिति तारे के आकार, तापमान तथा ग्रह के गुणधर्मो पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिये किसी बादलो से घींरे ग्रह पर ग्रीनहाउस प्रभाव के द्वारा उष्णता सोख लीये जाने से वह ग्रह तारे से दूर होने के बावजूद भी गर्म हो सकता है।

यदि यह ग्रह चट्टानी है, इस पर द्रव जल हो सकता है। अभी हम इस ग्रह के द्रव्यमान के अतिरिक्त कुछ नही जानते है। इस ग्रह का द्रव्यमान पृथ्वी के चार गुणे से ज्यादा है अर्थात चार गुणे से ज्यादा गुरुत्वाकर्षण! इतना ज्यादा गुरुत्वाकर्षण मे कोई भी जीव अपने ही भार से दबकर मर जायेगा!

यह सत्य है कि गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान पर निर्भर करता है, दो गुणा द्रव्यमान अर्थात दो गुणा गुरुत्वाकर्षण । लेकिन गुरुत्वाकर्षण आकार के प्रतिलोम-वर्ग (inverse square) पर भी निर्भर करता है। यदि द्रव्यमान समान रहे लेकिन त्रिज्या दोगुणी कर दी जाये तब गुरुत्वाकर्षण एक चौथाई हो जाता है। इसलिये यदि GJ667C का द्रव्यमान चार गुणा हो लेकिन त्रिज्या दोगुणी हो तब उसका गुरुत्व पृथ्वी के समान ही होगा। मुद्दा यह है कि ग्रह को उसके द्रव्यमान के आधार पर जांचा नही जा सकता है। हम अभी यह नही जानते है किं इस ग्रह पर वातावरण है या नही। लेकिन ऐसा लगता है कि अपने गुरुत्वाकर्षण से यह ग्रह वातावरण को बांधे रखने मे सक्षम होगा। यदि इसपर वातावरण हो लेकिन हम यह नही जान सकते कि इस पर द्रव जल है या नही! वर्तमान मे इससे जुड़े अनेक अज्ञात है, लेकिन आशा अभी बलवती है! क्यों ?

इसके दो कारण है। इस तरह के लाल वामन तारो की हमारी आकाशगंगा मे भरमार है। वे हमारे सूर्य के जैसे तारो की तुलना मे 10 गुणा ज्यादा है। यदि इनमे से एक के पास ग्रह है, वह भी एक त्रिक तारा समूह मे । इसका अर्थ यह है कि किसी तारे के पास ग्रह होना हमारी आकाशगंगा मे बहुत ही

सामान्य है । वैसे यह तथ्य और भी अध्ययनो से ज्ञात हो रहा है लेकिन एक और पुष्टि इसे और मजबूत बना रही है। दूसरा कारण यह है कि यह ग्रह हमारे समीप है। हमारी आकाशगंगा के व्यास 100,000 प्रकाशवर्ष की तुलना मे 20 प्रकाश वर्ष कुछ नही है। इतनी कम दूरी पर ही हमारी पृथ्वी से थोड़ा भी मीलते जुलते ग्रह की खोज यह दर्शाती है कि हमारी आकाशगंगा ऐसे अरबो ग्रह हो सकते है। जिसमे कुछ तो जीवन की संभावना से भरपूर होंगे ही । तीसरा बिंदु यह है कि इन तारो मे भारी तत्वो की कमी है। GJ667C का वर्णक्रम दर्शाता है कि इस तारे मे सूर्य की तुलना मे आक्सीजन और लोहे की मात्रा कहीं कम है। अब तक के अध्ययन यह दर्शाते है कि इस तरहे के तारों के ग्रह होने की संभावना सूर्य जैसे तारों की तुलना मे कम होती है, जिसमे इस तरह के तत्व(आक्सीजन/लोहा) की बहुतायत है। शायद हम भाग्यशाली है कि हमारे पास के भारी तत्वो की कमी वाले तारे के पास ग्रह है या इसके पहले के अध्ययन मे कुछ कमी थी और इस तरह के तारो के भी ग्रह हो सकते है। कुल मिलाकर ग्रहो की संख्या बहुत ज्यादा हो सकती है।

आकाश में कभी-कभी एक ओर से दूसरी ओर अत्यंत वेग से जाते हुए अथवा पृथ्वी पर गिरते हुए जो पिंड दिखाई देते हैं उन्हें **उल्का** (meteor) और साधारण बोलचाल में **'टूटते हुए तारे' अथवा 'लूका'** कहते हैं। उल्काओं का जो अंश वायुमंडल में जलने से बचकर पृथ्वी तक पहुँचता है उसे **उल्कापिंड (meteorite)** कहते हैं। प्राय: प्रत्येक रात्रि को उल्काएँ अनगिनत संख्या में देखी जा सकती हैं, किंतु इनमें से पृथ्वी पर गिरनेवाले पिंडों की संख्या अत्यंत अल्प होती है। वैज्ञानिक दृष्टि से इनका महत्व बहुत अधिक है क्योंकि एक तो ये अति दुर्लभ होते हैं, दूसरे आकाश में विचरते हुए विभिन्न ग्रहों इत्यादि के संगठन और संरचना (स्ट्रक्चर) के ज्ञान के प्रत्यक्ष स्रोत केवल ये ही पिंड हैं। इनके अध्ययन से हमें यह भी बोध होता है कि भूमंडलीय वातावरण में आकाश से आए हुए पदार्थ पर क्या-क्या प्रतिक्रियाएँ होती हैं। इस प्रकार ये पिंड ब्रह्माण्डविद्या और भूविज्ञान के बीच संपर्क स्थापित करते हैं।

धूमकेतू (कोमेट)

हमारे सौरमण्डल में ग्रह–उपग्रहों एवं क्षुद्र ग्रहों को छोड़कर कुछ अन्य प्रकाश पिण्ड भी दिखाई देते हैं। ये कभी–कभी ही हमको आकाश में दिखाई देते हैं। प्रायः इनका दिखाई देने का समय एक सप्ताह से एक मास पर्यन्त होता है। इसके पश्चात् ये दिखाई देने वाले प्रकाश पिण्ड अदृश्य हो जाते हैं। इनकी आकृतियाँ अन्य ग्रहों की तरह नहीं होती है। ये प्रकाशपुंज पहले गोल वर्तुलाकार दिखाई देते हैं। इनकी एक पूँछ होती है। जैसे–जैसे ये भ्रमण करते हुए सूर्य के समीप पहुँचते हैं इनकी पूंछ बढ़ती जाती है। इसी पूंछ के कारण इनको 'पुच्छल तारा' कहते हैं। इन पुच्छल तारों को ही लोग धूमकेतु भी कहते हैं। जिसकी पूँछ का निर्माण धूम से हुआ हो, उसे ही धूमकेतु कहते हैं। वेद और वेदेतर साहित्य में बहुत जगहों पर धूमकेतुओं का वर्णन विस्तार पूर्वक मिलता है, यथा–

शन्नो मृत्युर्धूमकेतु शं रुद्रास्तिग्मतेजसः।[1] अ. सं. 10।6।10

असम्भृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्दः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः। ऋ. सं. 5।11।3

घृतन त्वावर्धयननग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः।[2] ब्रह्माण्ड पुराण 1।24।139

अर्थात् दिव्य आपः ने तुझे बढ़ाया, हे अग्ने! जिसमें हवियाँ दी जाती हैं, धूम तेरा केतु हुआ और द्यु–लोक में ठहरा। *ब्रह्माण्ड पुराण*[3] धूमकेतु को सब केतुओं में प्रमुख बताया है। आचार्य वराहमिहिर के प्रसिद्धि ग्रन्थ *वृहत्संहिता* में केतुओं का वर्णन विस्तृत रूप से मिलता है। इनके नाम बताए गए हैं–रविपुत्र, चन्द्रपुत्र, गुरुपुत्र, रविसम्भव, है। इनके नाम बताए गए हैं–रविपुत्र, चन्द्रपुत्र, गुरुपुत्र, रविसम्भव, बुधसम्भव, शुक्रसम्भव आदि। ऋषियों के नाम पर भी धूमकेतुओं का नाम उपलब्ध होता है। यथा–उद्दालककेतु, काश्यपकेतु आदि। भारतीय देवज्ञों ने केतुओं के वर्ण (रूप), आकार, आवर्तकाल आदि का वर्णन भी किया है। *वृहत्संहिता*[4] ग्रन्थ के टीकाकार भट्टोत्पल ने केतुओं के आवर्तकाल के सन्दर्भ में पराशर संहिता का मत प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा है कि–पैतामह चलकेतु 500 वर्षों के बाद उदित होता है। उद्दालकश्वेतकेतु 110 वर्षों के बाद दिखाई देता है। आकाश में शूलाग्र (तीव्र नोख) शिखा वाला यह शूलग्राशिखाश्वेत (धवल) केतु 'ब्रह्मा' ताराराशि मण्डल एवं सप्त ऋषि तारामण्डल को स्पर्श करते हुए 1500 वर्षों के बाद उदित होता है अर्थात् इस केतु का भ्रमण काल 1500 वर्षों का होता है।

आचार्य देवल ने 108 केतुओं का वर्णन एवं उनकी गुणधर्मिता के आधार पर उनका विभाजन भी किया है जबकि पराशर ने 101 केतुओं का उल्लेख किया है। गुणधर्मिता के आधार पर केतुओं का विभाजन इस प्रकार है–

केतुओं के नाम	केतुओं की संख्या
1. आग्नेय	15
2. रौद्र	21
3. उद्दालक सुत	10
4. काश्यप	14
5. मृत्यु	4
6. क्षितितनय	25
7. सोम सम्भव	3
8. वरुण	3
9. यमपुत्र	13

अदभुतसागर नामक ग्रन्थ में वर्णन मिलता है कि औद्दालक श्वेत केतु और प्रजापति सुतकेतु सात रात्रि पर्यन्त दिखाई देते हैं। इसी प्रकार धूमकेतुओं का वर्णन बहुत स्थलों पर मिलता है।

पाश्चात्य लोगों ने इसे कॉमेट कहा। यह शब्द यूनानी भाषा के 'कोमेल' शब्द से बना है। जिसका अर्थ होता है 'लम्बे बालों वाला'। जहाँ भारतवर्ष गुणधर्मिता के आधार पर केतुओं पर विचार करता था, वही भारतेतर देशों में लोग धूमकेतुओं से बहुत डरते थे। भारत के बाहर सर्वप्रथम यूरोप के महान खगोलविद 'तीखा ब्राहे' ने 1577 ई. में पहली बार यह सिद्ध किया कि ये धूमकेतु पृथ्वी एवं चन्द्रमा से बहुत दूर होते हैं।

कुछ छोटे पुच्छल तारे इतने छोटे होते हैं कि वे दूरदर्शक से ही देखे जा सकते हैं। कई एक तो बिना पूँछ के भी होते हैं। प्रारम्भ में प्रायः सभी बिना पूँछ के होते हैं, जब ये सूर्य के समीप आने लगते हैं तब इनकी पूँछ का निर्माण होता है। मुख्यतः इन पुच्छल तारों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–(1) नाभि (NUCLEUS), (2) शिखा या

सिर (HEAD), (3) पुच्छ (TAIL)। नाभि वाला भाग छोटा और चमकीला होता है। यह भाग सिर के बीच में होता है। बहुत से पुच्छल तारों में पहले नाभि नहीं होती है। जब यह तारा सूर्य के समीप जाता है तभी नाभि का निर्माण होता है। पुच्छल तारों की पूँछ प्रायः चमकीली एवं झाडू के आकार की सूर्य के विपरीत दिशा में दिखाई पड़ती है। प्रायः पुच्छल तारे रात में ही दिखाई देते हैं। परन्तु कुछ पुच्छल तारे तो इतने चमकीले होते हैं कि दिन में सूर्य के समीप में भी दिखाई पड़ते हैं। सन् 1882 का पुच्छल तारा ऐसा ही एक था। यह पाँच महीने तक दिखाई दिया उसके पश्चात् दूरदर्शक से भी यह नहीं दिखा क्योंकि यह सूर्य से दूर जाने के कारण छोटा या मंद पड़ गया। अधिकांश पुच्छल तारे दूरदर्शक से ही देखे जा सकते हैं क्योंकि ये बहुत छोटे और मन्द होते हैं। अभी तक लगभग हजारों पुच्छल तारे देखे गए हैं। 1910 ई. में दो चमकीले पुच्छल तारे दिखे थे जिनमें से एक इतना चमकीला था कि दिन में भी दिखाई दिया था। दूसरा पुच्छल तारा हैली–धूमकेतु था। पुच्छल तारों की संख्या कई लाख होगी। चार–पाँच पुच्छल तारे हर वर्ष दिखाई देते हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि बीस–पच्चीस छोटे–बड़े पुच्छल तारे सूर्य की परिक्रमा करते हुए अपनी कक्षा के उस बिन्दु को पार करते होंगे जो सूर्य के सर्वाधिक समीप होता है। कुछ पुच्छल तारों का वेग बृहस्पति सूर्य के सर्वाधिक समीप होता है। कुछ पुच्छल तारों का वेग बृहस्पति या अन्य ग्रहों के आकर्षण से इतना प्रभावित होता होगा कि ये सूर्य के आकर्षण से मुक्त होकर उस ग्रह के आकर्षण में आ जाते होंगे। अतः वैज्ञानिकों का अनुमान है कि बृहस्पति वाले केतु–परिवार या अन्य ग्रहों वाले केतु–परिवार ऐसे ही बने होंगे। बृहस्पति बहुत भारी है इसलिए इसके परिवार में सर्वाधिक 30 केतु देखे जाते हैं जबकि शनि, यूरेनस और नेपच्यून के परिवार में क्रमशः 2, 3, 6 सदस्य पाए जाते हैं। इसी प्रकार के केतुओं को रविपुत्र, गुरुपुत्र आदि ग्रहपुत्र रूप में संहिता ग्रन्थों में कहा गया है।

धूमकेतुओं की कक्षा अधिकांशतः लम्बी दीर्घवृत्ताकार ही होती है। कुछ ही केतुओं की कक्षा परलवय और बहुत कम केतुओं की कक्षाएँ अतिपरवलयाकार होती है। प्रायः वैज्ञानिकों का कहना है कि इनकी कक्षाएँ वस्तुतः लम्बी दीर्घवृत्त ही होंगी। वेध की स्थूलता के कारण ये परवलय या अतिपरवलय जान पड़ती हैं। अगर धूमकेतुओं की कक्षा में परवलय अथवा अतिपरवलय तो ये धूमकेतु पुनः लौटकर नहीं आते। ये निश्चित समय में लौटते हैं, अतः इनकी कक्षाएँ लम्बी दीर्घवृत्ताकार हैं जो परवलयाकार जान पड़ती हैं। कभी–कभी सूर्य की परिक्रमा से लौटकर कुछ केतुओं की कक्षा परवलय या अतिपरवलय में परिणत हो जाती हैं, ये कभी पुनः नहीं लौटते। ऐसे धूमकेतुओं की भी अभी तक जानकारी नहीं है जो अन्य सौर–परिवारों अथवा हमारे सौर–परिवार के बाहर से आते हैं। प्रायः धूमकेतु हमारे सौर–परिवार के अन्तिम छोर से लौट जाते हैं। प्रायः भारतवर्ष के अलावा यह सोचा जाता था कि ये धूमकेतु दुबारा नहीं लौटते। सर्वप्रथम किसी धूमकेतु (पुच्छल तारे) की लौटने की भविष्यवाणी आइजेक न्यूटन के मित्र एडमण्ड हेली (1657–1742 ई.) ने सन् 1682 में की। यह घोषणा उन्होंने पुरानी जानकारी के आधार पर की थी, उन्होंने देखा था कि 1539 ई. और 1607 ई. में दिखाई देने वाला ही केतु यह 1682 में दिखाई दे रहा है। हेली ने सोचा कि एक धूमकेतु सौरमण्डल की सीमाओं का चक्कर लगाकर 75 या 76 साल में सूर्य के पास लौटता है, अब यह 1758 में पुनः दिखाई देगा। वास्तव में यह 1758 में पुनः दिखाई दिया, इसके बाद इसे 'हेली धूमकेतु' कहा जाने लगा। इसे स्वयं हेली नहीं देख पाए। हेली धूमकेतु के अतिरिक्त कुछ और भी धूमकेतु हैं जो प्रसिद्ध हैं, यथा–एन. के. केतु, डोनाटी, केतु, टेम्पल केतु, मोरहाउस केतु आदि। अधिकतर धूमकेतु निश्चित समय में लौट आते हैं–यथा हेली 76 वर्षों में, एन.के. 3.

33 वर्षों में, डोनाटी 2000 वर्षों में आदि। टेम्पल केतु ही ऐसा केतु है जिसकी पूंछ वाले भाग से 1861 ई. में पृथ्वी गुजरी थी। इस समय की जानकारी के अनुसार यह केतु विखंडित होकर उल्का पिंडों में परिणत होकर समाप्त हो गया है। अब कह सकते हैं कि सौरमण्डल के ग्रहों के सदृश ये धूमकेतु भी सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इन सब केतुओं का परिभ्रमण काल भिन्न–भिन्न है जैसा कि बताया जा चुका है। इनके परिभ्रमण काल की अवधि के सन्दर्भ में खगोलविदों का कहतना है कि यह समय 3 वर्ष से लेकर 10 लाख वर्ष तक का हो सकता है। अनेक धूमकेतुओं का मार्ग ग्रहों से भिन्न होता है। कुछ धुमकेतु वामावर्त होकर तथा कुछ दक्षिणावर्त होकर भ्रमण करते हैं। ग्रह कक्षा के सापेक्ष इनका कोणीय मान 0^0 से 250^0 तक होता है।

सन् 1985 में धूमकेतुओं का अध्ययन वेधशालाओं से होता रहा। सोवियत संघ एवं यूरोपीय अन्तरिक्ष एजेंसी ने यह योजना बनाई कि जब हेली धूमकेतु पृथ्वी के समीप पहुँचे तो उसके अध्ययन के लिए स्वचालित यान भेजे जाएँ और इसी उद्देश्य से 1985–86 में सोवियत संघ ने वीहे और यूरोपीय अन्तरिक्ष एजेंसी के जोत्तो नामक स्वचालित यान पृथ्वी से भेजे। ये मार्च 1906 को हेली धूमकेतु के पास पहुँचे। इन यानों में जानकारी दी कि धूमकेतु की नाभि 16X9 किलोमीटर है। यह प्रति सेकेण्ड 10 टन अन्तरिक्ष धूलि तथा 30 टन गैसें छोड़ता है जिससे इसकी लम्बी पूँछ का निर्माण होता है। यह हेली धूमकेतु अब 2062 ई. सन् में दिखाई देगा। उस समय इसके अध्ययन में वैज्ञानिकों को अधिक सफलता मिलेगी।

उल्का

रात्रि के समय आकाश में प्रायः गिरते हुए तारों को सभी लोग देखते हैं। इसे ही तारा टूटना भी कहते हैं। *अथर्ववेद* में भी उल्काओं की चर्चा आती हैं, यथा–**शन्नोभूमिर्वेष्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्।**

चर्चा आती हैं, यथा–**शन्नोभूमिर्वेष्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्। अन्तर्ग्रहीय** अन्तरिक्ष में धात्विक ठोस कण और लघु कायपिण्ड भ्रमण करते हैं। इनमें से जब कोई कण या लघुकाय पिंड पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करता है तो वायुमण्डल में घर्षण के कारण जल उठता है और वह तेजी से पृथ्वी में गिरता हुआ दिखाई देता है, इसे ही टूटता हुआ तारा या उल्का कहते हैं। ये भी सूर्य की ही परिक्रमा करते हैं। कभी–कभी ये ही पिंड पृथ्वी के गुरुत्वबल के कारण पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करके उल्का का रूप धारण कर लेते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि धूमकेतु के विखंडित खंड ही उल्काओं के रूप में पृथ्वी पर गिरते हैं। जैसे बिएला एंव टेम्पल धूमकेतु विखंडित होकर उल्का राशि अथवा उल्का पिंडों में परिणत हो गए। मुख्यतः उल्का पिंडों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

1. प्रथम श्रेणी में वे उल्काएँ आती हैं जो भूमि में गिरने के पूर्व ही वायुमण्डल में घर्षण से दग्ध (जलकर) होकर वाष्प रूप रजकण में परिणत होकर आकाश में ही विलुप्त हो जाती हैं।

2. द्वितीय श्रेण में वे उल्काएँ आती हैं जो प्रथम श्रेणी की अपेक्षा कुछ स्थूल होती हैं और अत्यधिक प्रकाशित होती हैं। इन्हें अग्नि–गोलक (अग्नि के गोले) भी कहते हैं। जब ये पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करती हैं तब भूमि के वायुमण्डल में एक प्रचंड नाद (प्रचंड ध्वनि) होता है। तदनन्तर ये उल्काएँ वायुमण्डल में ही भस्मीभूत हो जाती हैं। ये भी प्रायः पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाती हैं।

3. तृतीय श्रेणी में आने वाली उल्काएँ वायुमण्डल में जलने के बाद भी बच जाती हैं और पृथ्वी के धरातल में पहुँच जाती हैं। यही उल्काएँ उल्काभ या उल्कापिंड कहलाती हैं। इन प्रज्वलित तीव्र वेग से आने वाले उल्का पिंडों से पृथ्वी में गर्त्त (गड्ढे) हो जाते हैं। कभी–कभी ये उल्का पिंड विशालकाय भी होते हैं। इसी प्रकार का एक उल्का पिंड अमेरिका के एरिजोना रेगिस्तान में गिरा, जिससे 570 फिट गहरा तथा 4200 फिट विस्तार (व्यास) वाला गड्ढा (गर्त्त) बना जो आज भी विद्यमान है। कहते हैं 25000 वर्ष पूर्व उल्कापात से ही यह गड्ढा बना। जून 1908 ई. में रूस के साइबेरिया प्रान्त में एक उल्कापात हुआ। यह उल्कापात इतना भयानक था कि इससे पूरा साइबेरिया प्रान्त हिल उठा। इरकुट्स्क के भूकम्पमापीयंत्रों ने पृथ्वी की कम्पन को अंकित किया। इसकी आवाज इतनी तेज और भयानक थी कि लोगों ने सोचा कि यह कहीं आसपास ही गिरा होगा परन्तु वस्तुतः वह कई सौ मील दूर उस शहर के उत्तर में गिरा था। सामान्य खोज में यह नहीं मिला। यूरोपियन महासमर में लोग प्रायः इसे भूल गए थे परन्तु 1921 में रूसी वैज्ञानिकों ने सरकार से इसके खोज करने की माँग की। सरकार ने कुलिक के नेतृत्व में एक वैज्ञानिक दल खोज के लिए भेजा परन्तु ये असफल रहे। पुनः 1927 में कुलिक के ही नेतृत्व में दूसरी खोज पार्टी निकाली गई। यह दल काफी मेहनत के पश्चात् अपने अभियान में सफल हुआ। कुलिक ने कहा कि जैसी भयानक घटना यहाँ घटी, वैसी घटना इससे पूर्व कभी भी सुनने में नहीं आई। इस घटना से पूर्व यहाँ घना जंगल था परन्तु अब यह क्षेत्र तृणरहित हो गया है। इस स्थान से 50 मील दूरी तक के मकान गिर गए। सारे जीव (मनुष्यादि) मर गए। वहाँ के एक निवासी ने बताया कि उसके एक रिश्तेदार के पास इसी जंगल में 1500 मवेशी थे परन्तु उल्का प्रस्तर गिरने के पश्चात् उनका कहीं पता नहीं लगा। दो जानवरों की लाशें मिलीं, मकान भी जल गया था, धातु के सभी औजार पिघल गए थे। इस उल्कापात से भूमि में सैकड़ों छोटे, बड़े गड्ढे हो गए। प्रायः 3 से 4 मील तक का वर्गाकार क्षेत्र पूर्ण रूप से विनष्ट हो गया था। सबसे बड़ा गड्ढा 150 फुट व्यास का था। आश्चर्य की बात यह थी की यहाँ कोई भी उल्का प्रस्तर नहीं मिला। कुलिक का अनुमान था कि उल्का प्रस्तर एक नहीं था, अपितु यह कई टुकड़ों में विभक्त था। ये भूमि के अन्द बहुत दूर तक घुस गए हैं।

सन् 1803 से पूर्व वैज्ञानिकों का यह दृढ़ विश्वास था कि आकाश से पत्थर गिर नहीं सकते। जब कोई यह कहता कि पत्थर आकाश से गिरे तो वैज्ञानिक उसे झुठला देते थे, परन्तु जब 1803 ई. में फ्रांस के एक गाँव पर पत्थरों की बौछार हुई और वहाँ के निवासी व्याकुल हो उठे। तब वैज्ञानिक ऐकेडमी का दृढ़ विश्वास हिल गया और अन्त में उन्होंने वैज्ञानिक 'बायो' को जाँच के लिए भेजा। 'बायो' ने पाया कि वास्तव में पत्थर गिरते हैं और आकाश से ही आते हैं। तब से इन उल्का पत्थरों पर वैज्ञानिक विवेचन होने लगे। उल्का पत्थरों के 6 से 100000 टुकड़े तक कभी–कभी एक ही स्थान पर गिरते हैं। सन् 1830 में फ्रांस के एक स्थान पर, तीन हजार टुकड़े गिरे थे। यहाँ के निवासी व्याकुल हो उठे थे। एक बार पौलेंड के पुल्टुस्क नगर में 100000 उल्का प्रस्तर गिरे थे। 19 जुलाई 1912 को अरिजोना में 14000 गिरे थे। सुनते हैं कि हंगरी में भी एक बार उल्का पिंडों की वर्षा हुई थी। प्रायः प्रतिवर्ष कहीं–न–कहीं उल्का पत्थर गिरते रहते हैं।

फैरिगटन महोदय के अनुसार उल्का पाषाण खंड में निम्नांकित रासायनिक तत्त्वों का मिश्रण (योग) मिलता है। जैसे–

तत्व	मात्रा (प्रतिशत में)

1.	लोहा	72.06
2.	ऑक्सीजन	10.10
3.	निकिल	06.50
4.	सिलिकन	05.20
5.	मैगनीशियम	03.80
6.	अन्य	00.50

आज भी पृथ्वी में बहुत स्थलों पर ये उल्का प्रस्तर विद्यमान हैं। लगभग 2 हजार उल्का पिण्ड जमा करके विश्व की विभिन्न संग्रहालयों में रख दिए गए हैं। प्रायः हर साल हजारों उल्का पिण्ड पृथ्वी पर गिरते हैं। अधिकांशों की खोज करना सम्भव नहीं है। अभी तक जितने भी उल्का पिण्डों की खोज पृथ्वी पर हुई, उनमें से सबसे बड़ा उल्का पिण्ड अफ्रीका के होवा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है जिसका भार 60 टन है। ग्रीनलैंड से प्राप्त उल्का पिण्ड का भार 36.5 टन है। अभी तक उल्का पिण्डों (पत्थरों) के बारे में वैज्ञानिक संदिग्ध हैं। कई वैज्ञानिकों का कहना है कि इन पिण्डों का सम्बन्ध क्षुद्रग्रह पिण्डों से है। इस समय इन उल्का पिण्डों पर गहराई से अध्ययन चल रहा है जिससे सौर–परिवार की उत्पत्ति का रहस्य भी खुल सकता है।

उल्का पिण्डों एवं उल्काओं के इतिहास के सन्दर्भ में यदि हम विचार करें तो हमको उल्काओं का सर्वप्रथम वर्णन अथर्ववेद में मिलता है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। बाइबिल में एक स्थान पर लिखा है कि ''ईश्वर ने आकाश से बड़े–बड़े पत्थर गिराए''–हो सकता है यह बात उल्का पत्थरों के सन्दर्भ में लिखी हो। प्राचीन रोमन ग्रन्थकार लिवी (Livy) ने सन् 650 ई. पूर्व में उल्कापात की चर्चा की है। लिवी ने लिखा है कि ''राजा और दरबारियों के पास एक समाचार लाया गया कि ऐलबन श्रृंग पर पत्थर बरसा है। इस बात की सम्भावना पर यद्यपि विश्वास नहीं होता था तथापि कुछ लोगों को जाँच के लिए भेजा गया। उनके सामने भी आकाश से बहुत से पत्थर गिरे। साथ में बहुत बड़ा नाद भी सुनाई पड़ा। लोगों ने अर्थ लगाया कि देवता अप्रसन्न हैं, इसलिए नौ दिनों तक व्रत रखने की आज्ञा सबको दी गई।'' 687 ई. पूर्व चीनी पुस्तकों में भी उल्काओं का वर्णन मिलता है, यथा ''अर्धरात्रि में तारे पानी की तरह बरसने लगे।'' पुनः सन् 644 ई. पूर्व में 5 पत्थरों के गिरने की चर्चा मिलती है। इन उल्का पत्थरों से हथियार एवं मूर्तियाँ बनती थीं इसके भी प्रमाण मिलते हैं। 'देवताओं की माता' की जो प्रतिमा 204 ई. पूर्व में रोम में लगाई गई वह उल्का प्रस्तर की ही थी। इस प्रकार की बहुत सी चर्चाएँ उपलब्ध होती हैं। पहले उल्काओं की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती थी परन्तु आज अब ऐसी स्थिति नहीं है। आज हम पृथ्वी पर उल्कापात होने के पूर्व ही जानते हैं कि उल्कापात कब होगा, आदि। इसी प्रकार सन् 2000 ई. के नवम्बर 17, दिसम्बर 13, को होने वाले उल्कापात की सूचना पहले ही दी गई थी। 17 नवम्बर को लियोनिड यानी लियो (सिंह) राशि की ओर से और 13 दिसम्बर को जेमिनिड अर्थात् जेमिनी (मिथुन) राशि की ओर से हजारों उल्कापिण्डों ने पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश किया। इन उल्काओं के घर्षण से आकाश में फूलझड़ी सा दृश्य उत्पन्न हुआ। वास्तविक रूप में लियोनिड उल्काएँ 'टेंपल' धूमकेतु के मलबे के ही हिस्से हैं। 'टेंपल' की ही भाँति 13 दिसम्बर 2000 का उल्कापात ही उस दिन पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश कर चमकदार शोले के रूप में दिखाई दिए। पृथ्वी पर आते–आते ये समाप्त हो चुके थे। इस प्रकार की उल्काओं से पृथ्वी का तो कोई नुकसान नहीं होता, परन्तु विशाल उल्का पिण्डों के गिरने से पृथ्वी में सर्वाधिक क्षति होती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इसी प्रकार के विशाल उल्का पिण्डों के गिरने से ही पृथ्वी

के विशालकाय जीव 'डायनासौरों' का विनाश हुआ। अभी हाल में भी '2000–एसजी–344' नामक एक उल्का पिण्ड चर्चा का विषय बना हुआ है क्योंकि यह भी कुछ विशाल ही है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि आने वाले 30 वर्षों के दौरान कभी भी इसके पृथ्वी पर टकराने की सम्भावना है। लास एंजिल्स स्थित 'अर्थ ऑब्जेक्ट प्रोग्राम' के वैज्ञानिकों के अनुसार 29X69 मीटर के आकार का यह पिण्ड 29 दिसम्बर 2030 को पृथ्वी के सबसे नजदीक होगा तथापि यह दूरी लाखों कि.मी. में होगी। पृथ्वी से इसकी टक्कर को सिर्फ इसलिए इनकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसके परिक्रमा पथ में स्वाभाविक फेर–बदल भी सम्भव है। आशंका है कि यदि यह पिण्ड पृथ्वी में वास्तव में टकरा गया तो इसका प्रहार 23000 टन वजनी चट्टान जैसा होगा जिससे किसी विनाशकारी परमाणु विस्फोट की भाँति हानि हो सकती है।

4.4 बोध प्रश्न –

1. उल्का किसे कहते है ?
2. धूमकेतु से आप क्या समझते है ?
3. उल्का एवं धूमकेतु में क्या अन्तर है ?
4. उपनिषदों और वेदों के अनुसार उल्का एवं धूमकेतु का वर्णन करें ।

वर्गीकरण : -

उल्कापिंडों का मुख्य वर्गीकरण उनके संगठन के आधार पर किया जाता है। कुछ पिंड अधिकांशत: लोहे, निकल या मिश्रधातुओं से बने होते हैं और कुछ सिलिकेट खनिजों से बने पत्थर सदृश होते हैं। पहले वर्गवालों को **धात्विक** और दूसरे वर्गवालों को **आश्मिक** उल्कापिंड कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पिंडों में धात्विक और आश्मिक पदार्थ प्राय: समान मात्रा में पाए जाते हैं, उन्हें धात्वाश्मिक उल्कापिंड कहते हैं। वस्तुत: पूर्णतया धात्विक और पूर्णतया आश्मिक उल्कपिंडों के बीच सभी प्रकार की अंत:स्थ जातियों के उल्कापिंड पाए जाते हैं जिससे पिंडों के वर्ग का निर्णय करना बहुधा कठिन हो जाता है।

संरचना के आधार पर तीनों वर्गो में उपभेद किए जाते हैं। आश्मिक पिंडों में दो मुख्य उपभेद हैं जिनमें से एक को कौंड्राइट और दूसरे को अकौंड्राइट कहते हैं। पहले उपवर्ग के पिंड़ों का मुख्य लक्षण यह है कि उनमें कुछ विशिष्ट वृत्ताकार दाने, जिन्हें कौंड्रयूल कहते हैं, उपस्थित रहते हैं। जिन पिंड़ों में कौंड्रयूल उपस्थित नहीं रहते उन्हें अकौंड्राइट कहते हैं।

धात्विक उल्कापिंड़ों में भी दो मुख्य उपभेद हैं जिन्हें क्रमश: अष्टानीक (आक्टाहीड्राइट) और षष्ठानीक (हेक्साहीड्राइट) कहते हैं। ये नाम पिंडों की अंतररचना व्यक्त करते हैं, और जैसा इन नामों से व्यक्त होता है, पहले विभेद के पिंडों में धात्विक पदार्थ के बंध (प्लेट) अष्टानीक आकार में और दूसरे में षष्ठीनीक आकार में विन्यस्त होते हैं। इस प्रकार की रचना को विडामनस्टेटर कहते हैं एवं यह पिंड़ों के मार्जित पृष्ठ पर बड़ी सुगमता से पहचानी जा सकती है।

धात्वाश्मिक उल्का पिंडों में भी दो मुख्य उपवर्ग हैं जिन्हें क्रमानुसार पैलेसाइट और अर्धधात्विक (मीज़ोसिडराइट) कहते हैं। इनमें से पहले उपवर्ग के पिंडों का आश्मिक अंग मुख्यत: औलीवीन खनिज से बना होता है जिसके स्फट प्राय: वृत्ताकार होते हैं और जो लौह-निकल धातुओं के एक तंत्र में समावृत्त रहते हैं। अर्धधात्विक उल्कापिंडों में मुख्यत: पाइरौक्सीन और अल्प मात्रा में एनौर्थाइट फ़ेल्सपार विद्यमान होते हैं।

संरचना -

पूर्व प्रकरण में यह उल्लेख किया जा चुका है कि धात्विक और आश्मिक अंगों की प्रधानता के आधार पर उल्कापिंड वर्गीकृत किए जाते हैं। किंतु इन पिंडों में रासायनिक तत्वों और खनिजों के वितरण के संबंध में कोई सुनिश्चित आधार प्रतीत नहीं होता। उल्कापिंडों के तीन मुख्य वर्गों के अतिरिक्त अनेकानेक उपवर्ग हैं जिनमें से प्रत्येक का अपना पृथक् विशेष खनिज समुदाय है।अभी तक प्राय: 25 नए वर्गो का पता लगा है और प्राय: प्रति दो वर्ष एक नए उपवर्ग का पता लगता रहा है। कठिनाई इस बात की है कि अध्ययन के लिए उपलब्ध पदार्थ अत्यंत अल्प मात्रा में होते हैं।

अभी तक उल्कापिंडों में केवल 52 रासायनिक तत्वों की उपस्थिति प्रमाणित हुई है जिनके नाम निम्नलिखित हैं :

ऑक्सीजन । गंधक । प्लैटिनम । लोहा

आर्गन गैलियम । फ़ास्फ़ोरस वंग (राँगा)

आर्सेनिक जरमेनियम बेरियम वैनेडियम

इंडियम ज़िरकोनियम बेरीलियम । सिलिकन

इरीडियम । टाइटेनियम । मैंगनीज़ सीज़ियम

ऐंटिमनी टेलूरियम मैगनीशियम सीरियम

ऐल्युमिनियम । ताम्र मौलिबडेनम सीस (सीसा)

कार्बन थूलियम यशद (जस्ता) । सोडियम

कैडमियम । नाइट्रोजन रजत (चाँदी) स्कैंडियम

कैल्सियम । निकल । रुथेनियम स्वर्ण (सोना)

कोबल्ट पारद रुबीडियम स्ट्रौंशियम

क्रोमियम । पैलेडियम । रेडियम । हाइड्रोजन

क्लोरीन । पोटैसियम लीथियम । हीलियम

इन 52 तत्वों में से केवल आठ प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जिनमें हालों सबसे प्रमुख है। अन्य सात में क्रमानुसार ऑक्सिजन, सिलिकन, मैंगनीशियम, गंधक, ऐल्युमिनियम, निकल और कैल्सियम हैं। इनके अतिरिक्त 20 अन्य तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं तथा उनकी उपस्थिति का पता साधारण रासायनिक विश्लेषण द्वारा 1926 से पूर्व ही लग चुका था। शेष 24 तत्व अत्यंत अल्प मात्रा में विद्यमान हैं एवं उनकी उपस्थिति वर्णक्रमदर्शकी (स्पेक्ट्रोग्रैफिक) विश्लेषण से सिद्ध की गई है।

खनिज संरचना की दृष्टि से उल्कापिंडों और पृथ्वी में पाई गई शैल राशियों के लक्षणों में कई अंतर होते हैं। साधारणतया भूमंडलीय शैल राशियों में स्वतंत्र धातु रूप में लोहा तथा निकल अत्यंत दुर्लभ होते हैं, किंतु उल्कापिंड़ों में धातुएँ शुद्ध रूप में बहुत प्रचुरता से तथा प्राय: अनिवार्यत: पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त कई ऐसे खनिज हैं जो भूमडलीय शैलों में नहीं पाए जाते, पर उल्कापिंडों में मिलते हैं। इनमें से प्रमुख ओल्डेमाइट (कैल्सियम का सल्फाइड) और श्राइबेरसाइट (लोहे और निकल का फ़ॉसफ़ाइड) हैं। ये दोनों खनिज नमी और ऑक्सीजन की बहुलता में स्थायी नहीं होते और इसी कारण भूमंडलीय शैलों में नहीं मिलते। इनकी उपस्थिति से यह बोध होता है कि उल्कापिंडों की उत्पत्ति ऐसे वातावरण में हुई जहाँ भूमंडल की अपेक्षा आक्साइडीकरण की परिस्थितियाँ न्यून रही होंगी। आश्मिक उल्कापिंड़ों में साधारणतया पाइरोक्सीन और औलीविन की प्रचुरता एवं फ़ेल्सपार का अभाव होता है, जिससे उनका संगठन भूमंडल की अतिभास्मिक (अल्ट्राबेसिक) शैलों के सदृश होता है।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि क्षुद्र ग्रह (Asteroids) या अवांतर ग्रह -- पथरीले और धातुओं के ऐसे पिंड है जो सूर्य की परिक्रमा करते हैं लेकिन इतने लघु हैं कि इन्हें ग्रह नहीं कहा जा सकता। इन्हें **लघु ग्रह या क्षुद्र ग्रह या ग्रहिका** कहते हैं। हमारी सौर प्रणाली में लगभग 100,000 क्षुद्रग्रह हैं लेकिन उनमें से अधिकतर इतने छोटे हैं कि उन्हें पृथ्वी से नहीं देखा जा सकता। प्रत्येक क्षुद्रग्रह की अपनी कक्षा होती है, जिसमें ये सूर्य के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। इनमें से सबसे बड़ा क्षुद्र ग्रह हैं 'सेरेस'। इतालवी खगोलवेत्ता पीआज्जी ने इस क्षुद्रग्रह को जनवरी 1801 में खोजा था। केवल 'वेस्टाल' ही एक ऐसा क्षुद्रग्रह है जिसे नंगी आंखों से देखा जा सकता है यद्यपि इसे सेरेस के बाद खोजा गया था। इनका आकार 1000 किमी व्यास के सेरस से 1 से 2 इंच के पत्थर के टुकड़ों तक होता है। ये क्षुद्र ग्रह पृथ्वी की कक्षा के अंदर से शनि की कक्षा से बाहर तक है। इनमें से दो तिहाई क्षुद्रग्रह मंगल और बृहस्पति के बीच में एक पट्टे में है।

आकाश में कभी-कभी एक ओर से दूसरी ओर अत्यंत वेग से जाते हुए अथवा पृथ्वी पर गिरते हुए जो पिंड दिखाई देते हैं उन्हें **उल्का** (meteor) और साधारण बोलचाल में **'टूटते हुए तारे' अथवा 'लूका'** कहते हैं। उल्काओं का जो अंश वायुमंडल में जलने से बचकर पृथ्वी तक पहुँचता है उसे **उल्कापिंड (meteorite)** कहते हैं। प्राय: प्रत्येक रात्रि को उल्काएँ अनगिनत संख्या में देखी जा सकती हैं, किंतु इनमें से पृथ्वी पर गिरनेवाले पिंडों की संख्या अत्यंत अल्प होती है। वैज्ञानिक दृष्टि से इनका महत्व बहुत अधिक है क्योंकि एक तो ये अति दुर्लभ होते हैं, दूसरे आकाश में विचरते हुए विभिन्न ग्रहों इत्यादि के संगठन और संरचना (स्ट्रक्चर) के ज्ञान के प्रत्यक्ष स्रोत केवल ये ही पिंड हैं।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

क्षुद्र ग्रह - पथरीले और धातुओं के ऐसे पिंड है जो सूर्य की परिक्रमा करते हैं लेकिन इतने लघु हैं कि इन्हें ग्रह नहीं कहा जा सकता। इन्हें **लघु ग्रह या क्षुद्र ग्रह** कहते है।

गुरूत्वाकर्षण – यह सिद्धान्त सर्वप्रथम आचार्य भास्कराचार्य ने प्रतिपादित किया था, जिसका तात्पर्य ''पृथ्वी से आकाश की ओर फेंकी गई कोई वस्तु पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण पुन: पृथ्वी की खींचती है'' से है।

GJ667 - एक तारा की संज्ञा

वामन ग्रह – बौना ग्रह

उल्का – जो क्षुद्र ग्रह पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी के वातावरण में उससे आकर टकरा जाते है, उसे उल्का कहते है। अथवा टूटते हुये तारा को उल्का कहते है।

धूमकेतु - सौरमण्डल में चमकते कुछ ऐसे प्रकाश जो भ्रमण करते-करते सूर्य के समीप पहुँचने पर उनका पूँछ बढ़ने लगता है। उसे पुच्छल तारा या धूमकेतु कहते है।

संग्रहालय: - पुरातन वस्तुयें जहॉं संग्रह कर अवलोकनार्थ रखी गयी हो

धात्विक: - धातुओं से निर्मित

आश्मिक - पत्थरों द्वारा निर्मित

दीर्घवृत्ताकार: - लम्बा और गोलाकार

रासायनिक विश्लेषण: रासायनिक तत्वों द्वारा विश्लेषित किया हुआ

भूमण्डल: - पृथ्वी

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सौर–परिवार
- ग्रह और उपग्रह
- अर्वाचीनं ज्योतिर्विज्ञानम्
- इस इकाई का छायाचित्र गूगल के क्षुद्र ग्रह इमेजस से लिया गया है।

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्षुद्र ग्रह का परिचय देते हुए उसके नाम एवं स्वरूप का वर्णन कीजिए ?
2. क्षुद्र एवं वामन ग्रह क्या है ? दोनों का सविस्तार वर्णन करें।
3. उल्का का परिचय देते हुए उसके नाम एवं स्वरूप का वर्णन कीजिए?
4. उल्का एवं धूमकेतु क्या है ? दोनों का सविस्तार वर्णन करें।

इकाई–5 ज्योतिष के परिप्रेक्ष्य में सृष्टि संरचना

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 सृष्टि की उत्पत्ति

5.4 ज्योतिष के अनुसार सृष्टि संरचना

5.5 सारांशः

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

5.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

5.8 सहायक पाठ्यसामग्री

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई **'ज्योतिष के परिप्रेक्ष्य में सृष्टि संरचना'** नामक शीर्षक से सम्बन्धित हैं। इस इकाई में आप सभी शिक्षार्थियों का स्वागत है। सृष्टि संरचना अत्यन्त विस्तृत विषय है। भारतीय ज्ञान परम्परा में सृष्टि संरचना के बारे में सम्पूर्ण वैदिक वांगमय में बतलाया गया है। सभी का अपना-अपना मत-मतान्तर है। भारतीय ज्ञान का मूल 'वेद' को कहा गया है तथा उसके छ: अंग बतलाये गये हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द एवं ज्योतिष। इन्हें वेदाङ्ग या शास्त्र भी कहा जाता है।

वेद के अंग होने के कारण शिक्षादि छ: अंगों को वेदांग की संज्ञा दी गयी है। समस्त वेद-वेदांग ज्ञान एवं विज्ञान का ही प्रतिपादन करता है। वेदांगों में भी सृष्टि प्रक्रिया विषयक विषय प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यहाँ इस इकाई में हम सभी ज्योतिषशास्त्र रूपी वेदांग में सृष्टि संरचना विषय का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई में आप सभी शिक्षार्थीयों के ज्ञानार्थ ज्योतिष में सृष्टिप्रक्रिया का वर्णन किस प्रकार किया गया है? उनमें सृष्टि विषयक विशेष क्या-क्या है। इसका प्रतिपादन करने का प्रयास किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन से आप सभी पाठकों को ज्योतिष में सृष्टि प्रक्रिया के बारे में बोध हो सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेगें कि –

1. सृष्टि संरचना किसे कहते है, इसे बता सकेगें।
2. वेदांगों का विश्लेषण कर पायेगें।
3. ज्योतिष में 'सृष्टि प्रक्रिया' के महत्व को बता सकेगें।
4. प्रमुखता के दृष्टिकोण से ज्योतिष में सृष्टि प्रक्रिया के रहस्य को प्रतिपादित कर लेंगे।
5. वेदांगों में प्रतिपादित सृष्टि विषयक सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर सकेगें।

5.3 सृष्टि की उत्पत्ति

सृष्टि की उत्पत्ति का सिद्धान्त अतीव प्राचीन काल से ही महान अतीत के गर्भ में व्यवस्थित है। इसकी उत्पत्ति काल से ही गवेषकों ने इसके रहस्य को जानने के लिए अनेक अथक प्रयास किए

कितने ही सिद्धान्त बनें परन्तु कालक्रम से वे सभी स्थूल होते गए तथा अनेक परवर्ति अन्वेषकों नें पूर्ववर्त्ति सिद्धान्तों को खण्डित कर नवीन सिद्धान्तों की स्थापना की परन्तु अब तक कोई भी ऐसा सर्वमान्य सृष्टि विषयक सिद्धान्त स्थापित नहीं हो सका जिस पर सर्वसम्मति या मतैक्य हो। सभी वैज्ञानिक एवं चिन्तक अपनी-अपनी परम्परा एवं मेधा से आज भी इसके अन्वेषण में संलग्न है।

वैदिक साहित्य में वेदाङ्ग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वेदों को समझने के लिए जो शास्त्र आवश्यक होते हैं, उन को वेदाङ्ग कहते हैं। वेद + अंग मिलकर वेदाङ्ग शब्द बना है। वेद से आप सभी पूर्व में ही परिचित होगें। अंग के लिए कहा गया है कि *'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अङ्गानि' अर्थात्* जिनके द्वारा किसी वस्तु की जानकारी मिलती है, उसका स्वरूप पहचानने में सहायता मिलती है उन्हे 'अंग' कहते हैं। *इस प्रकार* वेदस्य अंग: 'वेदांग:' कथ्यते। अर्थात् वेद के अंग को 'वेदांग' कहते हैं। वे वेदाङ्ग हैं -

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिण:॥

वेदांगों के नाम है – 1. शिक्षा 2. कल्प 3. व्याकरण 4. निरूक्त, 5. छन्द और 6. ज्योतिष।

आचार्यों द्वारा वेद रूपी पुरुष के शारीरिक अंग बतलायें गये हैं –

छन्द: पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

वेदपुरूष का पैर – छन्द
वेदपुरूष का हाथ – कल्प
वेदपुरूष का नेत्र – ज्योतिष
वेदपुरूष का कान – निरुक्त
वेदपुरूष की नासिका – शिक्षा
वेदपुरूष का मुख – व्याकरण

ज्योतिष (वेदांग) शास्त्र को वेदों का नेत्र कहा गया हैं। यथा - ***ज्योतिषामयनं चक्षुः***। तिथि, नक्षत्र, मास, ऋतु, संवत्सर, अयन, गोल आदि का अध्ययन यज्ञ की सफलता के लिए आवश्यक है, जिसका अभ्यास ज्योतिष में किया जाता है। वस्तुतः 'काल ज्ञान' के लिए ज्योतिष शास्त्र का प्रतिपादन किया गया है और इसका अध्ययन आवश्यक है। ज्योतिष शास्त्र के प्रधान तीन स्कन्ध कहे गये हैं – सिद्धान्त, संहिता एवं होरा या फलित। त्रुट्यादि से प्रलयकाल पर्यन्त की गयी कालगणना जिस स्कन्ध में होती है, उसे सिद्धान्त कहते है। समस्त विश्व विषयक विषयों का फलादेश जिसमें हो उसे संहिता और व्यक्ति और समष्टिपरक फलादेश जिस स्कन्ध में हो उसे होरा या फलित ज्योतिष कहते है। सामान्यतया आकाश में स्थित ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों की गति, स्थिति एवं उसके प्रभावादि का निरूपण किया जाता है इस शास्त्र में।

5.4 ज्योतिष के अनुसार सृष्टि संरचना

अब तक आपने वेदांगों के बारे में जाना अब आप ज्योतिष के ग्रन्थों में उपलब्ध सृष्टि सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त करेंगे। ज्योतिष भी वेदांग होने के कारण प्रायः वेद विहित सिद्धान्तों का ही अनुगमन करता है परन्तु अपनी विषयगत वैशिष्ट्य के कारण विषयों का निरूपण यहाँ स्पष्टरूप में प्रत्यक्ष, आगम एवं युक्ति प्रमाण के आधार पर करता है। क्यों कि प्रमाण के सन्दर्भ में आचार्य कमलाकर भट्ट ने स्पष्टतया निर्देश करते हुए लिखा है कि-

प्रत्यक्षागमयुक्तिशालितदिदं शास्त्रं विहायान्यथा।
यत् कुर्वन्ति नराधमास्तु सदसत् वेदोक्ति शून्या भृशम्।।

अतः इन प्रमाण सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए किंचित् विशिष्टता पूर्वक यहाँ विषयों का प्रतिपादन किया गया है। प्रस्तुत प्रसंग में मुख्यतया दो सिद्धान्त ज्योतिषशास्त्र में दिखाई पड़ते हैं। जिनमें पहला सूर्यसिद्धान्त का तथा दूसरा सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ का। अब हम यहाँ इन दोनों मतों को अलग-अलग जानेगें।

सूर्यसिद्धान्तीय सृष्टि सिद्धान्त-

भारतीय मान्यता के अनुसार सूर्यसिद्धान्त स्वयं भगवान सूर्य द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्त स्कन्ध का एक सुविख्यात, प्रामाणिक एवं अपौरुषेय ग्रन्थ है। इसमें ज्योतिष के समस्त सैद्धान्तिक विषयों का वर्णन विस्तारपूर्वक प्राप्त होता है। इसके अनुसार सृष्टि के आदि काल में इस ब्रह्माण्ड में परमब्रह्म रूपी परमात्मा भगवान वासुदेव की अंशरूपी सत्ता विराजमान थी। सामान्यतया वासुदेव पद से ''वासुदेवस्यापत्यं पुमान् वासुदेवः'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण का बोध होता है। परन्तु ''वसति विश्वमखिलमस्मिन्नमिति'' अर्थात् जिसमें पुरा विश्व ही निवास करता है या

''विश्वस्मिनखिले वसतीति वासुः'' के अनुसार इस पूरे विश्व में निवास करने वाले परम विश्वप्रकाशक तथा विश्वव्यापक परमब्रह्म का स्वरूप भी सिद्ध होता हैं। यद्यपि श्रीमद्भागवत के ''कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'' उपदेश वचन के अनुसार श्रीकृष्ण भी परमब्रह्म स्वरूप ही सिद्ध होते हैं। परन्तु साक्षात् द्वापर युग में इनकी प्रत्यक्ष उत्पत्ति होने के कारण समस्त विश्व के कर्त्ता के रूप में इस स्वरूप का उपयोग नहीं करते हुए पूर्वोक्त युक्तिजन्य परमब्रह्मरूपी वासुदेव का ग्रहण ही व्याख्याकार लोग स्वीकार करते हैं। अतः सृष्ट्यारम्भ काल में इस परमब्रह्म सच्चिदानन्द विश्वव्यापक भगवान के अंशरूप प्रधानपुरुष (पुरुषोत्तम) जो अव्यक्त (अतिन्द्रिय होने के कारण सामान्य चक्षुः से न दिखाई देने वाला), निर्गुण (सत्त्व, रज, तमरूपी तीनों गुणों से रहित), शुद्धस्वरूप (सर्वदोष रहित), पच्चीस विकृति आदि से रहित (16 विकृति + 7 प्रकृति की विकृतियाँ + 1 मूल + 1 जीव), अव्यय (जिसका कभी नाश न हो अर्थात् सर्वदा विद्यमान रहने वाला), प्रकृति के अन्तर्गत ही विराजमान रहने वाला, सर्वव्यापी भगवान संकर्षण (वासुदेव के अंश रूप) ने सर्वप्रथम जल का सृजन कर उस सृजित जल में शक्ति विशेष रूपी वीर्य को निक्षिप्त किया। भगवान संकर्षण द्वारा जल में निक्षिप्त होते ही शक्ति विशेष रूपी वीर्य जल के संयोग से गोलाकार चारों ओर से अन्धकार से ढका हुआ अण्डस्वरूपाकार तेज स्वरूप एक स्वर्णपिण्ड की उत्पत्ति हुई जिसके गर्भ से नित्य सनातन रूप में विद्यमान रहने वाले भगवान अरिरूद्ध साक्षात् प्रकट हुए –

वासुदेवः परब्रह्म तन्मूर्त्तिः पुरुषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पंचविंशात्परोऽव्ययः।
प्रकृत्यन्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः।
संकर्षणोऽपः सृष्ट्वादौ तासु वीर्यमवासृजत्।।
तदण्डमभवद् हैमं सर्वत्र तमसा वृत्तम्।
तत्रानिरूद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः।

इस प्रकार आपने जाना कि वासुदेवांश संकर्षण के द्वारा वीर्य एवं जल के संयोग से भगवान अनिरूद्ध प्रकट हुए। इन्हीं को वेदों में भगवान हिरण्यगर्भ के नाम से पढ़ा गया है। आदिभूतत्वात् (सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण) आदित्य एवं जगत् की उत्वत्ति करने के कारण इन्हें ही सूर्य भी कहा गया है (प्रसूत्या सूर्य उच्यते)। यथा-

हिरण्यगर्भो भगवानेषच्छन्दसि पठ्यते।
आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते।।

आप सबको यह स्पष्ट हो गया होगा कि स्वर्णाण्ड से उद्भूत भगवान अनिरूद्ध का नाम ही हिरण्यगर्भ, आदित्य एवं सूर्य भी है। यह सूर्य समस्त लोक से अन्धकार का नाशक एवं स्वयं प्रकाश स्वरूप है यही भूतभावन अर्थात् सकल चराचरों की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश का कारक है। वेद, पुराण तथा दर्शन शास्त्रों में इसे ही महान् शब्द से सम्बोधित किया गया है। वेदों में ऋग्वेद इसका मण्डल, सामवेद रश्मियाँ तथा यजुर्वेद स्वरूप है इस प्रकार वेदत्रयात्मक यह भगवान सूर्य, काल का ज्ञान कराते हुए काल की आत्मा एवं काल का कारण भी है। यह ब्रह्माण्डरूपी रथ में विराजमान होकर संवत्सररूपी बारह मासात्मक चक्र (पहिया) की सहायता से गायत्र्यादि छन्दरूपी सात घोड़ों पर सवार होकर पूरे विश्व का भ्रमण करता हुआ तीनों लोकों को प्रकाशित कर काल का बोध कराता है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सूर्य ही परमब्रह्म रूप में सर्वदा विद्यमान रहता है। इसी वेद अंशरूप संकर्षण से अनिरूद्धादि की उत्पत्ति सूचित है। यह जगत् की उत्पत्ति में समर्थ है तथा समग्र विश्व इसी में प्रतिष्ठित है।

सृष्टिक्रम में सर्वप्रथम भगवान अनिरूद्ध नें विश्वसृष्टि के निमित्त सर्वशक्ति सम्पन्न अहंकारतत्त्वरूप ब्रह्मा को उत्पन्न किया तथा इस स्वोत्पादित ब्रह्मा को विश्वोत्पादन पद्धति के रूप में वेदों का वरदान देते हुए पूर्वोक्त स्वर्णाण्ड के गर्भ में प्रतिष्ठापित कर यह आदेश दिया कि ''अत्रस्थेन त्वया विश्वानि स्रष्टव्यानि'' यहीं स्थित होकर तुम जगत् की सृष्टि करो तथा स्वयं विश्व को प्रकाशित करते हुए भ्रमण में संलग्न हो गये। यथा-

तस्मै वेदान् वरान् दत्त्वा सर्वलोकपितामहम्।
प्रतिष्ठाप्याण्डमध्येऽथ स्वयं पर्येति भावयन्।।

इस प्रकार आपने पढ़ा कि अनिरूद्ध ने ब्रह्मा की उत्पत्ति कर उनको सृष्टि का अधिकार प्रदान किया। सृष्टि का अधिकार प्राप्त करने के बाद अहंकारमूर्त्ति ब्रह्मा के मन में सृष्टि की ईच्छा जागृत हुई और इसी क्रम में ब्रह्मा के मन से सर्वप्रथम चन्द्रमा का तथा दोनों नेत्रों से तेजरूपी सूर्य का प्रादुर्भाव हुआ। इसीलिए वेदों में भी ''चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत'' यह उक्ति निरूपित है। पुनः इस सृष्टि प्रक्रिया के अन्तर्गत ब्रह्मा के मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, तथा जल से पृथिवी के द्वारा एक-एक गुणों की वृद्धि से इन पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई। पुनः इन पंचमहाभूतों के द्वारा अग्नि तत्त्व से भौम (मंगल), पृथ्वी तत्त्व से बुध, आकाश तत्त्व से बृहस्पति, जल तत्त्व से शुक्र एवं वायु तत्त्व से शनि की उत्पत्ति होकर ग्रहमण्डल की रचना हुई। सूर्यसिद्धान्त में इसका निम्न प्रकार से प्रतिपादन किया गया है-

अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माऽहंकारमूर्त्तिभृत्।

मनसश्चन्द्रमा जज्ञे सूर्योऽक्ष्णोस्तेजसां निधिः।।

मनसः खं ततो वायुरग्निरापो धराक्रमात्।

गुणैकवृद्ध्या पंचेति महाभूतानि जज्ञिरे।।

अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वंगारकादयः।

तेजोभूखाम्बूवातेभ्यः क्रमशः पंच जज्ञिरे।।

सूर्यादि सात ग्रहों की सृष्टि के अनन्तर वशी ब्रह्मा ने ब्रह्माण्डगोलरूपी स्वयं को बारह समान भागों में विभक्त कर मेषादि राशियों के रूप में तथा पुनः सत्ताईस समान भागों में विभक्त कर अश्विन्यादि नक्षत्रों के रूप में प्रातिष्ठापित किया। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के द्वादशांश रूपी राशि एवं सप्तविशांश रूपी नक्षत्र स्थित हुए।

ग्रह-नक्षत्र-राशियों की सृष्टि करने के बाद स्रष्टा ब्रह्मा ने उत्तम-मध्यम-अधम रूपों में गुणों के नियमानुसार सत्त्व-रज-तम के भेद से देव, मनुष्य, दानव, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि सहित सकल चराचरों की रचना की। इसमें सतोगुण प्रधान देवता, रजोगुण प्रधान मनुष्य एवं तमोगुण प्रधान राक्षसों की सृष्टि सम्पन्न हुई।

पुनर्द्वादशधाऽऽत्मानं व्यभजद् राशिसंज्ञकम्।
नक्षत्ररूपिणं भूयः सप्तविंशात्मकं वशी।।
ततश्चराचरं विश्वं निर्ममे देवपूर्वकम्।
उर्ध्वमध्याधरेभ्योऽथ स्रोतेभ्यः प्रकृतिः सृजन्।।

सूर्यसिद्धान्तीय सृष्टिक्रम

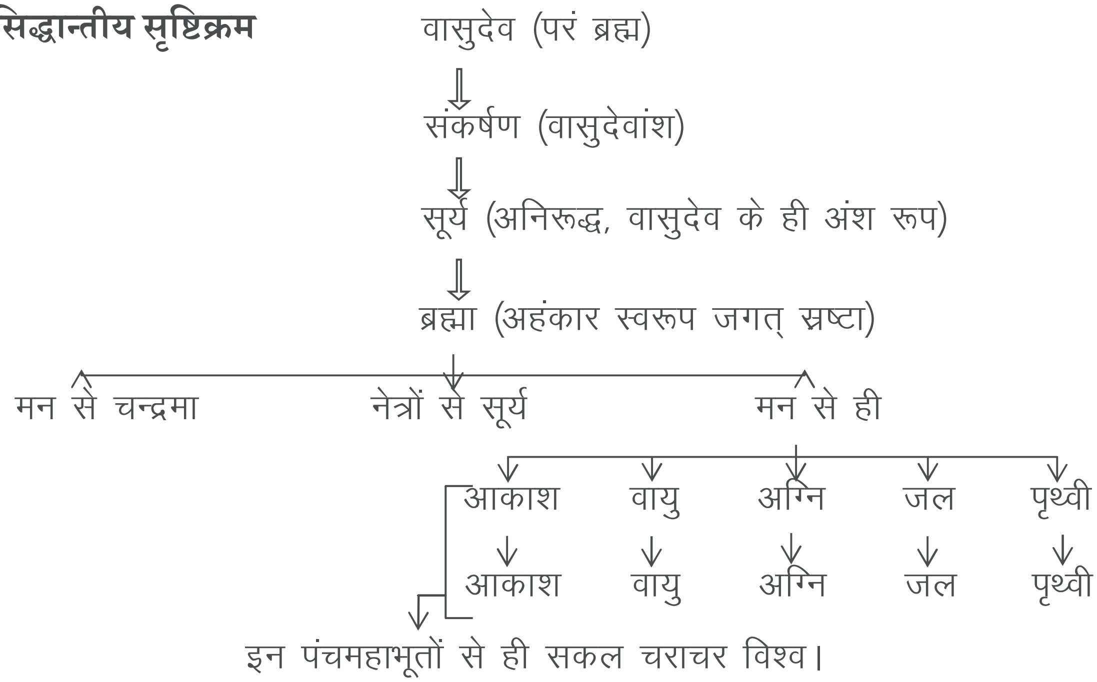

सिद्धान्त शिरोमणि के अनुसार सृष्टि सिद्धान्त-

अब तक आपने वेदादि एवं ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत सूर्यसिद्धान्तीय मतानुसार सृष्टि के सिद्धान्त को समझा। अब आप ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों में अग्रगण्य भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि के अनुसार सृष्टि सिद्धान्त को समझेगें।

सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में आचार्य भास्कर नें सूर्यसिद्धान्त से किंचित् भिन्न सांख्यदर्शन के अनुरूप सृष्टि सिद्धान्त का वर्णन किया है। जैसा कि हम सब जानते है कि सांख्य दर्शन में प्रकृति की गुणसाम्यता प्रधान अव्यक्त रूप में सृष्टि का कारण होती है। अतः यहाँ प्रकृति-पुरुष में क्षोभ उत्पन्न होने पर इन दोनों के द्वारा बुद्धि तत्त्व अर्थात् महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई तथा पुनः बुद्धि तत्त्व (महत्) से अहंकार तत्त्व की उत्पत्ति हुई। इसका वर्णन विष्णुपुराण में भी प्राप्त होता है। यथा-

वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः।
त्रिविधोऽयमहंकारो महत्तत्त्वादजायत्।।

प्रकृति-पुरुष द्वारा उत्पन्न महत् एवं महत् तत्त्व से उत्पन्न अहंकार तत्त्व के द्वारा सूर्यसिद्धान्तोक्तवत् सृष्टि की प्रक्रिया आरम्भ हुई अर्थात् यहाँ भी पूर्व की भांति अहंकार तत्त्व से आकाश तत्त्व, आकाश तत्त्व से वायु तत्त्व, वायु तत्त्व से अग्नि तत्त्व, अग्नि तत्त्व से जल तत्त्व तथा जल तत्त्व से पृथ्वी तत्त्व की उत्पत्ति हुई जिसमें क्रमशः एक-एक की वृद्धि क्रम से गुणाधिक्य प्राप्त होता है अर्थात् आकाश में केवल शब्द गुण प्राप्त होता है। वायु में शब्द और स्पर्श; तेज में शब्द, स्पर्श और रूप; जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध का गुण प्राप्त होता है। इसमें भी पहले इनकी तन्मात्राएँ एवं इन तन्मात्राओं से भूतों की उत्पत्ति सूचित है अर्थात् उपर लिखे हुए क्रम में अहंकार तत्त्व से शब्द तन्मात्रा तथा शब्द तन्मात्रा से आकाश की उत्पत्ति हुई इसी प्रकार आकाश से स्पर्श तन्मात्रा तथा स्पर्श तन्मात्रा से वायु, वायु से रूप तन्मात्रा एवं इससे तेज, तेज से रस तन्मात्रा एवं इससे जल, जल से गन्ध तन्मात्रा तथा इससे पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। क्यों कि यहां तन्मात्राएँ ही विशेष गुण से सम्पन्न होकर भूतों की उत्पत्ति का कारक हैं।

आपने जाना की किस प्रकार इस समग्र ब्रह्माण्ड के कारण रूप पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई। अब आप इन पंचभूतों की सहायता से ब्रह्माण्ड एवं अन्य ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों के सहित चराचरों की सृष्टि को जानेगें।

पंचमहाभूतों की उत्पत्ति के बाद उनके सम्मिश्रण से गोलाकार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई तथा इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत ही ब्रह्माण्ड में स्थित अन्य सभी ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों की उत्पत्ति हुई जिनमें सूर्य अग्नि तत्त्व प्रधान, चन्द्रमा सोम तत्त्व प्रधान, भौम तेज तत्त्व प्रधान, बुध भू तत्त्व प्रधान, बृहस्पति

आकाश तत्त्व प्रधान, शुक्र जल तत्त्व प्रधान तथा शनैश्चर वायु तत्त्व प्रधान ग्रहपिण्ड है। पंचभूत निर्मित इस ब्रह्माण्ड में बीचो-बीच (मध्यकेन्द्र) में पंचतत्त्वों की समाहार रूपी भूमि स्थित है तथा इसके उत्तर में सुमेरू विद्यमान है जिस पर देवताओं का निवास होता है। इसी सुमेरू की एक पर्ण कणिका पर विराजमान होकर ब्रह्मा इस भूपृष्ठ पर सकल चराचरों की सृष्टि करते हैं। जैसा कि शिरोमणि में कहा गया है-

यस्मात्क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्यगर्भे-
ऽहंकारोभूत्खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद्विरंचे-
विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्मतत्तत्त्वमाद्यम्।।

प्रस्तुत प्रसंग में भास्कराचार्य नें वर्णन करते हुए लिखा है कि पंचभूतों से निर्मित यह भूखण्ड क्रमशः चन्द्रमा, बुध, शुक्र, रवि, कुज, बृहस्पति, शनि एवं नक्षत्रों के भ्रमणपथ रूपी कक्षा वृत्तों से आवृत्त होकर इस ब्रह्माण्ड के मध्य में आकर्षण शक्ति नामक परमब्रह्म की धारणात्मिका शक्ति से बिना किसी आधार के ही आकाश में स्थित है तथा इसके (भूपिण्ड के) पृष्ठभाग पर चारों तरफ शाश्वत् रूप में मानव, दानव, वन, उपवन आदि विद्यमान हैं। जिस प्रकार कदम्ब पुष्प की ग्रन्थि के चारों ओर ऊर्ध्वाधः तिर्यक रूप में उसके केसर स्थित होते है ठीक उसी प्रकार इस भूपिण्ड के चतुर्दिक्षु वन, उपवन, पर्वत, ग्राम, नगर आदि विद्यमान होकर इस पृथ्वी को सुशोभित कर रहे हैं।

भूमेः पिण्डः शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-
वृत्तैर्वृत्तो वृत्तः सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजो मयोऽयम्।
नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे
निष्ठं विश्वं च शश्वत्सदुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्।।
सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः।
कदम्बकुसुमग्रन्थिः केसरप्रसरैरिव।।

ज्योतिष शास्त्र के अतिरिक्त पुराणों में, स्मृति ग्रन्थों में, वेदांगों में तथा समस्त संस्कृत वांगमय में भी सृष्टि संरचना की बात की गयी है। आप सभी के ज्ञानार्थ यहाँ पुराणों में प्रतिपादित सृष्टि संरचना का क्रम चक्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जा रहा है।

पुराणों में प्रतिपादित सृष्टि संरचना -

सृष्टि क्रम बोधक चक्र –

प्रधान पुरूष – (जो प्रलय एवं सृष्टि का कारण है) - जनार्दन, वासुदेव

↓

महत्

↓

अहंकार

↓

पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु)

↓

पंचतन्मात्रायें - (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)

↓

समस्त इन्द्रियाँ एवं उसके अधिष्ठातृ देवता

↓

समस्त जगत् या सृष्टि का निर्माण

बोध प्रश्न – 1

(1) इस ब्रह्माण्ड में कितने सौरमण्डल है?

(क) एक (ख) पाँच (ग) असंख्य (घ) बारह

(2) सृष्टि क्या है?

(क) पृथ्वी (ख) मनुष्य (ग) समस्त चराचरों की संरचना (घ) सूर्य

(3) भारतीय मान्यता के अनुसार समस्त ज्ञान–विज्ञान का स्रोत है।

(क) वेद (ख) पुराण (ग) साहित्य (घ) लोक

(4) भूपृष्ठ पर विद्यमान चराचर सृष्टि के स्रष्टा कौन है?

(क) वायुदेव (ख) परमब्रह्म (ग) ब्रह्मा (घ) विष्णु

(5) ज्योतिष में प्रत्यक्ष, आगम और युक्ति प्रमाण को किसने माना है?

(क) भास्कराचार्य (ख) सूर्य (ग) वराहमिहिर (घ) कमलाकर भट्ट

(6) स्वर्णाण्ड के गर्भ से उत्पन्न पुरुष का क्या नाम था?

(क) वासुदेव (ख) अनिरूद्ध (ग) संकर्षण (घ) ब्रह्मा

(7) काल की आत्मा कौन है?

(क) सूर्य (ख) चन्द्र (ग) ब्रह्म (घ) ब्रह्मा

(8) ब्रह्मा के मन से किस ग्रह की उत्पत्ति हुई?

(क) सूर्य (ख) मंगल (ग) बुध (घ) चन्द्रमा

(9) आकाश तत्त्व युक्त ग्रह है।

(क) सूर्य (ख) मंगल (ग) गुरु (घ) शनि

(10) तमोगुण प्रधान कौन होता है?

(क) राक्षस (ख) मनुष्य (ग) देवता (घ) ब्रह्मा

बोध प्रश्न – 2

(1) महत् तत्त्व से किसकी उत्पत्ति हुई?

(क) अहंकार (ख) जल (ग) आकाश (घ) अग्नि

(2) पृथ्वी तत्त्व की उत्पत्ति किससे हुई?

(क) अग्नि तत्त्व से (ख) वायु तत्त्व से (ग) जल तत्त्व से (घ) आकाश तत्त्व से

(3) अग्नि तत्त्व की कितनी तन्मात्राएँ होती है?

(क) 02 (ख) 03 (ग) 04 (घ) 05

(4) शब्द तन्मात्रा की उत्पत्ति किससे हुई?

(क) महत् (ख) ब्रह्म (ग) अहंकार (घ) आकाश

(5) भू तत्त्व प्रधान ग्रह कौन है?

(क) सूर्य (ख) मंगल (ग) चन्द्रमा (घ) बुध

(6) ब्रह्माण्ड के मध्य में कौन सा पिण्ड स्थित है?

(क) पृथ्वी (ख) सूर्य (ग) चन्द्र (घ) उल्का

(7) ब्रह्माण्ड के अन्दर सूर्य के उपर किस ग्रह की कक्षा है?

(क) शुक्र की (ख) मंगल की (ग) गुरु की (घ) शनि की

(8) प्रकृति–पुरुष के क्षोभ से सर्वप्रथम कौन सा तत्त्व उत्पन्न हुआ?

(क) अहंकार (ख) महत् (ग) वासुदेव (घ) शब्द

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि सृष्टि की उत्पत्ति का सिद्धान्त अतीव प्राचीन काल से ही महान अतीत के गर्भ में व्यवस्थित है। इसकी उत्पत्ति काल से ही गवेषकों ने इसके रहस्य को जानने के लिए अनेक अथक प्रयास किए कितने ही सिद्धान्त बनें परन्तु कालक्रम से वे सभी स्थूल होते गए तथा अनेक परवर्ति अन्वेषकों नें पूर्ववर्त्ति सिद्धान्तों को खण्डित कर नवीन सिद्धान्तों की स्थापना की परन्तु अब तक कोई भी ऐसा सर्वमान्य सृष्टि विषयक सिद्धान्त स्थापित नहीं हो सका जिस पर सर्वसम्मति या मतैक्य हो। सभी वैज्ञानिक एवं चिन्तक अपनी-अपनी परम्परा एवं मेधा से आज भी इसके अन्वेषण में संलग्न है।

वैदिक साहित्य में वेदाङ्ग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वेदों को समझने के लिए जो शास्त्र आवश्यक होते हैं, उन को वेदाङ्ग कहते हैं। वेद + अंग मिलकर वेदाङ्ग शब्द बना है। वेद से आप सभी पूर्व में ही परिचित होगें। अंग के लिए कहा गया है कि *'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अङ्गानि' अर्थात्* जिनके द्वारा किसी वस्तु की जानकारी मिलती है, उसका स्वरूप पहचानने में सहायता मिलती है उन्हे 'अंग' कहते हैं। *इस प्रकार* वेदस्य अंग: 'वेदांग:' कथ्यते। अर्थात् वेद के अंग को 'वेदांग' कहते हैं।

वेदांगों में सृष्टि प्रक्रिया का उल्लेख सर्वाधिक ज्योतिष और कल्प शास्त्र में मिलता है। अन्य वेदांगों में अल्प मात्रा में सृष्टि विषयक विषयों का उल्लेख है।

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर – 1

1. ग
2. ग
3. क
4. ग
5. घ
6. ख
7. क
8. घ
9. ग
10. क

बोध प्रश्नों के उत्तर – 2

1. क
2. ग
3. ख
4. ग
5. घ
6. क
7. ख
8. ख

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

वेदांग - वेद का अंग

शिक्षा - वेदपुरूष की नासिका

ज्योतिष - वेदपुरूष का चक्षु रूपी अंग

कल्प – वेद का हस्त

छन्द – वेद का पैर

व्याकरण – वेदपुरूष का मुख

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वेदांग ज्योतिष

सूर्यसिद्धान्त

सिद्धान्तशिरोमणि

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

वैदिक साहित्य

वेदांग ज्योतिष

सूर्यसिद्धान्त

सिद्धान्तशिरोमणि

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सृष्टि क्रम का उल्लेख कीजिये।
2. वेदांगों में सृष्टि प्रक्रिया का उल्लेख कीजिये।
3. ज्योतिष शास्त्र पर निबन्ध लिखिये।
4. ज्योतिषशास्त्र में प्रतिपादित सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।
5. सूर्यसिद्धान्त एवं सिद्धान्तशिरोमणि में प्रतिपादित सृष्टि प्रक्रिया का विश्लेषण कीजिये।

खण्ड - 2

काल

इकाई – 1 त्रुट्यादि अमूर्तकाल

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 संहारक (अखण्ड) काल

1.4 कलनात्मक (सखण्ड) काल

बोधप्रश्नः

1.5 सूक्ष्मकाल

1.5.1 त्रुटि

1.5.2 रेणु

1.5.3 तत्पर

1.5.4 निमेष

1.5.5 लव

1.5.6 लीक्षक

1.6 आधुनिक सूक्ष्मकाल

बोधप्रश्न

1.7 सारांशः

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.10 सहायक पाठ्यसामग्री

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई द्वितीय खण्ड की प्रथम है। जैसा कि आपको ज्ञात है, इस खण्ड का नाम **‘काल’** है। सर्वप्रथम मन में यह प्रश्न उठता है कि काल क्या है? **‘कलयति इति कालः’** इस व्युपत्ति से जिसकी (कलन अर्थात्) गणना होती है उसे **काल** कहते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में काल ही एक ऐसा लोकोत्तर पदार्थ है जो सर्वदा चलायमान है। यह काल ही ज्योतिषशास्त्र का मूल प्रतिपाद्य है। वस्तुतः काल के स्वरूप का निर्धारण करने के कारण ही इस शास्त्र को **कालविधायकशास्त्र** भी कहते हैं। इस इकाई में आप काल के स्वरूप, उसके भेद एवं अमूर्तकाल का अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य-

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1.काल को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।

2. काल के महत्त्व को समझा सकेंगे।

3. काल के भेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।

4. अमूर्तकाल का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।

5. प्राचीन व नवीन अमूर्त कालों के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

1.3 संहारक (अखण्ड) काल

जैसा कि आप जानते हैं काल सम्पूर्ण सृष्टि का मूल है। काल के बिना इस संसार का अस्तित्व ही नहीं है । इस संसार में कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो काल की सीमा से परे हो। सर्वप्रथम आप के मन में यह प्रश्न उठता है कि काल शब्द का क्या अर्थ है? **‘कलयति इति कालः’** इस व्युत्पत्ति से जो कलन (भक्षण) करता है अथवा जिसकी गणना होती है वह काल है। इन दो अर्थों के कारण काल मुख्यतया 2 प्रकार का होता है। 1. लोक का संहार करने वाला , 2. गणनात्मक (कलनात्मक) अर्थात् गणना करने वाला।

संहारक काल लोक अर्थात् जगत् का विनाश करने वाला होता है। सामान्य भाषा में प्रचलित उक्तियॉं यथा- ‘‘इनका काल आ गया है’’, ‘‘काल के गाल में समा गए’’- काल के विनाशक होने का प्रमाण देती हैं। दूसरा काल कलनात्मक या गणनात्मक है। अर्थात् वह काल जिसकी कलना या गणना की जा सके। यह गणनीय काल भी मुख्यतया ‘सूक्ष्म’ तथा ‘स्थूल’ इन दो भेदों में विभक्त है।

यथा-

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना,
कान्ते सपक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत्।

अन्वय- कालः सर्वाणि एव भूतानि आत्मना सह पचति। कान्ते सपक्वः तनैव सह लयं व्रजेत्।

सरलार्थ-

कालः सर्वाणि एव भूतानि = सभी प्रणियों को, आत्मना सह = अपने साथ, पचति = पकाता है। कान्ते = ब्रह्मा का अन्त होने पर (प्रलय होने पर), सपक्वः तेनैव सह = स्वयं पका हुआ, उन पके हुए प्राणियों के साथ , अव्यक्ते = परब्रह्म में, लयं व्रजेत् = लीन हो जाए विलीन हो जाता है।

व्याख्या-

काल सभी भूतों अर्थात् प्राणियों को (एवं उनके साथ-साथ सभी वनस्पतियों एवं जड़ पदार्थों को भी) अपने साथ पकाता है। पकाना अर्थात् परिपक्व बनाना, अन्तिम अवस्था तक ले जाना। काल न केवल सभी जड़-चेतन पदार्थों को पकाता है अपितु स्वयं भी पकता है। अर्थात् काल की भी अन्तिम अवस्था आती है।

यहाँ पुनः आप के मन में प्रश्न उठता है कि काल की अन्तिम अवस्था कब आती है? इसका उत्तर है- 'कान्ते' अर्थात् कस्य अन्ते। कः ब्रह्मा तस्य ब्रह्मणः अन्ते अवसानकाले अर्थात् ब्रह्मा का अन्तिम समय आने पर । प्रचीन सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा हैं किन्तु ब्रह्मा का भी अन्त होता है। तत्पश्चात् दूसरे ब्रह्मा के द्वारा पुनः सृष्टि होती है। ब्रह्मा की परमायु आयु 100 वर्ष मानी गई है एवं ब्रह्मा का 1 दिन 2 कल्प के तुल्य होता है । 1 कल्प में 1000 महायुग होते हैं। इन महायुग-कल्प-ब्राह्म दिन की चर्चा तत्तत्स्थलों पर की जाएगी। प्रसंगवशात् केवल इन विषयों का नामोल्लेख यहाँ किया गया है।

अब हम लोग प्रकृत पर पुनः आते हैं। जैसा कि आप ने ऊपर पढ़ा कि ब्रह्मा का भी अन्त काल होता है। इसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। इस प्रलय के समय काल पकी हुई सारी सृष्टि के साथ स्वयं भी पचता हुआ उस अव्यक्त अर्थात् परब्रह्म परमपिता परमेश्वर में लीन हो जाता है। महाभारत के आदिपर्व में काल की सम्पूर्ण व्याख्या बड़े ही सुन्दर ढंग से की गई है -

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
संहरन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः।।
कालो हि कुरुते भावान् सर्वलोके शुभाशुभान्।
कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजाः विसृजते पुनः।।

कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥ (महाभारत आ.प.अ.1,श्लोक 248-250)

भारतीय ज्योतिष का आर्ष ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त भी काल के इस विभाजन का समर्थन करता है-

''लोकानाम् अन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः इति''॥ (सूर्यसिद्धान्त,मध्यमाधिकार)

लोकानाम्= लोक का अर्थात् जगत् का, अन्तकृत् = अन्त करने वाला संहारक, कालः = काल है, कालोऽन्यः = दूसरा काल अर्थात् काल का दूसरा स्वरूप, कलनात्मकः= कलात्मक गणना करने योग्य है। अर्थात् मुख्यतया काल के दो स्वरूपों से हम परिचित हैं जिनमें पहला संहारक तथा दूसरा गणनात्मक है। आइए काल के इन दोनों स्वरूपों पर विस्तार पूर्वक चर्चा करते है।

अन्वय-

कालः भूतानि सृजति कालः प्रजाः संहरते। पुनः प्रजाः संहरन्तं कालं कालः शमयते। सर्वलोके कालो हि शुभाशुभान् भावान् कुरुते। कालः पुनः सर्वाः प्रजाः विसृजते (ततः) संक्षिपते। सुप्तेषु कालः जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।

सरलार्थ-

कालः भूतानि = सभी पदार्थों को, सृजति = उत्पन्न करता है। कालः = काल ही, प्रजाः संहरते = सभी प्राणियों (समस्त पदार्थों का) संहार करता है अर्थात् विनाश करता है। प्रजाः संहरन्तं कालं = प्राणियों का संहार करने वाले काल को पुनः कालः शमयते = फिर काल ही शान्त करता है अर्थात् समाप्त करता है। सर्वलोके = सम्पूर्ण जगत् में, कालो हि = निश्चयपूर्वक काल ही, शुभाशुभान् भावान = शुभाशुभ भावों को अर्थात् लाभ-हानि से उत्पन्न सुख-दुःख रूपी भावों को, कुरुते = उत्पन्न करता है। कालः = काल ही पुनः = फिर से (नष्ट करने के बाद पुनः), सर्वाः प्रजाः = सारी सृष्टि को, विसृजते संक्षिपते = उत्पन्न करता है तत्पश्चात् पुनः संक्षिप्त करता है अर्थात् समाप्त करता है। सुप्तेषु = शयनावस्था में जब सभी प्राणी सो रहे होते हैं अर्थात् विरामावस्था में स्थिर रहते हैं, तब भी कालः = यह समय जागर्ति = जागता रहता है अर्थात् चलायमान रहता है। कालो हि दुरतिक्रमः = काल का अतिक्रम दुष्कर है अर्थात् काल अजेय है।

आदिपर्व के इन 2 श्लोकों में काल के सम्पूर्ण स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। इन श्लोकों में भी काल के उन्हीं दो स्वरूपों की ही चर्चा की गयी है जिन्हें शास्त्रों में अखण्ड व सखण्ड इन दो रूपों में उद्धृत किया गया है। काल का अखण्ड स्वरूप वह है जो भूत, भविष्य, वर्तमान काल खण्ड से भिन्न है। नित्य विद्यमान है एवं सम्पूर्ण सृष्टि के विनाश एवं उत्पत्ति का परम हेतु है। वही परब्रह्म है।

वही महाकाल है। सखण्ड काल वह है जो दो व्यापारों क्रियाओं के बीच विद्यमान है, एवं त्रुट्यादि रूप में गणनीय है। यह सखण्ड काल अनित्य है एवं सृष्टि के विलीन होने के साथ-साथ इस (सखण्ड) काल का भी नित्य, लोकोत्तर अखण्ड काल में विलय हो जाता है। इसीलिए महाभारत में कहा है **'संहरतं कालं शमयते कालः'** अर्थात् संहार (समाप्ति) करने वाले इस सखण्ड काल का शमन (विराम अथवा विलय) अखण्ड काल में होता है।

सखण्ड काल जो कलनात्मक है उसके शुभ अशुभ प्रकृति का भी उल्लेख इन श्लोको में किया गया है। वस्तुतः काल का शुभ अशुभ होना व्यक्ति सापेक्ष है। एक ही कालखण्ड किसी व्यक्ति के लिए शुभ तथा दूसरे व्यक्ति के अशुभ हो सकता है। उदाहरणार्थ- आजीविका के लिए चुने गए अभ्यर्थी का काल शुभ है एवं जिस अभ्यर्थी का चयन नहीं है उसका समय प्रतिकूल होने के कारण उस व्यक्ति के लिए वही काल अशुभ है।

अन्त में काल को दुरतिक्रम अर्थात् अजेय बताया गया है। वस्तुतः कोई भी प्राणी, वनस्पति या जड़ पदार्थ ऐसा नहीं है जो निश्चित अवधि के बाद नष्ट न हो जाए। काल की सीमा अतिक्रम करना असम्भव है। रावण जैसे असुर पर भी काल ने अन्ततः विजय प्राप्त की। भगवान् ने गीता में स्वयं कहा है- **जातस्य ध्रुवोर्मृत्युः** इति। अर्थात् उत्पन्न हुए सम्पूर्ण प्राणि या पदार्थ अवश्य ही मृत्यु अथवा विनाश को प्राप्त होते हैं। यह शाश्वत सत्य है।

1.4 कलनात्मक (सखण्ड) काल -

''कलयति गणयति अनेन इति कालः'' इस व्युत्पत्ति के आधार पर जिस काल की गणना की जा सके अथवा जिसके द्वारा गणना की जा सके उसे कलनात्मक काल कहते हैं। प्रयोग करने के उद्देश्य से यह काल छोटे-बड़े कई विभागों या खण्डों में विभक्त होने के कारण सखण्ड कहलाता है। इस गणनात्मक काल के भी मुख्यतया दो विभाग हैं-1. सूक्ष्म, 2. स्थूल। सूक्ष्म काल वह खण्ड है जो अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण 'अमूर्त' कहलाता है। इसका प्रयोग सामान्य व्यवहार में नहीं होता है। प्रचीन भारतीय गणितज्ञों ने इस सूक्ष्म काल की प्रथम इकाई 'त्रुटि' को माना था। आधुनिक वैज्ञानिक योक्टोसेकेण्ड, जेप्टोसेकेण्ड, एट्टोसेकेण्ड, नैनोसेकेण्ड इत्यादि को सूक्ष्म काल की इकाइयाँ मानते हैं। स्थूल काल वह खण्ड है जो स्थूल होने के कारण 'मूर्त' कहलाता है। दैनिक जीवन में इसका प्रयोग होने के कारण इसे व्यावहारिक काल भी कहते है। प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों ने स्थूल काल की पहली इकाई 'प्राण' को स्वीकार किया है। वर्तमान समय में माइक्रोसेकेण्ड, सेकेण्ड को स्थूल काल की पहली इकाई माना जाता है।

कलनात्मक काल के इन 2 भेदों को सूर्यसिद्धान्त में स्पष्ट रूप से कहा गया है-

''स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते''। (सूर्यसिद्धान्त,मध्यमाधिकार,श्लोक-11)

अन्वय-

सः स्थूलसूक्ष्मत्वात् द्विधा मूर्त अमूर्तश्च उच्यते।

सरलार्थ-

कलनात्मक (सखण्ड) काल, स्थूलसूक्ष्मत्वात् = स्थूल और सूक्ष्म रूप में होने के कारण, द्विधा = 2 प्रकार का होता है, जो क्रमशः, मूर्तश्चामूर्त उच्यते = 'मूर्त' और 'अमूर्त' इस नाम से कहा जाता है।

व्याख्या-

स्थूल को मूर्त कहा गया है। यद्यपि काल ऐसी वस्तु नहीं है जिसके स्वरूप का रेखांकन करना सम्भव हो। तथापि यह काल खण्ड ऐसा है जिसकी मर्यादा (सीमा) का बोध सभी सामान्य लोगों को होता है। अतः अमुक काल खण्ड की सीमा कहॉं तक है एवं कब इसका अतिक्रमण हो रहा है? इन दोनों ही प्रश्नों का बोध जिस काल खण्ड के निमित्त (लिए) हो सके वही काल मूर्त है, स्थूल है। यथा- सेकेण्ड, मिनट घण्टा इत्यादि इन काल खण्डों की सीमाएं ज्ञात होने के कारण ये स्थूल या मूर्त कहलाती है एवं व्यवहार में इनका प्रयोग किया जाता है। प्राचीन गणकों ने 'प्राण' को स्थूलकाल की प्रथम इकाई माना। जैसे कि सूर्यसिद्धान्त में वर्णित है-

''प्राणादिः कथितो मूर्तः'' इति।।

अर्थात् मूर्त कालों (स्थूल कालों) में आदि = प्रथम इकाई 'प्राण' को, कथितः = कहा गया है।

सूक्ष्म काल 'अमूर्त' कहलाता है। सूक्ष्मता के कारण इसकी सीमा का बोध सामान्य जन को नहीं होता है अतः इसे अमूर्त कहते हैं। इस काल का व्यवहार में प्रयोग भी सम्भव नहीं है अतः इसे अव्यवहारिक भी कहते हैं। यथा- 'त्रुटि' 'माइक्रोसेकेण्ड' इत्यादि। ऑख की पलकों को गिरने में जितना समय लगता है उसे **'निमेष'** कहते है। इस निमेष का तीन हज़ारवाँ हिस्सा (निमेष/3000) **'त्रुटि'** कहलाता है। स्पष्ट है कि इतने सूक्ष्म काल की मर्यादा का बोध सामान्यतया असम्भव है अतः इसे अमूर्तकाल कहते है। सूर्यसिद्धान्त में भी 'त्रुटि' को सूक्ष्म काल की प्रथम इकाई बताया गया है।

बोध प्रश्न -

1. सृष्टि की उत्पत्ति एवं विनाश का कारक किसे माना गया है?
2. 'दुरतिक्रम' शब्द का क्या अर्थ है?
3. सबके सोते रहने पर भी कौन जागता है?
4. 'कलनात्मक' शब्द का क्या अर्थ है?
5. अखण्ड व सखण्ड काल में क्या अन्तर है?
6. कलनात्मक काल के मुख्यतया कितने भेद हैं? उनके नाम क्या है?
7. 'कान्ते' इस शब्द का क्या अर्थ है?
8. महाभारत के किस पर्व से काल-विषयक श्लोक उद्धृत किया गया है?

भारतीय **ज्योतिष शास्त्र में नवविधकालमान प्रसिद्ध हैं** – वो इस प्रकार से है

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्रयं प्राजापत्यं गुरोस्तथा ।

सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षमानानि वै नव ।।

ब्राह्म मानम् – ब्रह्म सम्बन्धिमानं ब्रह्म मानं । ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कल्पद्वयं ब्रह्मा जी की एक अहोरात्र का मान होता है । इसी अहोरात्र के मान से ब्रह्मा की परमायु 100 वर्ष की है । एक कल्प में 1000 महायुग होता है ।

दिव्य मानम् - देवताओं से सम्बन्धित दिव्य मान होता है । मानवों का एक वर्ष देवताओं के एक दिन के बराबर होता है ।

पैत्र मानम् – पितरों से सम्बन्धित मान को पितृ मान कहते है । मानवों के एक पक्ष के बराबर इनका एक दिन होता है पितरों का निवास स्थान चन्द्रमा के उर्ध्व भाग में है। ऐसा कल्पना प्राचीन ज्योतिर्विदों के द्वारा किया गया है ।

प्रजापति मान - प्रजापति सम्बन्धित मान प्रजापति मान होता है ।

गुरू मान – वृहस्पति के मध्यम मान से यह मान निकाला जाता है ।

सौर मान – सूर्य सम्बन्धित मान को **सौरमान** कहते है ।

सावन मान – इनोद्वय द्वयान्तरं तदर्क सावनं दिनम् । एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के अन्तर मान को सावन मान के नाम से जाना जाता है ।

चान्द्र मान – चन्द्रमा सम्बन्धित मान को चान्द्रमान कहते है । चन्द्रमा के अनुसार इस मान की गणना की जाती है।

नाक्षत्र मान – एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र तक के उदय मान को नाक्षत्र मान कहते है ।

1.5 सूक्ष्मकाल-

जैसा कि आपने पूर्व में पढ़ा कलनात्मक काल दो प्रकार का होता है। -

1. **सूक्ष्मकाल, 2. स्थूलकाल**। सूक्ष्मकाल वह कालखण्ड जो सूक्ष्म है, अर्थात् जिसके परिमाण का ज्ञान सामान्य विधि से नहीं किया जा सके वही सूक्ष्मकाल या अमूर्तकाल है।

भारतीय गणकों ने सूक्ष्मकाल को भी परिभाषित किया था। उन्होंने सूक्ष्मकाल की सबसे छोटी इकाई 'त्रुटि' को माना। पलकों के निमीलन या संयोग में जितना समय लगता है उसका हज़ारवा हिस्सा त्रुटि कहलाता है। त्रुटि से बड़ी सूक्ष्मकाल की इकाई 'रेणु' कहलाती है। रेणु का मान त्रुटि से 60 गुना ज्यादा है। रेणु से 60 गुना बड़ा कालखण्ड 'लव' कहलाता है। लव से 60 गुना बड़ा 'लीक्षक' तथा 60 लीक्षकों का 1 प्राण होता है। यह प्राण स्थूल काल की पहली इकाई है। आधुनिक

काल में प्रचलित सेकेण्ड का 4 गुना एक प्राण का मान है। इस सेकेण्ड का 3240000 बत्तीस लाख चालिस हज़ारवाँ हिस्सा 1 त्रुटि है। आइए सूक्ष्मकाल की इन इकाई को हम क्रमशः विस्तार से जानें।

1.5.1 त्रुटि-

जैसा कि आप ने पूर्व में पढ़ा त्रुटि सूक्ष्मकाल की सबसे छोटी इकाई है। त्रुटि की 2 परिभाषाएँ मुख्यतया
प्रचलित हैं। जिनमें प्रथम मत नारद का तथा द्वितीय मत भास्कर का है। यहाँ दोनों मत एकैकशः प्रस्तुत किए जा रहे है।

नारद मत में त्रुटि -

प्रथम परिभाषा नारद के द्वारा दी गई है-

''सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिः इत्यभिधीयते।''।

अन्वय-

सूच्या पद्मपत्रे भिन्ने त्रुटिः इति अभिधीयते।

सरलार्थ- सूच्या = सूई के द्वारा, पद्मपत्रे भिन्ने = कमल के पत्र का भेदन करने पर, त्रुटिः इति अभिधीयते = 'त्रुटि ऐसा कहा जाता है।

व्याख्या- सूई के द्वारा कमल पुष्प के पत्र को छेदने में जितना समय लगता है उस समय की त्रुटि संज्ञा है। कहीं-कहीं पर शतपत्र भेदन काल को 'त्रुटि' कहा गया है। अर्थात् अव्यवहित (व्यवधान रहित) सौ कमल दल को भेदने में जितना समय लगा उसे त्रुटि कहते है।

परन्तु गणित ज्योतिष (सिद्धान्त ज्योतिष) के आकर ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के टीकाकार श्री कपिलेश्वर शास्त्री ने अपने 'तत्वामृत' - नामक टीका में नारद के मत को ही त्रुटि की परिभाषा के रूप में उद्धृत किया है। अतः नारद मत को ही यहाँ आधार मानते हुए सूई के द्वारा 1 कमल दल के भेदन काल को त्रुटि के रूप में स्वीकार किया गया है।

भास्कराचार्य मत में त्रुटि-

11 शताब्दी के अन्त में भास्कर द्वितीय का जन्म हुआ। भास्कर द्वितीय महान् गणितज्ञ व ज्योतिषी थे। भारतीय ज्योतिष के इतिहास में इन्हें 'भास्कराचार्य' के नाम से जाना जाता है।भास्कराचार्य ने युवावस्था में ही 'सिद्धान्तशिरोमणि' नामक ग्रन्थ की रचना की। गणित ज्योतिष (सिद्धान्त ज्योतिष) का आकर एवं पथप्रदर्शक ग्रन्थ होने के कारण इस ग्रन्थ की आज भी प्रतिष्ठा एवं उपयोगिता है।

सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ के 4 भाग क्रमशः- 1. **लीलावती, 2. बीजगणित, 3. गणिताध्याय, 4. गोलाध्याय** हैं।

गणिताध्याय में उन्होंने काल की गणना से लेकर स्पष्टग्रह के साधन, ग्रहण, नक्षत्रादि से युति, अस्त इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है।

लीलावती अंकगणित एवं बीजगणित अव्यक्त गणित का ग्रन्थ है।

गोलाध्याय खगोल एवं ग्रहों की स्थिति का प्रतिपादन करता है।

गणिताध्याय में काल के निरूपण के प्रसंग में भास्कराचार्य ने 'त्रुटि' की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से दी है-

''योऽक्ष्णोः निमेषस्य खरामभागः स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता त्रुटिः''।

(सिद्धान्तशिरोमणि,गणिता.मध्यमाधिकार)

अन्वय-

अक्ष्णोः यः निमेषस्य खरामभागः स तत्परः तत् शतभागः त्रुटिः उक्ता ।

सरलार्थ-

अक्ष्णोः दोनों पलकों का (जो संयोग काल वह) 'निमेष' कहलाता है। निमेषस्य = उस निमेष का खरामभागः = खराम अर्थात् 30 भाग अर्थात् तीसवाँ हिस्सा, सः = जो (जितना) है वह तत्परः = तत्पर कहलाता है। तच्छतभागः = उसका सौवाँ हिस्सा, त्रुटिः = त्रुटि कहलाता है। इस प्रकार

निमेष = पलकों का संयोग काल

निमेष/30 = तत्पर

तत्पर/100 = त्रुटि

इसलिए त्रुटि = तत्पर/100 = निमेष/3000

त्रुटि सेकेण्ड का बत्तीस लाख चालीस हज़ारवाँ हिस्सा है।

त्रुटि = 1/3240000 सेकेण्ड

इसे आधुनिक गणितीय भाषा में प्रकट करें तो इसे 3.24×10^{-7} सेकेण्ड लिखेंगे जो कि वर्तमान में प्रचलित माइक्रोसेकेण्ड (10^{-6} से.) से छोटा तथा नैनोसेकेण्ड (10^{-9}से.) से 100 गुना बड़ा है।

अतः त्रुटि = 1/3240000 सेकेण्ड = 3.24 ग 10^{-7} सेकेण्ड।

1.5.2 रेणु-

रेणु त्रुटि से परिमाण में 60 गुना बड़ा कालखण्ड है। इसकी परिभाषा नारद के अनुसार इस प्रकार है-

.... त्रुटिरित्यभिधीयते।

तत्षष्ट्या रेणुरित्युक्तो..........इति।।

अन्वय -

तत्षष्ट्या रेणुः इति उक्तः।

सरलार्थ -

तत्षष्ट्या- उसका अर्थात् त्रुटि का 60 गुना रेणुः इति उक्तः- रेणु कहा गया है।

त्रुटि × 60

वर्तमान में प्रचलित कालखण्ड के अनुसार रेणु का मान कितना होगा? आपके मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

जैसा कि पूर्व में आपने पढ़ा त्रुटि = 1/3240000 त्र 3ग10.7 सेकेण्ड

1 रेणु = 60 त्रुटि

= 60 × 1/3240000 सेकेण्ड

1 रेणु = 1/54000 सेकेण्ड = 5.4×10^{-5} सेकेण्ड

अर्थात् सेकेण्ड का चौवनवाँ हिस्सा रेणु कहलाता है। इसे आधुनिक गणितीय भाषा में 5.4 ×10.5 सेकेण्ड भी कह
सकते हैं। इस प्रकार रेणु माइक्रोसेकेण्ड (10-6) से थोड़ा बड़ा एवं मिलीसेकेण्ड (10-3) से लगभग हजार गुना
छोटा है।

1.5.3 तत्पर-

तत्पर का उल्लेख 1.5.1 में किया गया है, जिसे यहाँ आप विस्तार पूर्वक पढ़ेगें।

तत्पर की परिभाषा भास्कराचार्य ने इस प्रकार से दी है-

‘‘**निमेषस्य खरामभागः स तत्परः**’’ इति।।

निमेष का खराम भाग तत्पर कहलाता है। खराम इस शब्द में दो पद ‘ख’ एवं ‘राम’ है। ‘ख’ का अर्थ आकाश या शून्य (0) है। ‘राम’ का अर्थ 3 है क्योंकि इतिहास में तीन रामों - राम, बलराम और परशुराम का ही उल्लेख मिलता है। यहाँ ख अर्थात् 0 इकाई एवं राम अर्थात् 3 दहाई के स्थान पर रखने से 30 संख्या आती है। अतः खराम से 30 संख्या का बोध होता है। अतः निमेष का खराम भाग अर्थात् तीसवॉं हिस्सा तत्पर कहलाता है।

निमेष/30 = तत्पर

तत्पर का मान आधुनिक गणित में कितना है? इसके ज्ञान के लिए हमें सर्वप्रथम निमेष का मान जानना आवश्यक है। अतः आइए इस का मान जानते हैं।

1.5.4 निमेष-

निमेष की चर्चा पहले की जा चुकी है। पूर्व में आपने पढ़ा कि पक्षपात अर्थात पलकों के संयोग को निमेष कहते हैं। निमेष का तीन हज़ारवाँ हिस्सा त्रुटि है। इस आधार पर निमेष का आधुनिक गणितीय मान जाना जा सकता है।

त्रुटि = निमेष/3000

निमेष = 3000 त्रुटि = 3000×1/3240000

निमेष = 1/1080 सेकेण्ड

=.8 ग 10.¯3 सेकेण्ड

इस प्रकार निमेष मिलिसेकेण्ड से कुछ छोटा तथा माइक्रोसेकेण्ड से 1000 गुना बड़ा होता है।

पूर्व में आपने जाना कि तत्पर निमेष का 30वाँ हिस्सा कहलाता है, अतः

तत्पर = 1/1080 × 30 त्र 1/32400 सेकेण्ड

आधुनिक गणितीय परम्परा में तत्पर को 3.24×10^{-5} सेकेण्ड इस रूप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार तत्पर माइक्रोसेकेण्ड से थोड़ा ही छोटा होता है।

1.5.5 लव-

आपने त्रुटि व रेणु के बारे में पहले पढ़ा। जिस प्रकार त्रुटि का 60 गुना रेणु होता है। उसी प्रकार रेणु का 60 गुना 'लव' होता है।

नारद के मतानुसार -

''रेणुषष्ट्या लवः स्मृतः'' इति।

रेणुषष्ट्या = षष्टि अर्थात् साठ (60), 60 रेणु के द्वारा, लवः स्मृतः = लव कहा गया है (समझना चाहिए)।

= 1 लव = 60 रेणु

= 60 × 1/54000 सेकेण्ड

= 1/900 सेकेण्ड

इस प्रकार लव सेकेण्ड का 900वाँ हिस्सा है। इसे 9×10^{-2} सेकेण्ड भी कह सकते है। इस प्रकार लव मिलीसेकेण्ड से थोड़ा ही बड़ा और माइक्रोसेकेण्ड से दस हज़ार गुना छोटा कालमान है।

1.5.6 लीक्षक-

लीक्षक का मान लव से भी ज्यादा होता है। लीक्षक लव से 60 गुना बड़ा होता है। नारद ने लीक्षक की परिभाषा इस प्रकार की है-

''तत्षष्ट्या लीक्षकं प्रोक्तम्'' इति।।

तत् - जो पूर्व में कथित 'लव' नामक कालखण्ड है उसका, षष्ट्या - 60 गुना, लीक्षकं प्रोक्तम् - 'लीक्षक' कहा गया है।

अतः 1 लीक्षक = 60 लव

= 60 ग 1/900 सेकेण्ड

= 1/54 सेकेण्ड

इस प्रकार सेकेण्ड का 54वाँ हिस्सा **लीक्षक** कहलाता है। अर्थात् यदि सेकेण्ड के 54 बराबर भाग किए जाएं तो एक भाग 1 लीक्षक के तुल्य होगा। इस प्रकार लीक्षक का मान आधे सेकेण्ड से भी कम होता है। यही लीक्षक जब 60 हो जाते हैं तो स्थूल काल की प्रथम इकाई प्राण के बराबर होते हैं। अतः 1 प्राण = 4 सेकेण्ड ।

इस प्रकार ये त्रुट्यादि काल सूक्ष्मकाल के रूप में प्रचलित थे। जिनका व्यवहार में प्रयोग नहीं होता था। सूक्ष्मकाल की आदि इकाई त्रुटि आज के माइक्रोसेकेण्ड से भी छोटी इकाई है। इसी प्रकार सूक्ष्मकाल की सबसे बड़ी इकाई लीक्षक है जो आधे सेकेण्ड से भी छोटी है।

नारद पुराण में वर्णित सूक्ष्मकाल की ये परिभाषाएँ तत्कालीन भारतीय मनीषियों गणितज्ञों के सूक्ष्म बुद्धि का परिचय देती है।

1.6 आधुनिक सूक्ष्मकाल -

वर्तमान समय में प्रयुक्त सूक्ष्मकाल निम्नलिखित हैं-

1. योक्टोसेकेण्ड = 10^{-24} सेकेण्ड

वर्तमान गणित में सेकेण्ड के दसवें हिस्से को प्रदर्शित करने के लिए 10^{-1} सेकेण्ड इस पद्धति का प्रयोग करते है। सेकेण्ड के सौंवे हिस्से के लिए 10^{-2} ,हज़ारवाँ हिस्सा हो तो उसे 10^{-3} दसहज़ारवाँ

10^{-4} लाखवाँ 10^{-5} दसलाखवाँ 10^{-6} इस क्रम से प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रकार आप कल्पना कीजिए की जिस कालखण्ड का मान, 10.24 सेकेण्ड है वो सेकेण्ड का कितना छोटा हिस्सा होगा।

2. ज़िफ्फी = 3×10^{-24}

वस्तुतः यह भौतिकशास्त्र में प्रचलित कालखण्ड है। निर्वात में स्थित न्यूक्लियन में प्रवेश करने के लिए प्रकाश को जितना काल लगता है उसे ही 'ज़िफ्फी' कहते है। गणित के द्वारा इस कालखण्ड का आकलन किया गया है, किन्तु इतने छोटे कालखण्ड को अभी तक मापा नहीं जा सकता है।

3. एट्टोसेकेण्ड = 10^{-18} सेकेण्ड

वर्तमान समय में यह कालखण्ड सबसे छोटा है जिसको मापने का यन्त्र वैज्ञानिक प्रयोग में लाते

4. फेम्टोसेकेण्ड = 10^{-15} सेकेण्ड

5. पीकोसेकेण्ड = 10^{-12} सेकेण्ड

अर्थात् सेकेण्ड के खरबवें हिस्से को पीकोसेकेण्ड कहते है।

6. नैनोसेकेण्ड =10^{-9}

अर्थात् सेकेण्ड के करोड़वें हिस्से को नैनोसेकेण्ड कहते है। बल्ब इत्यादि कृत्रिम प्रकाश के कणों को विद्युत प्रवाह के उपरान्त उद्दीप्त होने में एक नैनोसेकेण्ड का समय लगता है।

7. माइक्रोसेकेण्ड = 10^{-6} सेकेण्ड

सेकेण्ड के लाखवें हिस्से को माइक्रोसेकेण्ड बोलते हैं।

8. मिलिसेकेण्ड = 10^{-3} = 1/1000 सेकेण्ड

सेकेण्ड के हज़ारवें हिस्से को मिलिसेकेण्ड कहते है।

9. सेण्टीसेकेण्ड = 10^{-2} सेकेण्ड = 1/100 सेकेण्ड

सेकेण्ड के सौवें हिस्से को सेण्टीसेकेण्ड कहते है।

10. डेसीसेकेण्ड =10^{-1} सेकेण्ड = 1/10 सेकेण्ड

सेकेण्ड के दसवें हिस्से को डेसीसेकेण्ड कहते है।

बोध प्रश्न -

9. नारद के अनुसार त्रुटि की क्या परिभाषा है?
10. त्रुटि का मान वर्तमान काल के अनुसार कितने सेकेण्ड का होता है?
11. तत्पर बड़ा काल है अथवा लव?
12. प्राचीन मत में सूक्ष्मकाल की सबसे बड़ी इकाई क्या है?
13. आधुनिक काल में सबसे सूक्ष्मकाल क्या है, जिसका मापन सम्भव है।

14. लव माइक्रोसेकेण्ड से बड़ा होता है अथवा छोटा?

1.7 सारांश -

'काल' नामक द्वितीय खण्ड की इस प्रथम इकाई में काल की अवधारणा, उसके स्वरूप, भेद तथा सूक्ष्मकाल पर विस्तार पूर्वक चर्चा की गई है। ''कलयति इति कालः'' इस व्युत्पत्ति के आधार पर जो गणना करने के योग्य है उसे काल कहते हैं। काल मुख्यतया 2 प्रकार का होता है। 1. संहारक काल एवं 2. गणनात्मक काल। पहला काल नित्य है, अखण्ड है, गतिशील है एवं सृष्टि की उत्पत्ति व विनाश का कारक है। यह सृष्टि के साथ-साथ सखण्ड (गणनात्मक) काल का भी अन्त करता है। सूर्यसिद्धान्त एवं महाभारत में वर्णित काल के स्वरूप की भी इस पाठ में चर्चा की गई है। काल का दूसरा स्वरूप कलनात्मक या गणनात्मक है। यह काल भी 1. सूक्ष्म, 2. स्थूल इन 2 भेदों में विभक्त है। सूक्ष्मकाल वह है जो परिमाण में अत्यन्त छोटा है। सामान्यतया उसके परिमाण का (सीमा का) बोध नहीं होता है अतः उसे अमूर्त काल भी कहते हैं। प्राचीन भारतीय ज्योतिष में सूक्ष्मकाल की सबसे छोटी इकाई त्रुटि मानी गई है। सूई के द्वारा कमल पत्र के भेदन में जितना समय लगता है वही त्रुटि कहलाता है। आधुनिक मान के अनुसार त्रुटि सेकेण्ड का बत्तीसलाख चालीस हज़ारवाँ हिस्सा है। त्रुटि से बड़ा रेणु उससे बड़ा तत्पर, तत्पर से बड़ा लव, लव से बड़ा निमेष, निमेष से बड़ा लीक्षक होता है। आधुनिक गणित में तो योक्टोसेकेण्ड (10^{-24} सेकेण्ड), एट्टोसेकेण्ड (10^{-18} सेकेण्ड), पीकोसेकेण्ड (10^{-12}), नैनोसेकेण्ड (10^{-9} सेकेण्ड) माइक्रोसेकेण्ड (10^{-6} सेकेण्ड), मिलीसेकेण्ड (10^{-3} सेकेण्ड) थे सारी सूक्ष्मकाल की इकाइयाँ हैं।

इस प्रकार इस पाठ के अध्ययन से आप काल की अवधारणा, उसके भेद एवं सूक्ष्मकाल को अच्छी तरह जान सकेंगे।

1.8 पारिभाषिक शब्दावली-

1.	पचति	-	पकाता है। (अन्तिम अवस्था तक पहुचाता है)।
2.	भूतानि	-	प्राणियों को।
3.	स्हात्मना	-	अपने साथ।
4.	कन्ते	-	प्रलय आने पर।
5.	सपक्वः	-	पके हुए के साथ।
6.	लयं	-	लीनता को (लुप्तावस्था को, विनाश को)।
7.	व्रजेत्	-	जाता है (प्राप्त होता है)।
8.	सृजति	-	उत्पन्न करता है।

9.	संहरते	-	संहार (नष्ट) करता है।
10.	शमयते	-	शान्त करता है (समाप्त करता है)।
11.	संक्षिपत	-	संक्षिप्त (नष्ट) करता है।
12.	जागर्ति	-	जागता है (चलायमान रहता है)।
13.	अन्तकृत्	-	अन्त (संहार) करने वाला।
14.	कलनात्मकः	-	कलना (गणना) करने के योग्य।
15.	अक्ष्णोः	-	आँख की पलकों का।
16.	खरामभागः	-	तीसवाँ (30) हिस्सा 1/30 ।
17.	अभिधीयते	-	कहा जाता है।
18.	प्रोक्तम्	-	कहा गया।

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर-

1. सृष्टि की उत्पत्ति एवं विनाश का कारक संहारक काल (अखण्डकाल) को माना गया है।
2. जिसका अतिक्रमण करना दुष्कर हो अर्थात् जिसको जीतना अत्यन्त कठिन हो।
3. काल ही ऐसा है जो सबके सोते रहने पर भी जगता है।
4. कलनात्मक अर्थात् कलना या गणना करने के योग्य
5. अखण्डकाल नित्य है, भूत-भविष्य-वर्तमान से परे है। यही संहारक या उत्पाद भी है। जबकि सखण्डकाल वह है जो गणना के योग्य है यथा - प्राण, सेकेण्ड आदि।
6. कलनात्मक काल मुख्यतया 2 प्रकार का होता है- सूक्ष्म एवं स्थूल।
7. 'कान्ते' अर्थात् कस्य ब्रह्मणः = ब्रह्मा के, अन्ते = अन्त होने पर, प्रलय की स्थिति में।
8. आदि पर्व के प्रथम अध्याय में।
9. ''सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिः'' अर्थात् सूई के द्वारा एक कमलपत्र को भेदने में जितना समय लगता है उसे त्रुटि कहते हैं।
10. 1/3240000 सेकेण्ड = 3.24×10^{-7} सेकेण्ड
11. लव तत्पर से बड़ा काल है 1 लव का मान = 1/800 सेकेण्ड जबकि तत्पर का मान 1/1080 सेकेण्ड है। इस प्रकार लव तत्पर से 6 गुना बड़ा है।
12. लीक्षक इसका मान 1/54 सेकेण्ड होता है।
13. एट्टोसेकेण्ड (10^{-18} सेकेण्ड)

14. लव माइक्रोसेकेण्ड से दस हज़ार गुना छोटा काल है।

1.10 सहायक पाठ्यसामग्री

1. सिद्धान्त शिरोमणि, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. प्राचीनभारतीयगणित, ब.ल.उपाध्याय।
3. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी.वी.काणे, उ.प्र. हिन्दी संस्थान लखनऊ।

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. सूर्यसिद्धान्त, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. नारद पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. सिद्धान्तशिरोमणि, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर।

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कालःपचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ..... इस श्लोक की व्याख्या कीजिए।
2. त्रुटि को परिभाषित करते हुए लव और रेणु से उसका सम्बन्ध बताईये।
3. तत्पर, निमेष एवं लीक्षक का सम्बन्ध बताइए।
4. आधुनिक व प्राचीन सूक्ष्मकालों की तुलना कीजिए ।
5. आधुनिक सूक्ष्म कालों का वर्णन कीजिये ।

इकाई – 2 प्राणादि मूर्त्त काल

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 प्राणादि मूर्त्त काल
बोध प्रश्न
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.7 सहायक पाठ्यसामग्री
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई खण्ड–2 के द्वितीय इकाई **''प्राणादि मूर्त्त काल''** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है । इससे पूर्व की इकाई में आप ने त्रुट्यादि अमूर्त्त काल का अध्ययन कर लिया है, अब इस इकाई में आप मूर्त्तकाल के बारे में जानेगें।

मूर्त्त काल से तात्पर्य उस काल से है जिसकी हम मूर्त्त रूप में गणना कर सकते है। ज्योतिष शास्त्र काल नियामक शास्त्र है, इसमें अमूर्त्त और मूर्त्त दोनों प्रकार के कालों की गणना की जाती है। मूर्त्त काल स्थूल रूप में होता है , अत: इसकी गणना आसानीपूर्वक हो जाती है।

इस इकाई में पाठकगण प्राणादि मूर्त्त काल का विस्तार पूर्वक अध्ययन कर सकेगें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेगें कि –

- मूर्त्त काल क्या है?
- प्राणादि मूर्त्तकाल किसे कहते है।
- मूर्त्तकाल के अन्तर्गत कौन – कौन से काल आते है।
- व्यावहारिक दृष्टि से मूर्त्तकाल का क्या उपयोग है।
- मूर्त्तकाल की विशेषता क्या है।

2.3 प्राणादि मूर्त्तकाल

काल अनन्त और अनादि होने के कारण अनिर्वचनीय है। **' कल संख्यायने '** धातो से घञ् प्रत्यय करने पर ' काल ' शब्द की व्युत्पत्ति होती है। इसे किसी एक परिभाषा में आबद्ध कर देना अत्यन्त सरल नहीं है। पुराणों में काल को सृष्टिकर्त्ता तथा संहर्त्ता दोनों ही माना गया है - ' काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:।।'' भगवान भास्कर ने भी काल का निरूपण करते हुये कहा है –

लोकानामन्तकृत काल: कालोऽन्य: कलनात्मक:।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्न मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते।।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपलोगों ने त्रुट्यादि अमूर्त्त काल का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो कि अतिसूक्ष्म होने के कारण अव्यावहारिक है। प्राणादि मूर्त्तकाल व्यवहार योग्य है, इसलिये इसे मूर्त्त काल कहते है। यदि इन दोनों भेदों को गणितीय आधार पर देखें तो ये दोनों भेद दो अवस्थाओं के भेद है न कि काल भेद। ये भेद काल की दो भिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करते हैं। मूलत: दोनों ही काल कलनात्मक काल हैं। कोई भी सृष्टि किसी न किसी कालखण्ड में होती है। जिसकी सृष्टि होती

है उसका लय भी होता है। इस शाश्वत सिद्धान्त के अनुसार उस सृष्टि के आरम्भ से उसके लय पर्यन्त की कालावधि भी काल की एक मापक इकाई होती है। इस इकाई का अवसान लय के साथ होता है इसलिए इसे अन्तकृत काल कहा जाता है। इसी प्रकार जो इकाई सृष्ट्यारम्भ काल से सृष्टयन्त काल के मध्यगत कालावधि की गणना करती हैं उन सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों को कलनात्मक काल कहा गया है। चूँकि इसी कालावधि में सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों का उपयोग होता है। अत: इसी कलनात्मक काल के दो भेद मूर्त्त और अमूर्त्त संज्ञक कहे गये हैं। गणितीय दृष्टि से सृष्टि एक प्रक्रिया हैं सृष्ट्यन्त या प्रलय एक कालावधि या काल की एक इकाई है जिसे हम कल्प कहते हैं। कल्पान्त में ब्रह्मा समस्त सृष्टि को समेट कर विश्राम करते हैं। कल्प ब्रह्म का एक दिन होता तथा एक कल्प तुल्य उनकी रात्रि होती है। पुन: ब्रह्मा का दिवसारम्भ होता है, उसी के साथ – साथ सृष्ट्यारम्भ भी होता है। सृष्टि क्रम पूर्ववत ही रहता है। जैसा कि श्रुति कहती है– सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत।। सृष्टि की रचना में ब्रह्मा को 47400 दिव्यवर्ष का समय लगता है। ''कृताद्रिवेदा दिव्याब्दा शतघ्ना वेधसो गता:''। अत: सृष्ट्यन्त और कल्पान्त दोनों ही काल की एक महत्तम इकाई के पर्याय है। इसी प्रकार स्थूल काल की लघुतम इकाई प्राण तथा सूक्ष्म काल की लघु इकाई त्रुटि कही गई है। यहॉ प्राणादि मूर्त्त काल का विवेचन करते है।

ज्योतिषोक्त मूर्त्तकाल (भारतीय काल) एवं पाश्चात्य काल में साम्यता –

मूर्त्तकाल (भारतीय काल:)		**पाश्चात्य काल**
1 प्राण (असु) = 10 दीर्घाक्षरोच्चारणकाल = 10 विपल	=	4 सेकेण्ड
1 पल (विघटी) = 6 प्राण = 60 विपल	=	24 सेकेण्ड = 2/5 मिनट
ढाई पल	=	1 मिनट
1 विपल = 1 दीर्घाक्षरोच्चारण काल = प्राण / 10	=	2/5 सेकेण्ड
1 नाडी (घटी) = 60 पल = 1 दण्ड	=	24 मिनट
1 नाक्षत्र अहोरात्र = 60 नाडी = 60 दण्ड	=	24 घण्टा
ढाई नाडी = 5/2 दण्ड	=	1 घण्टा
1 मास = 30 अहोरात्र	=	1 मन्थ
1 वर्ष = 12 मास	=	1 इयर

ज्योतिष शास्त्र में काल के दो भेद किये गये है – 1. प्राणियों का अन्त कर्त्ता (महाकाल) और 2.गणनात्मक काल (जिस काल की गणना की जाती है)। गणनात्मक काल के भी दो भेद किये गये हैं – 1. स्थूल काल और 2. सूक्ष्म काल।

स्थूल काल को ही मूर्त्त काल भी कहते है। यथा सूर्यसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में कहा गया है –

प्राणादि: कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञक:।

षडभि: प्राणैर्विनाडी स्यात् तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता।।

नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम्।

तत् त्रिंशता भवेन्मास: सावनोऽर्कोदयैस्तथा।।

प्राणादि काल को मूर्त्तकाल कहा गया है। जिस काल की गणना पद्धति में सबसे छोटी इकाई प्राण हो वह प्राणादि काल है। प्राण का पर्याय असु है। जैसे –

1 प्राण = स्वस्थ व्यक्ति के श्वॅास लेने एवं छोड़ने का समय = दस दीर्घ उच्चारण काल =10 विपल = 4 सेकेण्ड।

या 1 प्राण = 10 विपल = 4 सेकेण्ड

6 प्राण = 10 × 6 = 60 विपल = 24 सेकेण्ड = 1 पल

1 पल (6 प्राण) = 60 विपल = 24 सेकेण्ड

ढाई पल = 1 मिनट

1 विपल = 1 दीर्घ अक्षर का उच्चारण काल = प्राण / 10 = 4 / 10 से ट 2/5 सेकेण्ड

60 पल = 1 नाड़ी = 1 दण्ड या एक घटी = 24 मिनट

नाड़ी, दण्ड, घटी ये तीनों समान काल का ही बोध कराते हैं।

60 घटी = 60 नाड़ी = 60 दण्ड = 24 घण्टा = 1 नाक्षत्र अहोरात्र

ढाई घटी = 5 घटी = 1 घण्टा

30 अहोरात्र = 1 मास

12 मास = 1 वर्ष

उपरिलिखित काल मान स्थूल कालगणना पद्धति के है।

आचार्य भास्कराचार्य जी ने भी सिद्धान्तशिरोमणि में कालभाग के विभाग की कल्पना करते हुये लिखा है कि –

योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खरामभाग: स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता।

त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा तत्त्रिंशता सद्गणकै: कालोत्ता।।

त्रिंशत्कलार्क्षी घटिका क्षण: स्यान्नाडीद्वयं तै खगुणैर्दिनं च।

गुर्वक्षरै: खेन्दुमितैरसुस्तै: षडभि: पलं तैर्घटिका खषडभि:।।

स्याद्वा घटीषष्टिरह: खरामैर्मासो दिनैस्तैर्द्विकुभिश्च वर्षम्।

क्षेत्रे समाद्येन समा विभागाः स्युश्चक्रराश्यंशकलाविलिप्ता। ।।

आचार्य ने इस श्लोक में कालविभाग को परिभाषित किया है। पलक झपकने में जितना समय लगता है उसको एक निमेष कहते हैं। एक निमेष का तीसवॉ भाग तत्पर होता है। तत्पर के शतांश को त्रुटि कहते हैं। 18 निमेष का एक काष्ठ होता है। 30 काष्ठ की एक कला होती है। 30 कला की एक घटी होती है । दो घटी का एक मूहूर्त्त होता है। 30 क्षण का एक दिन होता है।

इसके पश्चात् प्रकारान्तर से दिनादि को परिभाषित किया है। दस गुरू दीर्घ अक्षरों के उच्चारण का समय एक असु (प्राण) होता है। जिस अक्षर के विसर्ग के अंत में अनुस्वर लग जावे उसे दीर्घ अक्षर कहते हैं अर्थात् एक मात्रा का लघु तथा दो मात्रा का अक्षर गुरू कहलाता है। प्राण या असु वह होता है, जितने समय में कोई व्यक्ति एक स्वास–प्रश्वास लेता है । 6 असु का एक पल होता है और 60 पल की एक घटी तथा 60 घटी का एक दिन होता है। एक चक्र में 12 राशि , एक राशि में 30 अंश, एक अंश में 60 कला तथा एक कला में 60 विकला होता है।

सः स्थूलसूक्ष्मत्वात् द्विधा मूर्त अमूर्तश्च उच्यते।

सरलार्थ-

कलनात्मक (सखण्ड) काल, स्थूलसूक्ष्मत्वात् = स्थूल और सूक्ष्म रूप में होने के कारण, द्विधा = 2 प्रकार का होता है, जो क्रमशः, मूर्तश्चामूर्त उच्यते = 'मूर्त' और 'अमूर्त' इस नाम से कहा जाता है।

व्याख्या-

स्थूल को मूर्त कहा गया है। यद्यपि काल ऐसी वस्तु नहीं है जिसके स्वरूप का रेखांकन करना सम्भव हो। तथापि

यह काल खण्ड ऐसा है जिसकी मर्यादा (सीमा) का बोध सभी सामान्य लोगों को होता है। अतः अमुक काल खण्ड की सीमा कहॉ तक है एवं कब इसका अतिक्रमण हो रहा है? इन दोनों ही प्रश्नों का बोध जिस काल खण्ड के निमित्त (लिए) हो सके वही काल मूर्त है, स्थूल है। यथा- सेकेण्ड, मिनट घण्टा इत्यादि इन काल खण्डों की सीमाएं ज्ञात होने के कारण ये स्थूल या मूर्त कहलाती है एवं व्यवहार में इनका प्रयोग किया जाता है। प्राचीन गणकों ने 'प्राण' को स्थूलकाल की प्रथम इकाई माना। जैसे कि सूर्यसिद्धान्त में वर्णित है-

''प्राणादिः कथितो मूर्तः'' इति।।

अर्थात् मूर्त कालों (स्थूल कालों) में आदि = प्रथम इकाई 'प्राण' को, कथितः = कहा गया है।

बोध प्रश्न -

1.काल शब्द में कौन सा प्रत्यय है?

2.अन्तकृत काल क्या है?

3. कलनात्मक काल कितने प्रकार का होता है?

4. ढाई पल =?

5. ढाई नाड़ी =?

6. ज्योतिष के अनुसार काल के कितने भेद है?

7. 1 प्राण = ?

8. खगुणै: शब्द से तात्पर्य है।

9. 30 कला बराबर क्या होता है।

गणना हेतु ज्योतिषषास्त्र में काल के नवभेद बताये गये है। जो इस प्रकार हैं –

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।

सौरं च सावनं चान्द्रमर्क्षं मानानि वै नव।।

अर्थात् 1. ब्राह्म 2. दिव्य 3. पैत्र्य 4. प्राजापत्य 5. गौरव (गुरू सम्बन्धी) 6. सौर 7. सावन 8. चान्द्र तथा 9. नाक्षत्र ये नव मान कहे गये हैं। यद्यपि ये मान कालभेद के रूप में कहे गये हैं , किन्तु ये सभी मान मात्र मापक हैं। इन्हें कालमापक इकाईयों का भेद मानना चाहिये। जैसे किसी दीवार को मापने के लिये हम अंगुल और हस्त का भी प्रयोग कर सकते है। इंच और फुट का अथवा सेन्टीमीटर और मीटर का भी प्रयोग कर सकते हैं। माप्य दीवार एक ही है तथा मापक उपकरण भिन्न – भिन्न हैं। इसी प्रकार काल एक ही अनादि – अनन्त है। उसे मापने के लिये हम कभी सूर्य, कभी चन्द्र , कभी वृहस्पति आदि का उपयोग करते हैं। आचार्य भास्कर ने भी सिद्धान्त लक्षण में कहा है – ''त्रुट्यादि प्रलयान्त कालकलना मान: प्रभेद: क्रमात् '' त्रुटि से आरम्भ कर प्रलयान्त काल तक गणना तथा उनके मानों अर्थात् मापकों के भेदोंका विवेचन सिद्धान्त में किया जाता है। काल की गति के विषय में मतान्तर मिलते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि काल सीधी रेखा में गतिशील रहता है। कुछ विद्वानों का मत है कि काल भी चक्र भ्रमण करता है। इसीलिए इसे कालचक्र भी कहा जाता है। नेपाल और तिब्बत में कालज्योतिष नाम से ज्योतिष की एक प्रमुख विधा है। साहित्यकारों ने काल के चक्र भ्रमण को इंगित करते हुये लिखा है -

''चक्रारपंक्तिरिवगच्छति भाग्यपंक्ति: ।।''

कालमापन हेतु जिन नव मानों का उल्लेख किया गया है उनमें से चार कालमान हमारी दिनचर्या से

जुड़े हुये हैं। वे हैं सौर – चान्द्र - सावन और नाक्षत्र । जब हमे मास से अधिक काल की गणना करनी होती है तब हम सौर मान का प्रयोग करते हैं। सूर्य एक मास तक एक राशि में रहता है । 12 राशियों में भ्रमण करने में 12 मास अर्थात् एक वर्ष लगता है मास की गणना हम चान्द्रमास से करते है। दिन की गणना हम पृथ्वी के दिन अथवा सावन दिन से करते हैं दो सूर्योदय के मध्य का काल सावन दिन या पृथ्वी का दिन होता है। एक नक्षत्र के उदय काल से द्वितीय उदय काल तक नाक्षत्र काल होता है। इस काल की अवधि सुनिश्चित है। 60 घटी (ठीक 24 घण्टे) बाद यह परिभ्रमण कर पुन:उसी बिन्दु पर आ जाता है। इसलिए नाक्षत्र दिन का मान सदैव एक समान 24 घण्टे या 60 घटी का ही होता है। इसी स्थिर काल के आधार पर घण्टा मिनट का विचार किया जाता है या घटी पल आदि लघु काल खण्डों का विभाजन या गणना की जाती है। इस काल विभाजन व्यवस्था को आचार्य भास्कर ने अपनी प्रसिद्ध रचना सिद्धान्त शिरोमणि में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है -

वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्
मासांस्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात्।
यत्कृच्छसूतकचिकित्सितवासराद्यम्
तत् सावनाच्च घटिकादिकमार्क्षमानात्।।

घटयादि लघुकालखण्डों की गणना नाक्षत्र मान के अतिरिक्त अन्य सौरादि मानों से सम्भव नहीं हैं, उन मानों के प्रतिदिन न्यूनाधिक होने के कारण। नाक्षत्र काल में कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि इसका मान 60 घटी या 24 घण्टे का प्रतिदिन होता है। घटी यन्त्र द्वारा सूचित काल नाक्षत्र काल ही होता है, प्रतिदिन समान रूप होने के कारण। इस प्रकार आवश्यकतानुसार विभिन्न कालमानों का उपयोग होता रहा है तथा आज भी हो रहा है। दैनिक उपयोग में आने वाले कालमानों का विवरण इस प्रकार है –

काल के अवयव –

अमूर्त्त काल	**मूर्त काल**
पद्म पत्र भेदनकाल = 1 त्रुटि	6 विपल = 1 प्राण
60 त्रुटि = 1 रेणु	60 विपल = 1 पल
60 रेणु = 1 लव	60 पल = 1 घटी
60 लव = 1 लीक्षक	60 घटी = 1 अहोरात्र
60 लीक्षक = 1 प्राण	30 अरोरात्र = 1 मास

12 मास = 1वर्ष

घण्टा मिनट और घटी पल

24 सेकेण्ड = 60 विपल = 1 पल

24 मिनट = 60 पल = 1 घटी

24 घण्टा =60 घटी = 1 अहोरात्र

काल की बड़ी इकाई –

कृतयुग = 1728000 सौर वर्ष

त्रेतायुग = 1296000 सौर वर्ष

द्वापरयुग = 864000 सौर वर्ष

कलियुग = 432000 सौर वर्ष

महायुग = 4320000 सौर वर्ष

मनु = 306720000 सौर वर्ष

कल्प = 4320000000 सौर वर्ष

ब्राह्म अहोरात्र = 8640000000 सौर वर्ष

काल की इन बड़ी इकाइयों की गणना सौरमान से ही की गई है। इनके अतिरिक्त सूर्य सिद्धान्त में कहा गया है –

सौरेण द्युनिशोर्मानम् षडशीतिमुखानि च।
अयनं विषुवच्चैवं संक्रान्तेः पुण्यकालताम्॥

अर्थात् सौर अहोरात्रों के साथ – साथ षडशीतिमुख संक्रान्तियों के दिनों,अयनों एवं विषुव दिनों तथा संक्रान्तियों के पुण्य कालों का निर्णय भी सौरमान से ही करना चाहिये।

2.4 सारांश

ज्योतिष शास्त्र काल नियामक है। काल का बोध कराने से इसे 'कालशास्त्र' भी कहा जाता है। काल ज्ञान के अन्तर्गत प्राणादि मूर्त्तकाल से संबंधित यह इकाई है। व्यावहारिक रूप में इनका ज्ञान पाठकों को प्राप्त हो, इस हेतु प्रस्तुत इकाई में इसकी विवेचना की गई है। पंचांगों में भी प्राणादि मूर्त्त काल का विवरण हमें प्राप्त होता है, किन्तु इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विस्तारपूर्वक इनका अध्ययन किया जा सकता है।

ज्योतिषोक्त काल की यह इकाईयॉ सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत कही गयी है। आचार्यों ने ज्योतिष ज्ञान के अन्तर्गत काल ज्ञान में इनका उल्लेख किया है। मनुष्य के दैनिक जीवन में प्राणादि मूर्त्त काल

का क्या उपयोग है, तथा इसकी गणना किस प्रकार की जा सकती है, तत् सम्बन्धित विवरण इस इकाई में किया गया है। मूर्त्तकाल की गणना को हम कैसे समझ सकते है ? प्रस्तुत इकाई में कहा गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठक गण को तत् सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त हो जायेगा।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

अनिर्वचनीय - जिसे शब्दों में व्यक्त न किया जा सके

सृष्टिकर्त्ता – सृष्टि का निर्माण करने वाला

सृजति – सृजन करता है।

संहर्त्ता – संहार करने वाला

मूर्त्त – व्यावहारिक काल

अमूर्त्त – अव्यावहारिक काल

कृताद्रिवेदा – 474

असु – प्राण

महाकाल – सृष्टि का विनाश कर्त्ता

गणनात्मक – जिसकी गणना किया जा सके

खराम – 30

अतिक्रमण – उल्लंघन

प्रकारान्तर – दूसरे प्रकार से

शतांश – सौवॉ अंश

अर्क – रवि

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घञ् प्रत्यय
2. प्राणियों का संहार करने वाला
3. दो प्रकार के
4. 1 मिनट
5. 1 घण्टा
6. दो , प्रथम महाकाल द्वितीय गणनात्मक काल
7. 10 विपल

8. 30

9. एक घटी

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त

2. सिद्धान्तशिरोमणि

3. वृहज्ज्योतिसार

4. भारतीय ज्योतिष

5. भारतीय फलित ज्योतिष

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राणादि मूर्त्त काल को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये?

2. काल से आप क्या समझते है ? स्पष्ट कीजिये।

3. भारतीय काल एवं पाश्चात्य काल में क्या अन्तर है? वर्णन कीजिये।

इकाई – 3 सप्ताह, पक्ष, मास, अधिमास एवं क्षयमास

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 सप्ताह परिचय

3.3.1 पक्ष एवं मास

3.3.2 अधिमास एवं क्षयमास

बोध प्रश्न

3.4 सारांश

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7 सहायक पाठ्यसामग्री

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई खण्ड – 2 के तृतीय इकाई **''सप्ताह, पक्ष, मास, अधिमास एवं क्षयमास''** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आप ने त्रुट्यादि अमूर्त्त काल एवं प्राणादि मूर्त्तकाल का अध्ययन कर लिया है, अब इस इकाई में आप सप्ताह, पक्ष, मास, अधिमास एवं क्षयमास के बारे में अध्ययन करेगें।

ज्योतिष शास्त्र के मूलभूत ज्ञान के अन्तर्गत सप्ताह, पक्ष, मास अधिमास एवं क्षयमास का वर्णन प्रस्तुत इकाई में किया जा रहा है। वस्तुत: ये सभी सूर्य एवं चन्द्रमा पर आधारित है।

इस इकाई में पाठकगण उपर्युक्त विषयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन कर सकेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेगें कि –

- सप्ताह क्या है ?
- पक्ष एवं मास किसे कहते है।
- अधिमास क्या है।
- क्षयमास क्या है।
- सप्ताह, पक्ष, मास, अधिमास एवं क्षयमास का व्यावहारिक उपयोग क्या है।

3.3 सप्ताह परिचय

ज्योतिष शास्त्र में सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त का काल दिन कहलाता है। शास्त्रीय दृष्टि से भी सूर्य जब उदयक्षितिज से उपर उठ जाता है तो दिन और अस्तक्षितिज से नीचे चले जाने पर रात होती है। इस तरह के दिन – रात को मिलाकर अहोरात्र बनता है। सात अहोरात्र के बराबर एक सप्ताह होता है। सूर्यादि वार से लेकर शनि पर्यन्त सप्तवार को ही सप्ताह कहा जाता है। एक सप्ताह में सात दिन होते है। वे है –

तानि सप्त रवि सोमो मंगलश्च बुधस्तथा ।
वृहस्प्तिश्च शुक्रश्च शनिश्चैव यथाक्रमम् ।।

इन्हीं वारों को मिलाकर एक सप्ताह होता है।

3.3.1 पक्ष एवं मास

शुक्लपक्ष

चान्द्रमास के दो पक्षों में से शुक्लपक्ष प्रथम पक्ष होता है। इसमें पन्द्रह चान्द्र तिथियॉ होती है।

इस पक्ष में चन्द्र का शुक्ल भाग प्रतिदिन बढ़ता हुआ दिखाई देता है और पन्द्रहवीं तिथि पूर्णिमा का चन्द्रविम्ब पूर्ण हो जाता है।

कृष्णपक्ष –

शुक्लपक्ष के बाद पन्द्रह तिथियों तक कृष्ण पक्ष होता है। शुक्ल पक्ष की पूर्णमासी के बाद जो प्रतिपदा तिथि होती है उस तिथि से चन्द्रमा में शुक्लता का ह्रास होना प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार द्वितीया आदि तिथियों में शुक्लता क्रमश: घटती जाती है। पन्द्रहवीं तिथि में (अमावस्या तिथि में) चन्द्रविम्ब पूर्णत: शुक्लविहीन दिखलाई पड़ता है। अत: इन पूरे पन्द्रह तिथियों को **'कृष्णपक्ष'** कहा जाता है।

पक्ष को इस प्रकार से भी समझा जा सकता है -

पक्ष – जिस रात्रि में सूर्य और चन्द्रमा किसी राशि के एक ही अंश पर हो वह रात्रि अमावस्या कहलताती है। उस रात्रि में अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है, क्योंकि सूर्य के समक्ष चन्द्र - प्रकाश नगण्य होता है। फिर अमावस्या से निरन्तर बढ़ती हुई चन्द्र – सूर्य की परस्पर दूरी जिस दिन 180 अंश परिमित हो जाती है, उस दिन रात्रि को पूर्ण चन्द्र दृष्टिगोचर होता है और वह रात्रि पूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध है। अत: अमावस्या से पूर्णिमा तक का यह 15 दिनात्मक प्रकाशमान मध्यान्तर शुक्लपक्ष कहलाता है। तद्वत ही पूर्णिमा से अमावस्या तक का काल कृष्णपक्ष कहलाता है।

शुक्लपक्ष प्रधान होने से देवकर्मो में तथा कृष्णपक्ष पितराधिष्ठित होने के कारण पितृकर्मों में विहित है। अर्थात् शुक्लपक्ष में सर्व शुभकार्य तथा कृष्णपक्ष में पितृकार्य प्रशस्त हैं। यथा –

य देवा पूर्यतेऽर्द्धमास स देवा, योऽपक्षीयते स पितर: ॥

(शतपथ ब्राह्मण)

प्राय: एक पक्ष 15 दिन का होता है और कभी–कभी तिथि क्षय वृद्धि के कारण न्यूनाधिक भी हो सकता है। परन्तु एक ही पक्ष में दो बार तिथि क्षय हो जाने से 13 दिनात्मक पक्ष समस्त कर्मों में वर्जनीय है यथा –

पक्षस्य मध्ये द्वितिथि पतेतां तदा भवेद्रौरवकालयोग:।
पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टकमित्याहुराचार्यवरा: समस्ता:।।

(ज्योतिर्निबन्ध)

प्रत्येक चान्द्रमास में अमावस्या से पूर्णिमा तक शुक्ल पक्ष या सुदी या पूर्णिमा से अमावस्या तक कृष्णपक्ष या बदी कहलाता है। सूर्य एवं चन्द्रमा की युति अमावस्या कहलाती है। इसी प्रकार सूर्य व चन्द्रमा में 12^0 - 12^0 का अन्तर बढ़ने या घटने पर क्रमश: प्रतिपदा, द्वितीया, आदि तिथियॉं व 168^0

– 180^0 अंश के अन्तर पर पूर्णिमा व ($348^0 – 0^0$) अन्तर पर अमावस्या होती है। पक्षों की संख्या 2 है। प्रथम शुक्लपक्ष, द्वितीय कृष्णपक्ष। शुक्ल का अर्थ श्वेत एवं कृष्ण का अर्थ काला होता है। अर्थात् शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की एक – एक कला बढ़कर अन्त में पूर्णरूपेण दिखलाई देता है, तथा कृष्णपक्ष में एक – एक कला घटकर अन्त में दृश्यहीन होता हो जाता है। दृश्य अवस्था शुक्लपक्ष के अन्त में व अदृश्य अवस्था कृष्णपक्ष के अन्त में होती है।

यथा –

मासे शुक्लश्च कृष्णश्च द्वौ पक्षौ परिकीर्तितौ।
सायं यत्रोदितश्चन्द्रः स शुक्लोऽन्यस्तु कृष्णकः ॥

प्रतिमास दो पक्ष होते है। जिसमें सायंकाल से ही चन्द्रमा दृष्टगत होते हैं वह **शुक्ल** और दूसरा **कृष्णपक्ष** कहलाता है।

पक्ष फल –

यदि किसी जातक का जन्म समय **शुक्ल पक्ष** में हो तो वह मनुष्य चंचल, बहुत सुशील, स्त्री पुत्रयुक्त सुन्दर व
कोमल शरीर, बहुत काल जीवन धारण करनेवाला और सदैव परम आनन्द से समय व्यतीत करने वाला होता है।

यदि किसी जातक का जन्म **कृष्ण पक्ष** में हो तो निर्बल शरीर वाला, प्रतापयुक्त, चंचल स्वभाव वाला, शोर मचाने वाला, कुल के विरूद्ध चलनेवाला और अत्यन्त कामी होता है।

मास -

काल की विभिन्न इकाईयों के विभिन्न नाम हैं। अत्यन्त सूक्ष्म काल से लेकर महत्तम काल (कल्प) तक के विभिन्न खण्डों को विभिन्न नामों से जाना जाता है। जिसमें मास, ऋतु , अयन , वर्ष आदि सर्वविदित है। काल की एक इकाई का नाम मास है जो सामान्यतया 30 दिनों का होता है। प्रायोगिक रूप से मास मुख्यत: चार प्रकार के होते है –

1.सौरमास 2. चान्द्र मास 3. नाक्षत्र मास 4. सावन मास

सौरमास – सूर्य का एक राशि भोग काल अर्थात् एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति पर्यन्त तक का काल सौर मास कहलाता है। उसमें 30 सौर दिन होते है।

सौर दिन – सूर्य का 1 अंश भोगकाल = 1 सौर दिन कहलाता है। अत: 30 अंश भोगकाल = 30 सौर दिन = 1 राशिभोगकाल = 1 सौर मास।

संक्रान्ति – मेष आदि बारह राशियॉ राशिचक्र में पूर्व – पूर्वक्रम से स्थित हैं। इनका आरम्भ स्थान

मेष राशि है। सूर्य के एक राशि से दूसरी राशि में संक्रमण करने को संक्रान्ति कहते हैं। यह काल स्नान दानादि के लिये महत्वपूर्ण माना गया है। अर्थात सूर्य जिस दिन मेष राशि में प्रवेश करता है उसे मेष की संक्रान्ति कहते हैं। इसी तरह सूर्य का वृष राशि में प्रवेश करना वृष की संक्रान्ति तथा मीन राशि में प्रवेश करना मीन की संक्रान्ति कही जाती है अर्थात बारह राशियों में सूर्य जब – जब प्रवेश किया करता है तब – तब संक्रान्ति हुआ करती है। इस प्रकार वर्ष में बारह संक्रान्तियॉ होती है

चान्द्र मास

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से कृष्णपक्ष की अमावस्या तक तीस तिथियों का एक चान्द्र मास होता है। इसीलिये पंचांगों में शुक्लप्रतिपदा की संख्या 1 लिखी जाती है और अमावस्या की तीस। एक चान्द्रमास 29 दिन , 8 घण्टे , 44 मिनट , ढाई सेकेण्ड का होता है।

चान्द्रमास की दो व्यवस्थाएॅ देखी जा रही है – शुक्लादि और कृष्णादि। शुक्लादि चान्द्रमास को अमान्तमास भी कहते हैं। कृष्णादिचान्द्रमास को पूर्णिमान्त चान्द्रमास कहते हैं। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर अमावस्या पर्यन्त तीस तिथियों की जो मास व्यवस्था है उसे ही शुक्लादि चान्द्रमास कहा गया है। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से शुक्लपक्ष की पूर्णिमा तक तीस तिथियों की जो मास व्यवस्था है उसे कृष्णादि चान्द्र मास कहा गया है।

यद्यपि काशी आदि उत्तर के पंचांगों में, शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से संवत्सर का आरम्भ माना जाता है तथापि मासव्यवस्था में सामान्यतया पहला पक्ष कृष्ण पक्ष ही माना जाता है। दूसरे पक्ष के रूप में शुक्ल पक्ष को तथा पूर्णिमा में मास का अन्त होता है। यही कारण है कि उत्तर प्रान्तों में कार्तिक आदि पुण्यमासों में प्रात: स्नान, गंगा – स्नान आदि की व्यवस्था भी इसी (कृष्णादि) क्रम में दी जाती है। इस तरह स्पष्ट है कि उत्तर भारत में व्यवहार में कृष्णादि चान्द्रमास की ही मान्यता दी गई है। कुछ प्रदेशों में शुक्लादि और कुछ में कृष्णादि मास प्रचलित है। इनमें कोई भेद नहीं है।

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से कृष्णपक्ष की अमावस्या पर्यन्त तीस तिथियों का चान्द्र मास शुक्लादि चान्द्र मास कहलाता है। पौर्णमासी मास की मध्यतिथि है और अमावस्या 30 वीं तिथि है। यह शुक्लादि मास मानने से ही सम्भव है। दक्षिण भारत में मुख्यत: शुक्लादि मास ही माने जाते है।

चान्द्र वर्ष में शुक्ल प्रतिपदा से एवं सौरवर्ष में मेष संक्रान्ति से निम्नांकित चैत्रादि 12 मास प्रारम्भ होते हैं - चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक मार्गशीर्ष, पौष, माघ व फाल्गुन।

इन मासों के नाम पूर्णिमा को पड़ने वाले नक्षत्र के आधार पर रखे गये हैं। चित्रा से चैत्र, विशाखा से वैशाख आदि। सूर्यसिद्धान्त में बताया गया है कि चैत्रादि मासों में कार्तिक आदि मास कृत्तिका व

रोहिणी दोनों नक्षत्रों से युक्त होते हैं। आश्विन, भाद्रपद व फाल्गुन मास तीन – तीन नक्षत्रों से युक्त होते हैं। चैत्र – चित्रा स्वाती, वैशाख – विशाखा अनुराधा, ज्येष्ठ – ज्येष्ठा व मूल, आषाढ़ – पूर्वोत्तराषाढ़, श्रावण – श्रवण धनिष्ठा, भाद्रपद – शतभिषा व पूर्वोत्तरभाद्रपद, आश्विन – रेवती अश्विनी भरणी, कार्तिक – कृत्तिका रोहिणी, मार्गशीर्ष – मृगशिरा आर्द्रा, पौष – पुनर्वसु पुष्य, माघ – आश्लेषा मघा, फाल्गुन – पूर्वोत्तरा फाल्गुनी, हस्त।

बोध प्रश्न –

1.वारों की संख्या होती है।

क. 5 ख. 6 ग. 7 घ. 8

2. पक्ष होते हैं -

क. 3 ख. 2 ग. 4 घ. 5

3. सात दिनों को मिलाकर .... होता है ?

क. वार ख. सप्ताह ग. पक्ष घ. मास

4.तिथियों की संख्या होती है।

क. 10 ख. 15 ग. 20 घ. 25

5. 1 तिथि = ?

क. 10° ख. 12° ग. 20° घ. 25°

6. प्रायोगिक रूप से मास कितने प्रकार के होते है।

क. 6 ख. 8 ग. 4 घ. 10

7. चित्रा नक्षत्र से किस मास का नामकरण हुआ है -

क. विशाखा ख. चैत्र ग. मार्गशीर्ष घ. फाल्गुन

8. शुक्लादि चान्द्रमास को भी कहते है -

क. पूर्णिमान्त मास ख. अमान्त मास ग. क्षौरमास घ. अधिमास

9. पंचांग का आरम्भ होता है -

क. कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि से ख. शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से ग. श्रावण की प्रतिपदा से घ. कोई नहीं

नाक्षत्रमास –

प्रवहवयु के प्रभाव से पूर्व क्षितिज से नक्षत्र चलकर जितने समय में पुन: पूर्व क्षितिज में आता है उस काल को नाक्षत्र दिन कहा जाता है। इस प्रकार के 30 दिनों से एक नाक्षत्र मास होता है। नाक्षत्र दिन

60 घटी का होता है।

सावन मास –

'इनोद्वय द्वयान्तरं तदर्क सावनं दिनम्' । एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के अन्तर्वर्ती काल को सावन दिन कहते है इस तरह के 30 दिन का एक सावन मास होता है।

सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन ये सभी ज्योतिष शास्त्र के प्रसिद्ध नवविधकालमान के अन्तर्गत आते है। इनको इस प्रकार भी समझा जा सकता है -

क. **सौरमास** - यह सूर्य संक्रमण से सम्बन्धित है। मेषादि बारह राशियों पर सूर्य के गमनानुसार ही मेषादिसंज्ञक द्वादश सौरमासों का गठन किया गया है। एक सौरमास लगभग 30 दिन और 10 घण्टे का होता है। विवाह उपनयनादि षोडश संस्कार, यज्ञ, एकोदिष्ट श्राद्ध, ऋण का दानादान, एवं ग्रह – चारादि अन्योन्यविषयक कालों का विचार सौरमास में करना चाहिये।

ख. **चान्द्रमास** – जिस प्रकार सौरमास का सम्बन्ध सूर्य से है तद्वत् चान्द्र मास का चन्द्रमा से। अमावस्या के पश्चात् शुक्ल प्रतिपदा को चन्द्र किसी नक्षत्र विशेष में प्रवेश करके प्रतिदिन एक – एक कला के परिमाण से बढ़ता हुआ पूर्णिमा को पूर्ण चन्द्र के रूप में दृष्टिगोचर होता है। पुन: कृष्ण प्रतिपदा से क्रमश: अल्प शुक्ल होता हुआ चन्द्रमा अमावस्या को पूर्णान्धकाररूपी मृतावस्था को प्राप्त हो जाता है।

अत: एक मत के द्वारा शुक्ल प्रतिपदा से अमावस्या तक अन्यतर मतानुसारेण कृष्ण प्रतिपदा से पूर्णिमा तक का समय चान्द्रमास कहा गया है। यद्यपि शुक्ल पक्षादि मास मुख्य तथा कृष्णपक्षादि गौण है, तथापि देश – भेद के अनुसार दोनों प्रकारों से चान्द्रमासों की प्रवृत्ति को ग्रहण किया जाता है प्रत्येक चान्द्रमास प्राय: 29 दिन और 22 घण्टे का होता है। चैत्रादि विभिन्न चान्द्रमासों की संज्ञायें पूर्णिमा को चन्द्र द्वारा संक्रमित नक्षत्र संज्ञा पर आधारित है। चैत्रादि मास और पूर्णिमा स्थित नक्षत्रों का सम्बन्ध चक्र से ज्ञातव्य है –

चैत्र	**वै.**	**ज्ये.**	**आ.**	**श्रा.**	**भा.**	**आ.**	**का.**	**मार्ग.**	**पौ.**	**मा.**	**फा.**	**मास**
चि.	विशा.	ज्ये.	पू.षा.	श्र.	शत.	रे.	कृ.	मृ.	पुन.	श्ले.	पू. फा.	**नक्षत्र**
स्वा.	अनु.	मू.	उ.षा.	धनि.	पू.भा. उ.भा.	अ. भ.	रो.	आ.	पुष्य	मघा	उ. फा. हस्त	**नक्षत्र**

पार्वण – अष्टका – वार्षिक – श्राद्ध , व्रतोपवास, यज्ञादि तथा तिथिविषयक अशेष कर्मों के सम्पादन में चान्द्रमास को ही प्रधानता देना युक्तिसंगत है।

सावनमास – एक अहोरात्र में 24 घण्टे या 60 घटी मानकर 30 दिन का एक सावन मास होता है। मनुष्य की अवस्था, उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति – विभाजन, स्त्रीगर्भ की वृद्धि तथा प्रायश्चितादि कर्मों में सावनमास का ही विचार करना चाहिये।

ग. **नाक्षत्रमास** – चन्द्रमा के द्वारा 27 नक्षत्रों के भ्रमण को सम्पूर्ण करने में आवश्यक समयावधि को एक नाक्षत्रमास कहा गया है। नाक्षत्रमास का उपयोग जलपूजन, नक्षत्रशान्ति, यज्ञ विशेष तथा गणितादि में किया जाना चाहिये।

3.3.2 अधिक व क्षय मास –

पंचांगों में मासों की गणना चान्द्रमास से व वर्ष की गणना सौरमास से की जाती है। 12 चान्द्रमासों का वर्ष सौर वर्ष से लगभग 10 दिन के लगभग छोटा होता है। प्राय: प्रति तीन वर्ष में जब यह अन्तर एक चान्द्रमास के बराबर हो जाता है तो सौर वर्ष में 13 चान्द्रमास हो होते हैं। तेरहवॉं मास अधिकमास या अधिमास या मलिम्लुच मास या पुरूषोत्तम मास कहलाता है। सैद्धान्तिक रूप से जिस चान्द्र मास में सूर्य की संक्रान्ति न हो वह **अधिक मास** या **मलमास** कहलाता है। जैसा कि आचार्य भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि में निरूपित किया है –

असंक्रान्तिमासोऽधिमास स्फुटं स्यात्।
द्विसंक्रान्तिमासो क्षयाख्य: कदाचित्॥
क्षय: कार्तिकादित्रय नाऽन्यत् स्यात्।
तदावर्ष मध्येऽधि मासं द्वयं च॥

इसके विपरीत यदि किसी एक चान्द्रमास में दो संक्रान्तियॉं पड़ जायें तो वह क्षयमास या घटा हुआ मास होता है। सिद्धान्तशिरोमणि के अनुसार क्षय मास कार्तिक आदि तीन मासों में ही पड़ता है। जिस वर्ष में क्षय मास होता है, उस वर्ष दो अधिमास भी होते हैं। ये अधिमास क्षय मास से तीन मास पहले व बाद में होते हैं। प्राय: 19 वर्ष बाद क्षय मास सम्भावित होता है।

अधिक मास प्राय: फाल्गुनादि आठ मास अर्थात् आश्विन तक होते हैं। कार्तिक मास क्षय व अधिक दोनों हो सकता है और माघ मास क्षयाधिक नहीं होता।

वृहज्ज्यौतिसार ग्रन्थ में लिखा है –

मेषादिराशिगे सूर्ये यो यो मास: प्रपूर्यते।
राशीनां द्वादशत्वात् ते चैत्राद्या द्वादश स्मृता:॥

अर्थात् मेषादि 12 राशियों में सूर्य के रहने से जिस जिस मास की पूर्ति होती है, वे चैत्र आदि नाम से 12 चान्द्रमास होते है।

मासाश्चैत्रश्च वैशाखो ज्येष्ठश्चाषाढ एव च ।

श्रावणो भाद्रपात् तद्व – दाश्विन: कार्तिकस्तथा ।।

मार्गशीर्षोऽथ पौषश्च माघसंज्ञश्च फाल्गुन: ।

विशेष – सौर वर्ष का मान 365 दिन, 15 घटी, 31 पल तथा 30 विपल है एवं चान्द्र वर्ष मान 354 दिन, 22 घटी, 1 पल और 23 विपल है। अत: स्पष्ट है कि चान्द्र वर्ष सौर वर्ष से 10 दिन, 53 घटी, 30 पल और 7 विपल कम है। इस क्षति पूर्ति और दोनों मानों के सामंजस्य के उद्देश्य से प्रत्येक तीसरे वर्ष अधिक – चान्द्रमास तथा एक बार 141 वर्षो के बाद तथा दूसरी बार 19 वर्षों के बाद क्षय – चान्द्रमास की व्यवस्था की गई है।

सूर्य –चन्द्रमा की प्रथम युति से अग्रिम युति पर्यन्त एक चान्द्रमास होता है। सूर्य का एक राशिभोग एक सौरमास होता है। आकाश में चन्द्रमा की प्रथम पूर्णता से द्वितीय पूर्णता पर्यन्त प्रत्यक्ष दिखने वाला एक चान्द्रमास सम्पन्न होता है। अत: भारतीय पंचांग में अमान्तमास, पूर्णान्तमास एवं सौरमास तीन प्रकार से 12 मास एक सौरवर्ष में सम्पन्न होते है। चान्द्रमास में 30 तिथियॉ होती हैं। 30 वीं तिथि अमावस्या कहलती है , तथा 15 वीं तिथि पूर्णिमा कहलाती है। आचार्य भास्कराचार्य जी ने 'सिद्धान्तशिरोमणि' के काल विभाग परिभाषा में सौरादि के मान बतलाते हुये कहा है कि –

रवेश्चक्रभोगोऽर्कवर्षं प्रदिष्टं द्युरात्रं च देवासुराणां तदेव ।

रवीन्द्वोर्युते : संयुतिर्यावदन्या विधोर्मास एतच्च पैत्रं द्युरात्रम् ।।

इनोद्वयद्वयान्तरं तदर्कसावनं दिनम् ।

तदेव मेदिनीदिनं भवासरस्तु भभ्रम: ।।

सूर्यसिद्धान्त में भी –

ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत् संक्रान्त्या सौर उच्यते ।

मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते ।।

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ।

तत्षष्टि: षड्गुणा दिव्यं वर्षमासुरमेव च ।।

उदयादुदयं भानोर्भूमिसावनवासर: ।।

मासों के नाम सम्बन्धित चक्र –

नक्षत्र	हिन्दू मास	अंग्रेजी मास	मुसलमानी मास
चित्रा	चैत्र	अप्रैल	रविलाखर
विशाखा	वैशाख	मई	जमादिलावल

ज्येष्ठा	ज्येष्ठ	जून	जमादिलाखर
पूर्वाषाढ़ा	आषाढ़	जुलाई	रज्जब
श्रवण	श्रावण	अगस्त	साबान
पूर्वाभाद्रपद	भाद्रपद	सितम्बर	रमजान
अश्विनी	अश्विन	अक्टूबर	सव्वाल
कृत्तिका	कार्तिक	नवम्बर	जिल्काद
मृगशिरा	मार्गशीर्ष	दिसम्बर	जिल्हेज
पुष्य	पौष	जनवरी	मोहर्रम
मघा	माघ	फरवरी	सप्फर
पूर्वाफाल्गुनी	फाल्गुन	मार्च	रविलावल

मलमास में कृत्य एवं अकृत्य कार्य - सन्ध्या, अग्निहोत्र, पूजनादि नित्यकर्म, गर्भाधान, जातकर्म, सीमन्त, पुंसवनादि संस्कार, रोगशान्ति, अलभ्य योग में श्राद्ध, द्वादशाह सपिण्डीकरण, मन्वादि तिथियों का दान, दैनिक दान, यव - तिल – गो – भूमि तथा स्वर्णादि दान अतिथि सत्कार, विधिवत् स्नान, प्रथम वार्षिक श्राद्ध, मासिक

श्राद्ध एवं राजसेवा विषयक कर्म, मलमास में शास्त्र सम्मत है।

परन्तु, अनित्य व अनैमित्तिक कार्य, द्वितीय वार्षिक श्राद्ध, तुलापुरूष - कन्यादान – गजदानादि अन्योन्य षोडश महादान, अग्न्याधान, यज्ञ, अपूर्व तीर्थयात्रा, अपूर्व देवता के दर्शन, वाटिका – देव – कुँआ- तालाब – बावड़ी आदि के निर्माण और प्रतिष्ठा, नामकरण – उपनयन – चौलकर्म – अन्नप्राशनादि संस्कार विशेष, राज्याभिषेक, सकामना वृषोत्सर्ग, बालक का प्रथम निष्क्रमण, व्रतारम्भ, व्रतोद्यापन, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, विवाह, देवता का महोत्सव, कर्मानुष्ठानादि काम्यकर्म, पाप प्रायश्चित, प्रथम उपाकर्म व उत्सर्ग, हेमन्तऋतु का अवरोह, सर्पबलि, अष्टकाश्राद्ध, ईशान देवता की बलि, वधूप्रवेश, दुर्गा – इन्द्र का स्थापना और उत्थान, देवतादि की शपथ ग्रहण करना, विशेष परिवर्तन, विष्णु शयन और कमनीय यात्रा का मलमास में निषेध है।

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठकगण पक्ष, मास, अधिमास एवं क्षयमास का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। वस्तुत: ये सभी काल के अंग है। काल के मूर्त्त रूप के अन्तर्गत ये सभी इकाई आते है। मूर्त्त काल को समझने के लिये आपको इन तत्वों का ज्ञान करना होगा। पक्ष, मास, अधिमास एवं क्षयमास ये सभी मूलभूत तत्व है, पंचांगों में भी इनका उल्लेख मिलता है। प्रतिदिन की गणना करते हुये पंचांगकार तिथियों से पक्ष, पक्ष से मास, मासों में अधिमास एवं क्षयमास का उल्लेख करते है।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

राशि – नक्षत्र के नौ चरण समूह को राशि कहते है। ये बारह होते है। मेषादि से मीन पर्यन्त।

सौर – सूर्य से सम्बन्धित

शुक्लपक्ष – जिस पक्ष में चन्द्रमा का शुक्ल भाग बढ़ते क्रम में होता है उसे शुक्ल पक्ष कहते है।

कृष्णपक्ष – जिस पक्ष में चन्द्रमा का कृष्ण भाग बढ़ते क्रम में होता है।

नाक्षत्रकाल - नियत समय के द्योतक काल को नाक्षत्र काल कहते है। जैसे – घटी, पल, विपल आदि अथवा घंटा, मिनट, सेकेण्ड नाक्षत्र काल है।

भगण — राशिमाला को भगण कहते है।

अमान्त – अमावस्या तिथि का अन्तिम क्षण

दर्श – अमावस्या का ही दूसरा नाम दर्श है।

संक्रमण – एक राशि से दूसरे राशि में सूर्य का प्रवेश करना संक्रमण कहलाता है।

नक्षत्र - आकाशीय पिण्डों में जो पिण्ड अपनी गति से नहीं चलते उन्हें नक्षत्र कहते है।

संक्रान्ति – एक राशि से दूसरे राशि में सूर्य के संक्रमण को संक्रान्ति कहते है।

ग्रह – जिन पिण्डों में अपनी स्वयं की गति होती है।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ख
3. ख
4. ख
5. ख
6. ग
7. ख
8. ख
9. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्य सिद्धान्त - चौखम्भा प्रकाशन
2. सिद्धान्तशिरोमणि – चौखम्भा प्रकाशन
3. भारतीय ज्योतिष – चौखम्भा प्रकाशन

4. ज्योतिष सर्वस्व – चौखम्भा प्रकाशन

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पक्ष एवं मास को परिभाषित करते हुये विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

2. अधिमास एवं क्षयमास से आप क्या समझते है, स्पष्ट कीजिये।

3. सैद्धान्तिक रीति से मासों की व्याख्या कीजिये।

इकाई – 4 ऋतु, अयन, गोल एवं वर्ष

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 ऋतु परिचय
4.3.1 अयन एवं गोल
4.3.2 वर्ष
बोध प्रश्न
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 सहायक पाठ्यसामग्री
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई द्वितीय खण्ड की चतुर्थ इकाई **''ऋतु, अयन, गोल एवं वर्ष ''** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आप ने सप्ताह,पक्ष,मास अधिमास एवं क्षयमास का अध्ययन कर लिया है, अब इस इकाई में आप ऋतु , अयन ,गोल एवं वर्ष के बारे में अध्ययन करेगें। ज्योतिष शास्त्र में सूर्य एवं चन्द्रमा ग्रह का अत्यधिक महत्व है। यह कहना अतिशयोक्ति नही होगी कि ज्योतिष शास्त्र का विशेष भाग सूर्य एवं चन्द्रमा पर ही आश्रित है। इसलिये ग्रहों में ये राजा कहे गये है , स्पष्ट है कि राजा के बिना राज्य का कोई अस्तित्व नहीं होता। इस इकाई का शीर्षक ऋतु, अयन, गोल एवं वर्ष ये सभी सूर्य और चन्द्रमा पर आश्रित है।

इस इकाई में पाठकगण उपर्युक्त विषयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन करके इसे समझने का प्रयास करेगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेगें कि –

- ❖ ऋतु क्या है?
- ❖ अयन एवं गोल किसे कहते है।
- ❖ वर्ष से क्या अभिप्राय है।
- ❖ ऋतु , अयन, गोल एवं वर्ष का व्यावहारिक रूप से क्या महत्व है।

4.3 ऋतु परिचय

वसन्त ऋतु से लेकर चैत्रादि मास को ही परिगणित किये जाते हैं। मधु और माधव को लेकर वसन्त ऋतु , शुक्र और शुचि को लेकर ग्रीष्म ऋतु , नभ और नभस्य को लेकर वर्षा ऋतु, इष और ऊर्ज को लेकर शरत् ऋतु, और सह और सहस्य को लेकर हेमन्त ऋतु , तथा तप और तपस्य को लेकर शिशिर ऋतु होती है। इन सभी वाक्यों में ऋतु शब्द में द्विवचन लगा है। ये सभी ऋतुओं के अवयव के अभिप्राय हैं। ये ऋतुयें क्रमानुसार आवर्तित होती हैं तथापि संवत्सर के उपक्रम के रूप में वसन्त को पहला ऋतु कहा गया है। ऋतुओं का मुख वसन्त है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में भी कहा है – 'मासानां मार्गशीर्षोऽस्मि ऋतुनां कुसुमाकर:'। यहॉ कुसुमाकर से तात्पर्य वसन्त से है। मनुवाक्यों में वसन्त से ऋतुओं का प्रारम्भ हुआ है। ये वसन्तादि ऋतु दो प्रकार की होती है – चान्द्र तथा सौर। चैत्रमास से लेकर चान्द्र ऋतु होती है। ''मधुश्च माधवश्च'' वाक्य से यह स्पष्ट है। यहॉ मधु प्रभृति शब्द चैत्र प्रभृति शब्दों का पर्याय है। विद्वान लोग चैत्रमास को मधु, वैशाख को माधव, ज्येष्ठमास

को शुक्र, आषाढ़ मास को शुचि, श्रावण मास को नभ, भाद्रपद मास को नभस्य, आश्विन मास को इष, कार्तिक मास को ऊर्ज, मार्गशीर्ष मास को सह, पौषमास को सहस्य, माघ मास को तप, फाल्गुन मास को तपस्य कहते हैं। आचार्य भास्कराचार्य जी ने भी सिद्धान्तशिरोमणि में यही कहा है।

चैत्र प्रभृति मासों को लेकर वसन्त प्रभृति ऋतुओं की प्रवृत्ति होती है। चन्द्रगति के अनुसार चैत्र प्रभृति मासों की प्रवृत्ति होने से उनको चन्द्र कहते हैं। सौर गति अनुसार मीन और मेष के सूर्य में वसन्त ऋतु , वृषभ - मिथुन के सूर्य में ग्रीष्म ऋतु , कर्क – सिंह के सूर्य में वर्षाऋतु, कन्या – तुला के सूर्य से शरद ऋतु , वृश्चिक – धनु के सूर्य में हेमन्त ऋतु होती है तथा कुम्भ – मकर में शिशिर ऋतु होती है।

ऋतु का सम्बन्ध सूर्य की गति से है। सूर्य क्रान्तिवृत्त में जैसे भ्रमण करता है वैसे ही ऋतुयें बदल पड़ती है। ऋतुओं की संख्या 6 है। प्रत्येक ऋतु दो मास के होते है। शरत्सम्पात व वसन्त सम्पात पर ही 6 ऋतुओं का प्रारम्भ निर्भर करता है। वसन्त सम्पात से वसन्त ऋतु, शरत्सम्पात से शरद ऋतु, सायन मकर से शिशिर ऋतु, सायन कर्क से वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है। अत: सायन मकर या उत्तरायण बिन्दु ही शिशिर ऋतु का प्रारम्भ है। क्रमश: 2 – 2 सौरमास की एक ऋतु होती है। अर्थात् सायन मकर – कुम्भ में शिशिर ऋतु, मीन मेष में वसन्त ऋतु , वृष – मिथुन में ग्रीष्म ऋतु, कर्क – सिंह में वर्षा ऋतु, कन्या - तुला में शरद ऋतु, वृश्चिक – धनु में हेमन्त ऋतु होती है।

यथा (श्लोक रूप में) –

मृगादिराशिद्वयभानुभोगात् षडऋतव: शिशिरो वसन्त:।
ग्रीष्मश्च वर्षाश्च शरच्च तदवत् हेमन्त नामा कथितोऽपि षष्ठ: ॥

अपि च –

ऋतव: षड् वसन्ताद्या मीनाद् द्विद्विभगे रवौ।
क्रमाद् वसन्तो ग्रीष्मश्च वर्षाश्चैव शरत् तथा ॥

इस प्रकार दो राशियों पर संक्रमण काल ऋतु कहलाता है। एक वर्ष में कुल 6 ऋतुयें होती है। सौर एवं चान्द्रमासों के अनुसार इन वसन्तादि ऋतुओं का स्पष्टार्थ चक्र –

वसन्त	**ग्रीष्म**	**वर्षा**	**शरद्**	**हेमन्त**	**शिशिर**	**ऋतु**
मीन, मेष	वृष, मिथुन	कर्क, सिंह	कन्या, तुला	वृश्चिक, धनु	मकर, कुम्भ	**सौरमास**
चैत्र	ज्येष्ठ	श्रावण	आश्विन	मार्गशीर्ष	माघ	**चान्द्र मास**
वैशाख	आषाढ़	भाद्रपद	कार्तिक	पौष	फाल्गुन	

यथा – **वसन्तश्चैत्रवैशाखो ज्येष्ठाषाढौ च ग्रीष्मकौ।**

मार्गपौषौ च हेमन्त: शिशिरो माघफाल्गुनौ ॥ - गोरक्षसंहिता

ऋतुओं का महत्व – वसन्तो ग्रीष्मो वर्षा। ते देवाऽऋतव: शरद्धेमन्त: शिशिरस्ते पितर: ॥

- शतपथ ब्राह्मण।

उपरोक्त आर्षवचनानुसार वसन्त, ग्रीष्म एवं वर्षादि तीन दैवी ऋतुयें हैं तथा शरद् , हेमन्त, और शिशिर, ये पितरों की ऋतुयें हैं। अत: इन ऋतुओं में यथोचित कर्म ही शुभ फल प्रदान करते हैं।

ऋतु फल –

वसन्त ऋतु जन्म फल – वसन्त ऋतु में जन्म लेने वाला मनुष्य सुन्दर रूपवाला, बुद्धिमान, प्रतापी, गणित, विद्या व संगीत – शास्त्र में प्रवीण, शास्त्रों का जानने वाला, प्रसन्नचित्त व निर्मल वस्त्र धारण करनेवाला होता है।

ग्रीष्म ऋतु जन्म फल – विद्या, धन – धान्य युक्त, ऐश्वर्यवान, वक्ता, भोगी, जल – विहार करने वाला होता है।

वर्षा ऋतु जन्म फल – बुद्धिमान, प्रतापी, संग्राम में धीर,घोड़े की सवारी में प्रीति रखने वाला, सुन्दर रूपवाला, कफ व वात प्रकृतिवाला व स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करने वाला और प्रसन्नचित्त होता है।

शरद् ऋतु जन्म फल – वात प्रकृति, अभिमानी, धनी, पवित्र शरीर वाला, रण में प्रसन्नचित्त, उत्तम वाहनवाला व क्रोधरहित होता है।

हेमन्त ऋतु – श्रेष्ठ गुण सम्पन्न, उत्तम कर्म, धर्म में प्रीति, चतुर, उदार, राजमन्त्री, सदा नम्र व मनस्वी स्वभाव का होता है।

शिशिर ऋतु - मिष्ठान्न भोजन प्रिय, क्रोधी, स्त्री – पुत्र से सुखी, अधिक बलवान और वेष में प्रीति करनेवाला होता है।

4.3.1 अयन व गोल

अयन का अर्थ है - चलना। सूर्य का क्रान्तिवृत्त की कर्कादि छ: राशियों में दक्षिण की ओर गमन दक्षिणायन है और सूर्य का मकरादि छ: राशियों में उत्तर की ओर गमन उत्तरायण कहलाता है। उत्तरायण प्राय: 14 जनवरी से आरम्भ होकर, 15 जुलाई के आसपास तक होता है। दक्षिणायन 16 जुलाई से लेकर 13 जनवरी तक होता है। उत्त्रायण में प्राय: सभी शुभ कार्यो का करना जैसे - देवालयों में देवताओं की प्राण प्रतिष्ठा, नये मकान में प्रवेश, विवाह, व्रतबन्ध, मन्त्र - तन्त्र सीखना सनातन धर्म वालों के लिये शुभ माना गया है। इन कार्यो के अतिरिक्त अन्य कार्य दक्षिणायन में किये जाते है। दक्षिणायन में मार्गशीर्ष मास में विवाह करना शुभ माना गया है। सूर्य और चन्द्रमा

उत्तरायन में बलवान होने के कारण मनुष्य का जन्म यदि इस अयन में हो तो उसे श्रेष्ठ फल मिलता है और सूर्य तथा चन्द्रमा दक्षिणायन में निर्बली होने के कारण उसे अनिष्ट फल मिलता है। उत्तरायन को देवताओं का दिन और दक्षिणायन को देवताओं की रात्रि कहते है।

वसन्त सम्पात से 90^0 आगे चलकर जब सूर्य दक्षिणायन बिन्दु पर पहॅुचता है तो दक्षिणायन प्रारम्भ होता है। यह प्राय: 21 जून को घटित होता है। इसी प्रकार दक्षिणायन बिन्दु से 90^0 आगे जाकर सूर्य शरत्सम्पात पर 23 सितम्बर के लगभग पहॅुचता है तो सर्दी की ऋतु आरम्भ हो जाती है। तत् पश्चात् 90^0 आगे जाकर उत्तरायण बिन्दु पर पहुँचता है तो सूर्य उत्तराभिमुख होकर चलने लगता है, अत: वही समय 22 दिसम्बर उत्तरायण का होता है। तत्पश्चात् 90^0 आगे चलकर पुन: वसन्त ऋतु के प्रारम्भ बिन्दु वसन्त सम्पात पर पहॅुच जाता है। यह सम्पूर्ण क्रान्तिवृत्त की परिक्रमा $90^0 \times 4 = 360^0$ अंशों या 12 राशियों की होती है। अत: ये चारों घटनायें प्रतिवर्ष होती है।

मकरादिषड्भस्थे सूर्ये सौम्यायनं स्मृतम्।
कर्कादिराशिषटके च याम्यायनमुदाहृतम्॥

मकरादि 6 राशि में सूर्य के रहने पर **सौम्यायन** और कर्कादि 6 राशि में **याम्यायन** कहलाता है।

वसन्त सम्पात व शरत्सम्पात वे बिन्दु हैं जो राशिवृत्त व विषुवद्वृत्त की काट पर स्थित हैं। ये दो है। अत: सूर्य वर्ष में दो बार 21 मार्च व 23 सितम्बर को विषुवद्वृत्त पर पहॅुचता है। ये दो दिन विषुव दिन या गोल दिन व इस दिन होने वाली सायन मेष व तुला संक्रान्ति **गोल** या **विषुवसंक्रान्ति** कहलाती हैं। **स्पष्ट है** कि सायन मेष से सायन तुला प्रवेश तक उत्तर गोल व सायन तुला से सायन मेषारम्भ पूर्व तक दक्षिण गोल होता है। इनकी तिथियॉं इस प्रकार हैं –

वसन्त सम्पात या सायन मेष – 21 मार्च या उत्तर गोलारम्भ।

सायन मेष + 90^0 = दक्षिणायनारम्भ (सायन कर्क अर्थात् 21 जून)

सायन कर्क + 90^0 = शरत्सम्पात या सायन तुला या दक्षिण गोलारम्भ या 23 सितम्बर।

सायन तुला + 90^0 = उत्तरायणारम्भ या सायन मकर या 22 दिसम्बर।

क्रान्तिवृत्त के प्रथमांश का विभाजन उत्तर व दक्षिण गोल के मध्यवर्ती ध्रुवों के द्वारा माना गया है। यही विभाजन उत्तरायण और दक्षिणायन कहलाता है। इन अयनों का ज्योतिष संसार में प्रमुख स्थान है।

बोध प्रश्न -

1. ऋतुओं की संख्या कितनी है।
2. सूर्य के एक राशि भोगकाल को क्या कहते है।

3. कुम्भ राशिस्थ सूर्य किस अयन में होता है।

4. अयन का अर्थ क्या होता है।

5. भाद्रपद मास का वैदिक नाम क्या है।

6. चन्द्रमा बढ़ते क्रम में किस पक्ष में होता है।

7. सौर वर्ष का प्रारम्भ कब होता है।

8. सूर्य और चन्द्रमा का संयोग कब होता है।

9. एक अयन कितने मासों का होता है।

10. उत्तरायण में सूर्य कब प्रवेश करता है।

उत्तरायण - इसे सौम्यायन भी कहा जाता है। उत्तरायण प्रवृत्ति सायनमकर के सूर्य अर्थात् 21-22 दिसम्बर से लेकर मिथुन के सूर्य 6 मास तक रहता है। साधारणतया लौकिकमतानुसार यह माघ से आषाढ़ पर्यन्त माना जाता है।

सौम्यायन सूर्य की कालावधि को देवताओं का दिन माना गया है एवं इस समय में सूर्य देवताओं का अधिपति होता है। शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ये तीन ऋतुयें, उत्तरायण सूर्य का संगठन करती हैं। इस अयन में नूतन गृहप्रवेश, दीक्षाग्रहण, देवता उद्यान – कुॅआ – बावड़ी – तालाब आदि की प्रतिष्ठा, विवाह – चूड़ाकरण तथा यज्ञोपवीत प्रभृति संस्कार एवं इतरेतर शुभ कर्म करना वांछनीय है।

विशेष – उत्तरायण – प्रवृत्ति के समय से 40 घटी पर्यन्त समय पुण्यकाल माना जाता है, जो सर्व शुभजनक कार्यों में वर्जित है।

दक्षिणायन – यह समय देवताओं की रात्रि माना गया है। सायन कर्क के सूर्य अथवा 21 -22 जून से 6 मास अर्थात् धनुराशिस्थ सायनसूर्य तक का मध्यान्तर दक्षिणायन संज्ञक है। दक्षिणायन में वर्षा, शरद् और हेमन्तादि ऋतु – त्रय की संगति होती है।

दक्षिणायन काल में सूर्य पितरों का अधिष्ठाता कहा गया है। अतएव इस काल में षोडश संस्कार तथा अन्य मांगलिक कार्यों के अतिरिक्त कर्म ही करणीय है। अत्यावश्कत्व में मातृ, भैरव, वराह, नृसिंह, त्रिविक्रम और देवी प्रभृति उग्र देवताओं के प्रतिष्ठापन में भी दोषापत्ति नहीं है।

अयन फल –

उत्तरायन में जन्म फल – उत्तरायन में जन्म लेने वाला मनुष्य सदा प्रसन्न चित्त, स्त्री पुत्रादि से अति सन्तोष व सुख पानेवाला, बहुत आयुष्यवाला, श्रेष्ठ आचार विचारवाला, उदार व धीरज वाला होता है।

दक्षिणायन में जन्म फल – दक्षिणायन में जन्म लेने वाला मनुष्य खेती करने वाला, पशुओं का पालन करने वाला, निष्ठुर मन वाला और किसी की बात न सहन करने वाला होता है।

विशेष – दक्षिणायन प्रवेश होन के समय से 16 घटी का समय पुण्यकाल के नाम से प्रसिद्ध है और वह सर्व शुभाशुभ कर्मों में विशेषतया त्याज्य है।

गोल –

सौम्यगोलश्च मेषाद्या: सायना राशयो हि षट्।

तुलाद्या राशयश्चैवं याम्यगोल: प्रकीर्तित:॥

सायन मेषादि 6 राशि सौम्यगोल और तुलादि 6 राशि दक्षिणगोल कहलाता है। जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है, उस दिन वह उत्तर गोल में रहता है, और तब से लेकर कन्यान्त तक यावत् अवस्था में बना रहता है, अर्थात् उत्तर गोल ही रहता है। तत्पश्चात् जब वह तुला राशि में प्रवेश करता है, तब दक्षिण गोल होता हैं, तब से लेकर मीनान्त पर्यन्त दक्षिण गोल रहता है।

विशेष - गोल सामान्यत: दो प्रकार के होते है – उत्तर गोल एवं दक्षिण गोल। ज्योतिष शास्त्र के तीन स्कन्ध है – सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। इन स्कन्धों में सिद्धान्त स्कन्ध में विस्तृत रूप से गोलाध्ययन किया जाता है। गोल के समस्त भाग, विभाग की चर्चा गोल स्कन्ध में की गई है। आचार्य भास्कराचार्य जी ने तो गोल के नाम से एक स्वतन्त्र अध्याय की ही चर्चा की है।

उन्होंने गोल की प्रशंसा करते हुये कहा है कि –

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च।

सभा न भातीव सुवकतृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथाऽत्र॥

अर्थ – यथा भोजन के सभी प्रकार उपलब्ध हो, और उसमें घी न हो, तथा बिना राजा का राज्य हो, सभा हो किन्तु उसमें कोई विद्वान न हो ये सभी बातें निरर्थक है। उसी प्रकार गोल से अनभिज्ञ गणक अर्थात् ज्योतिर्विद निरर्थक है। वह ज्योतिर्विद हो ही नहीं सकता। अत: ज्योतिषी को गोल का ज्ञान होना परमावश्यक है।

4.3.2 वर्ष

मास विवेचन क्रम में कहा गया है कि व्यवहार में चार प्रकार के मास प्रचलित हैं - सौर , चान्द्र, नाक्षत्र और सावन। इन चारों प्रकार के मासों से चार प्रकार का वर्ष भी होना स्वाभाविक है। परन्तु उपर्युक्त चार प्रकार के वर्षों में नाक्षत्र वर्ष का धर्मशास्त्र या व्यवहार में उपयोग नहीं होने के कारण शेष तीन (सौर, चान्द्र और सावन) वर्षों की ही लोक – व्यवहार में प्रसिद्धि है। इसके अतिरिक्त वार्हस्पत्य संवत्सर का भी सामूहिक रूप से सुभिक्ष आदि फल का विचार करने में उपयोग होता है।

सूर्यसिद्धान्त एवं सिद्धान्तशिरोमणि के अनुसार -

रवेश्चक्रभोगोऽर्कवर्षं प्रदिष्टं द्युरात्रं च देवासुराणां तदेव
रवीन्द्वोर्युते : संयुतिर्यावदन्या विधोर्मास एतच्च पैत्रं द्युरात्रम् ।।
इनोद्वयद्वयान्तरं तदर्कसावनं दिनम् ।
तदेव मेदिनीदिनं भवासरस्तु भभ्रम: ।।
ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत् संक्रान्त्या सौर उच्यते ।
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते ।।
सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ।
तत्षष्टि: षड्गुणा दिव्यं वर्षमासुरमेव च ।।

अर्थ - सूर्य जितने समय में मेषादि भचक्र में भ्रमण करते हुये अपने पूर्व स्थान पर एक बार वापस आता है उतने काल को रवि वर्ष या सौर वर्ष कहते है। उसका बारहवॉ भाग सौर मास होता है तथा मास के 30 वें भाग को सौर दिन कहते है। दिन का साठवॉ भाग एक घटी होता है तथा घटी के साठवें भाग को विघटि कहते हैं।

मनुष्य के एक सौर वर्ष के बराबर देवताओं तथा असुरों का एक अहोरात्र होता है लेकिन जब देवताओं का दिन होता है तब दैत्यों की रात्रि होती है। देवताओं का एक वर्ष 360 सौर वर्षो के तुल्य होता है।

सूर्य चन्द्र की एक बार युति के जिने काल के पश्चात् जब दूसरी बार युति होती है, उस काल को चान्द्रमास कहते हैं। सूर्य – चन्द्र की युति अमावस्या को होती है, अत: इसके बाद जब दूसरी बार सूर्य – चन्द्र की युति होती है तो उस काल को विधुमास अर्थात चान्द्रमास कहते है। इस प्रकार यह चान्द्रमास अमावस्या से आरंभ होकर दूसरी अमावस्या को समाप्त होती है।

एक चान्द्रमास पितरों का एक अहोरात्र होता है तथा सूर्य का एक बार उदय से दूसरी बार उदय होने के अन्तर काल को सूर्य का सावनदिन या कुदिन कहते है।

सौरवर्ष –

सूर्य एक अंश का भोग जितने समय में करता है उसे एक सौर दिन कहते है। इस प्रकार के 30 दिन का एक सौर मास होता है। 12 सौर मासों का एक सौर वर्ष होता है। अर्थात सूर्य की मेष संक्रान्ति में संक्रमण से सौर वर्ष का आरम्भ होता है और मीन के अन्त तक एक सौर वर्ष पूरा हो जाता है। इस सौर वर्ष में सावन मान से ३६५ दिन १५ घटी ३० पल २२ विपल एवं ३० प्रतिविपल होते हैं। अर्थात 365 दिन , 6 घण्टे , 12 मिनट , 9 सेकेण्ड होते है।

चान्द्र वर्ष

12 चान्द्र महीनों का एक चान्द्र वर्ष होता है। किन्तु सौर वर्ष में 12 – 13 चान्द्र मास होते है। चान्द्र वर्ष का प्रचलन मुख्यत: इस्लाम धर्म से है।

सावन वर्ष

मास विवेचनक्रम में आप जान चुके हैं कि 30 सावन दिन का एक सावन मास होता है। इसी मास की गणना से 12 सावन मासों का एक सावन वर्ष होता है। इस प्रकार 30 × 12 = 360 सावन दिनों का एक सावन वर्ष सिद्ध होता है।

वार्हस्पत्य वर्ष-

पृथ्वी पर सामूहिक रूप से सुभिक्ष और दुर्भिक्ष आदि फल का विचार वार्हस्पत्य संवत्सर (वर्ष) से होता है। यह

वार्हस्पत्य संवत्सर सूक्ष्म तौर पर 361 दिन 2 घटी 4 पल 45 विपल का होता है। इतने दिन के बाद वार्हस्पत्य संवत्सर आरंभ हो जाता है। विजय,जय आदि क्रमश: 60 संवत्सर होते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ से एक - एक विजय आदि संवत्सर होते है। यह क्रम 60 वर्षों तक चलता है। प्रत्येक साठ वर्षों के बाद पुन: विजय आदि साठ संवत्सर हुआ करते है। इन संवत्सरों के 60 नाम इस प्रकार से है –

गुरू की राशि	**मेषादि राशि में गुरू के रहने पर क्रमश: विजयादि 60 संवत्सरों के नाम**		
मेष	1.विजय	25. पिंगल	49. वृष
वृष	2. जय	26. कालयुक्त	50. चित्रभानु
मिथुन	3. मन्मथ	27. सिद्धार्थी	51. सुभानु
कर्क	4. दुर्मुख	28. रौद्र	52. तारण
सिंह	5. हेमलम्ब	29. दुर्मति	53.पार्थिव
कन्या	6. विलम्ब	30. दुन्दुभि	54. व्यय
तुला	7. विकारी	31. रूधिरोदगारी	55. सर्वजित
वृश्चिक	8. शर्वरी	32. रक्ताक्ष	56.सर्वधारी
धनु	9. प्लव	33. क्रोधन	57. विरोधी
मकर	10. शुभकृत्	34. क्षय	58. विकृत
कुम्भ	11. शोभन	35. प्रभव	59. खर
मीन	12. क्रोध	36. विभव	60. नन्दन
मेष	13. विश्वावसु	37. शुक्ल	

वृष	14. पराभव	38. प्रमोद	
मिथुन	15. प्लवंग	39. प्रजापति	
कर्क	16. कीलक	40. अंगिरा	
सिंह	17. सौम्य	41. श्रीमुख	
कन्या	18. साधारण	42.भव	
तुला	19. विरोधकृत्	43. युवा	
वृश्चिक	20.परिधावी	44.धाता	
धनु	21.प्रमादी	45.ईश्वर	
मकर	22.आनन्द	46.बहुधान्य	
कुम्भ	23.राक्षस	47.प्रमाथी	
मीन	24.नल	48.विक्रम	

4.4 सारांश

ऋतु , अयन, गोल एवं वर्ष ज्योतिष शास्त्र की काल संबंधित इकाई है। पंचांग में प्रतिपक्ष में ऋतु , अयन , गोल एवं वर्ष का उल्लेख रहता है। ज्योतिष को समझने के लिये इन इकाईयों का ज्ञान प्रारंभिक रूप में अत्यावश्यक है। इनके ज्ञानाभाव में काल को ठीक – ठीक नहीं समझा जा सकता है। अत: इस इकाई में उपर्युक्त विषय से जुड़े विषयों का विवेचन सम्यक् रूप में किया गया है। पाठक को संबंधित विषय की जानकारी प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् हो सकेगी। वस्तुत: ये सभी सूर्य से सम्बन्धित है, सूर्य के संक्रमण से ही ऋतु, मकरादि छ: राशियों पर सूर्य की स्थिति से अयन, मेषादि छ: राशियों पर सूर्य की स्थिति से गोल एवं 12 महीने तक सूर्य का एक भगण चक्र पूरा करने पर वर्ष का ज्ञान होता है।

इस प्रकार इस इकाई में ऋतु , अयन, गोल एवं वर्ष से सम्बन्धित विषयों का वर्णन किया गया है। जिसका अवलोकन कर पाठक गण इसे समझ सकने में समर्थ होंगे।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

मधु – चैत्र मास

माधव – वैशाख मास

शुचि – आषाढ़ मास

कुसुमाकर – वसन्त

ऋतुनां – ऋतुओं में

मासानां – मासों में

ऊर्ज – कार्तिक

सौरमास – सूर्य के द्वारा 30 अंश भोग किया गया समय

आर्ष वचन – ऋषियों का वचन

उत्तरायन – मकरादि छ: राशियों में सूर्य की स्थिति रहने पर उत्तरायन होता है

दक्षिणायन – कर्कादि छ: राशियों में सूर्य की स्थिति रहने पर दक्षिणायन होता है ।

सौम्यायन – उत्तरायन को ही सौम्यायन भी कहते है।

अनभिज्ञ – न जानने वाला

निरर्थक – बिना अर्थ का

अर्क – रवि

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 6
2. सौरमास
3. उत्तरायण
4. चलना
5. नभस्य
6. शुक्ल
7. मेष की संक्रान्तिसे
8. अमावस्या में
9. 6
10. मकर राशि में प्रवेश करने पर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त
2. सिद्धान्तशिरोमणि
3. वृहज्ज्योतिसार
4. भारतीय ज्योतिष
5. भारतीय फलित ज्योतिष

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ऋतु को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये।

2. अयन एवं गोल से क्या समझते है।

3. वर्ष पर टिप्पणी लिखिये।

इकाई – 5 युग, महायुग, मनु एवं कल्प

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 युग – महायुग परिचय

5.3.1 मनु

5.3.2 कल्प

बोध प्रश्न

5.4 सारांश

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.7 सहायक पाठ्यसामग्री

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई खण्ड – 2 के पंचम इकाई **''युग, महायुग मनु एवं कल्प''** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आप ने ऋतु , अयन, गोल एवं वर्ष का अध्ययन कर लिया है, अब इस इकाई में आप युग,महायुग,मनु एवं कल्प के बारे में अध्ययन करेगें।

युगों की संख्या 4 है। चार युगों का एक महायुग होता है। एक कल्प में 14 मनु होते है तथा ब्रह्मा के एक दिन के बराबर एक कल्प होता है।

इस इकाई में पाठकगण उपर्युक्त विषयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन कर सकेगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेगें कि –

- ❖ युग क्या है ?
- ❖ महायुग किसे कहते है ।
- ❖ मनु से आप क्या समझते है।
- ❖ कल्प क्या है।
- ❖ युग, महायुग, मनु एवं कल्प का व्यावहारिक उपयोग क्या है।

5.3 युग, महायुग परिचय

'तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम् '।

सूर्यसिद्धान्तोक्त इस पंक्ति के अनुसार 12000 दिव्य विर्षों का एक चतुर्युग होता है।

खखाभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणैः।
क्रमेण सूर्यवस्तसरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः ।।
स्वसन्ध्यकातदंशकैर्निजार्कभागसंमितैः।
युताश्च तद्युतौ युगं रदाब्धयोऽयुताहताः ।।
मनुः क्षमानगैर्युगैर्युगेन्दुभिश्च तैर्भवेत्।
दिनं सरोजजन्मनो निशा च तत्प्रमाणिका ।।
सन्धयः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समा आदिमध्यावसानेषु तैर्मिश्रितैः।
स्याद्युगानां सहस्रं दिनं वेधसः सोऽपि कल्पो द्युरात्रन्तु कल्पद्वयम् ।।

अर्थ - 4,32,000 (चार लाख बत्तीस हजार) सौर वर्षो का चतुर्गुणित 4,32,000 × 4 =

17,28,800 सौर वर्ष का **कृत (सत्ययुग) नामक प्रथम** युगचरण है।

त्रिगुणित 4,32,000 × 3 = 12,96,000 सौर वर्ष का **त्रेता नामक द्वितीय युग** चरण है।

द्विगुणित 4,32,000 × 2 = 8,64,000 सौर वर्ष का **द्वापर नामक तृतीय युग** चरण है। तथा एकगुणित 4,32,000 × 1 = 4,32,000 सौर वर्ष का **कलियुग नामक चतुर्थ युग** चरण है।

कुल योग = 4,32,000 × 10 = 43,20,000 सौर वर्ष

इन युग चरणों के बारहवें भाग प्रमाण की इन चरणों की सन्ध्यायें हैं। इतनी ही युग चरण के आरंभ में तथा इतनी ही अंत में होती है। इन युग संधियों सहित ये युग चरण प्रमाण कहे गये है।

कृतयुग के आरंभ में संध्यावर्ष - 1,44,000 और इतने ही अंत में।

त्रेतायुग के आरंभ में संध्यावर्ष – 1,08,000 और इतने ही अंत में।

द्वापरयुग के आरंभ में संध्यावर्ष – 72,000 और इतने ही अंत में।

कलियुग के आरंभ में संध्यावर्ष - 36,000 और इतने ही अंत में।

इन चारों युग चरण प्रमाण को जोड़ने से एक महा युग प्रमाण होता है। यथा 17,28,000 + 12,96000 + 8,64,000 + 4,32,000 = 43,20000 सौर वर्ष का एक महायुग होता है।

71 महायुग का एक मनु होता है। 14 मनु का ब्रह्मा का एक दिन तथा इतने ही प्रमाण की एक रात्रि होती है। अत: 71 × 14 = 994 महायुग का ब्रह्मा का एक दिन होता है।

स्मृति पुराणादि में कहा गया गया है – **''चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणों दिनमुच्यते''**। इनमें कहे गये कथन की शंका का परिहार करते हैं। एक मनु में कृतयुग चरण तुल्य 15 संधियॉ 14 मनुओं के आरंभ से अंत तक होती है। अत: 15 × 17, 28,000 = 2,59,20,000 सौर वर्ष। ये सौर वर्ष 6 महायुगों (6 × 43,20,000 = 2,59,20,000) के तुल्य है। अत: पूर्वोक्तानुसार ब्रह्मा का एक दिन 994 + 6 = 1000 महायुग अर्थात चतुर्युग सहस्र गुणा का हुआ। यह सिद्ध हो गया। ब्रह्मा के दिन को एक कल्प कहते हैं तथा रात्रि भी इतने ही प्रमाण की होती है। इस प्रकार ब्रह्मा का एक दिन – रात्रि दो कल्प तुल्य होता है। इस कल्प दिन मान से ब्रह्मा की आयु 100 (360 × 2 × 100 कल्प) वर्ष की होती है, जिसको महाकल्प कहते हैं। सत्ययुग में धर्म के 4 पाद, त्रेता में 3 पाद, द्वापर में 2 और कलियुग में केवल 1 ही धर्मपाद होता है।

ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त के अनुसार महायुग , युगचरण मान –

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने मध्यामिधकार के प्रथम अध्याय में महायुग, युग चरण मान, युग संधि आदि भास्कराचार्योक्त ही कही हैं। मध्यमाधिकार श्लोक 7 व 8 –

खचतुष्टयरदवेदा 43,20,000 रविवर्षाणां चतुर्युगं भवति।

सन्ध्यासन्ध्यांशैः सह चत्वारि पृथक् कृतादिनि।।

'' युगदशभागो गुणित कृतं 17,28,000 चतुर्भिस्त्रिभिर्गुा 12,96,000 त्रेता। द्विगुणो 8,64,000 द्वापरमेकेन संगुणः 4,32,000 कलियुगं भवति ।'' यहॉ आचार्य ने चतुर्युग (महायुग) मान 43,20000 के दशमांश का 4,3,2 तथा 1 गुणित क्रमशः कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग कहा है । जिसका मान भास्कराचार्योक्त ही है । युग संधियॉ आदि आचार्योक्त ही कही हैं ।

आर्यभट्ट ने दशगीतिका अध्याय में इस प्रकार कहा है –

काहो मनवो ढ 14 मनुयुग श्ख 72 गतास्ते च 6 मनुयुग छना 72 च ।

कल्पादेर्युगपादा ग 3 च गुरूदिवसाच्च भारतात्पूर्वम् ।।

इनके अनुसार 72 महायुग का एक मनु होता है ।

12000 दिव्य वर्ष (12000 × 360 = 43,20000 सौर वर्ष) का एक महायुग होता है । प्रत्येक महायुग में चार – चार युग होत है – सत्ययुग (कृतयुग) , त्रेता , द्वापर , और कलियुग । इन चारों युगों के मान इस प्रकार है –

युगों के नाम	**दिव्यवर्ष**	**सौरवर्ष**
कृतयुग (सत्ययुग)	4800	1728000
त्रेता	3600	1296000
द्वापर	2400	864000
कलियुग	1200	432000
महायुग (चारों युगों का योग)	12000	43,20000

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार युग, मनु, कल्प, युग चरणादि –

तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम् ।

सूर्याब्द संख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः ।।

सन्ध्यासन्ध्यांशसहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम् ।

कृतादिनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया ।।

अर्थात देव – असुरों के वर्षमान के 12 हजार वर्षो (दस हजार दिव्यवर्ष) का एक चतुर्युग (तुल्य महायुग) कहा गया है । सौर मान से दस हजार गुणित 432 वर्षो का अर्थात् 43,20000 वर्षो का एक महायुग होता है । कृत युग आदि प्रत्येक युग संध्या संध्यांश युक्त चतुर्युग का मान (12000 दिव्य वर्षो के) धर्मपाद व्यवस्था के अनुसार है ।

युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसंगुणः ।

क्रमात् कृतयुगादीनां षष्ठांश सन्ध्ययो स्वकः ।।

युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।

कृताब्दसंख्यस्तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः ।।

अर्थात् महायुग मान 120000 दिव्य वर्ष के दशमांश को क्रमशः 4,3,2,1 से गुणा करने से प्राप्त वर्षमान कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के क्रमशः होते हैं। अपने – अपने युगमान के षष्ठांश तुल्य इनकी दोनों संधियॉ होती हैं। 71 महायुगों का एक मन्वन्तर कहा है। एक मनु के अंत में कृतयुग 4800 दिव्यवर्ष तुल्य मनु की सन्धि होती है। संधि काल को जलप्लव कहते हैं।

बोध प्रश्न –

1.चतुर्युग से क्या तात्पर्य है।

2. खखाभ्रदन्तसागरैः शब्द का क्या अर्थ है।

3. सत्ययुग में धर्म के कितने पाद थे।

4. कलियुग की आयु कितनी है।

5. एक कल्प में कितने महायुग होते है।

6. द्वापर युग के आरंभ में संध्या वर्ष की संख्या कितनी है।

7. आर्यभट्ट के अनुसार एक मनु में कितने महायुग होता है।

8. त्रेतायुग का मान दिव्य वर्षों में कितना है।

9. सूर्यसिद्धान्त के अनुसार एक कल्प में कितने मनु होते है।

10. सम्प्रति कौन सा मन्वन्तर चल रहा है।

ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।

कृतप्रमाणः कल्पादौ संधि पंचदशः स्मृतः ।।

अर्थात एक कल्प में संधि सहित 14 मनु होते है। कल्प के आदि में कृत युग तुल्य संधि होती है। इस प्रकार एक कल्प में सतयुग के समान , 14 मनु की 15 संधियॉ होती हैं।

इस प्रकार सूर्यसिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त ही कहा है। अंतर केवल यह है कि सूर्यसिद्धान्त में मनुस्मृति के अनुरूप दिव्य वर्ष मान से कहा गया है। दोनों प्रकार से मान समान ही हैं। उपरोक्त को सारिणी रूप में लिख कर कहते है –

एक महायुग = 12000 दिव्यवर्ष = सौरमान वर्ष 43,20,000 वर्ष।

महायुग का दशमांश 1200 दिव्य वर्ष × 4 = 4800 दिव्य वर्ष कृतयुग = 17,28,000 सौर वर्ष।

महायुग का दशमांश 1200 दिव्यवर्ष ×3 = 3600 दिव्य वर्ष त्रेतायुग = 12,96,000 सौरवर्ष।

महायुग का दशमांश 1200 दिव्य वर्ष × 2 = 2400 दिव्य वर्ष द्वापर युग = 8,64,000 सौर वर्ष।

महायुग का दशमांश 1200 दिव्य वर्ष ×1 × 1200 दिव्य वर्ष कलियुग = 4,32,000 सौर वर्ष।

संधिया कहते हैं –

कृतयुग 4800 × 1/6 = 800 दिव्य वर्ष (400 + 400) = 1,44,000 + 1,44,000 सौर वर्ष

त्रेतायुग 3600 × 1/6 = 600 दिव्य वर्ष (300 + 300) = 1,08,000 + 1,08,000 सौर वर्ष

द्वापर युग 2400 × 1/6 = 400 दिव्य वर्ष (200 + 200) = 72,000 + 72,000 सौर वर्ष

कलियुग 3600 × 1/6 = 200 दिव्य वर्ष 600 (100 + 100) = 36,000 + 36,000 सौर वर्ष

71 महायुग = 1 मनु = 71 × 12000 = 8,52,000 दिव्य वर्ष = 30,67,20,000 सौर वर्ष

एक कल्प = 14 मनु + 15 संधि = 14 × 8,52,000 + 15 × 4,800 = 11,9,28,000 + 72,000

एक कल्प = ब्रह्मा का एक दिन = 1,20,00000 दिव्य वर्ष = 4,32 00,00, 000 सौर वर्ष

ब्रह्मा का अहोरात्र 12000 ×1000 × 2 = 1,20,00,000 × 2 = 2,40,00,000 दिव्य वर्ष = 8,64,00,00,000 सौर वर्ष।

परमायु: शतं तस्य तयाऽहोरात्र संख्यया।

आयुषोऽर्धमिदं तस्य शेषकल्पोऽयमादिम: ।।

ब्रह्मा के अहोरात्र प्रमाण से सौर वर्षों = 360 ×2 ×100 = दिवस की ब्रह्मा की आयु होती है।

5.3.1 मनु मान -

याता: षण्मनवो युगानि भमितान्यन्यद्युगाङ्घ्रित्रयं

नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सरा:।

गोद्रीन्द्विद्रिकृताङ्कदस्रनगगोचन्द्रा: 1972947179 शकाब्दानिवता: ।।

सर्वे संकलिता: पितामहदिने स्युर्वर्त्तमाने गता :।

स्वायम्भुवो मनुरभुत् प्रथमस्ततोऽमी स्वारोचिषोत्तमजतामसरैवताख्या:।

षष्ठस्तु चाक्षुष इति प्रथित: पृथिव्यां वैवस्तस्तदनु सम्प्रति सप्तमोऽयम् ।।

आचार्य भास्कराचार्य के अनुसार छ: मनु संधि सहित तथा सातवें मनु का 27 वॉ युग व्यतीत होकर वर्तमान युग के तीन अंग (तीन युग चरण – कृत, त्रेता और द्वापर) व्यतीत हो चुके हैं तथा कलि आरंभ से 3179 वर्ष शकारम्भ तक वर्तमान में व्यतीत हो चुके हैं जिन सब की योग संख्या 1972947179 वर्ष है। ब्रह्मा के आदि से **छ: मनु –**

1.स्वायम्भुव

2. स्वारोचिष

3. उत्तमज

4. तामस

5. रैवत

6. चाक्षुष

व्यतीत हो चुके हैं तथा वर्तमान में सातवॉ वैवस्वत नामक मन्वन्तर चल रहा है।

वटेश्वराचार्य के अनुसार ब्रह्मा की आयु के साढ़े आठ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं तथा नवें वर्ष के प्रथम दिन के छ: मनु, 27 युग, महायुग के तीन चरण (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर) बीत गये तथा कलियुगादि से शकादि आरंभ तक 3179 वर्ष व्यतीत हो गये। इस प्रकार दोनों आचार्यों के अनुसार व्यतीत हो चुका काल समान है।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार मनु काल –

सूर्यसिद्धान्त में भी यद्यपि आचार्य भास्कराचार्य के समान ही मनु काल कहा है क्योंकि सूर्यसिद्धान्त प्राचीनतम है अत: इसमें कृतयुग तक के बीत चुके काल के लिये ही कहा है तथा एक बात विशेष यह कही है कि ब्रह्मा को ग्रह, नक्षत्र, देव, दानव, आदि चर – अचर जगत की रचना करने में 47,400 दिव्य वर्ष लग गये थे। अर्थात् वर्तमान कल्प आरंभ से इतने दिव्य वर्ष पश्चात् सृष्टि काल का आरंभ हुआ। अत: इतने वर्ष काल गणना में और जोड़ने होंगे। यथा –

कल्पादस्माच्च मनव: षड्व्यतीता: ससन्धय:।
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनो गत:।।
अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमेतम् कृतं युगम्।
अत: कालं प्रसंख्याय संख्यामेकत्र पिण्डयेत्।।
ग्रहर्क्ष देव – दैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दा: शतघ्ना वेधसो गता:।।

आचार्य श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में सात मनुओं के नामों के लिये भास्कराचार्य जी के समान ही कहा है –

स्वायम्भुवाख्यो मनुराद्य आसीत् स्वारोचिषश्चोत्तमतामसाख्यौ।
जातौ ततो रैवतचाक्षुषों च वैवस्वत: सम्प्रति सप्तमोऽयम्।।

5.3.2 कल्प मान –

ब्रह्मा के दिन को एक कल्प कहते हैं तथा रात्रि भी इतने ही प्रमाण की होती है। इस प्रकार ब्रह्मा का एक दिन –

रात्रि (अहोरात्र) दो कल्प तुल्य होता है। सन्धि सहित 1 कल्प में 14 मनु होते है। कल्प दिन मान से ब्रह्मा की आयु 100 वर्ष की होती है, जिसको महाकल्प कहते हैं। ब्रह्मा का एक दिन
1000 महायुग के बराबर होता है। इसलिये 1 कल्प में 1000 महायुग होते है।
कल्प के अन्त में ब्रह्मा सृष्टि का अन्त करके आराम करते है, पुन: कल्प का आरंभ होता है और इस प्रकार से सृष्टि क्रिया चलती रहती है। स्मृति पुराणादि में कहा गया है कि –

'चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणों दिनमुच्यते।'

विशेष रूप में गणितीय विधि से पूर्व में ही ब्रह्मा की आयु को सिद्ध कर दिया गया है।

5.4 सारांश

ज्योतिष शास्त्र को काल नियामक होने के कारण 'कालशास्त्र' भी कहा जाता है। काल ज्ञान के अन्तर्गत युग, महायुग , मनु एवं कल्प संबंधित यह इकाई है। व्यावहारिक रूप में इनका ज्ञान पाठकों को प्राप्त हो, इस हेतु प्रस्तुत इकाई में इसकी विवेचना की गई है। पंचांगों में भी युग, महायुग , मनु एवं कल्प का विवरण हमें प्राप्त होता है, किन्तु इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विस्तारपूर्वक इनका अध्ययन किया जा सकता है।

ज्योतिषोक्त काल की यह इकाईयॉ सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत कही गयी है। आचार्यो ने ज्योतिष ज्ञान के अन्तर्गत काल ज्ञान में इनका उल्लेख किया है। मनुष्य जहॉ होता है, उससे इतर भी जगत् में कई पदार्थों एवं ज्ञान- विज्ञान की सत्ता व्याप्त है, उन सभी के ज्ञानार्थ आचार्यों ने मनुष्य एवं समस्त चराचर प्राणियों के नियन्ता ब्रह्मा की आयु के साथ – साथ, चतुर्युग, महायुग,मनुओं का भी ज्ञान बतलाया है, जिसे प्रस्तुत इकाई में कहा गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठक गण को तत् सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त हो जायेगा।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

पूर्वोक्तानुसार - पूर्व में कहे गये के अनुसार

कल्प – ब्रह्मा का एक दिन

महाकल्प – ब्रह्मा का 100 दिन

युग – सत्ययुगादि चार युग

महायुग – चतुर्युग

चतुर्युग – चारों युग

आचार्योक्त - आचार्य के द्वारा कहा गया

जलप्लव – जल से पूरी तरह ढ़ॅक जाना

अहोरात्र – दिन – रात

चाक्षुष – मन्वन्तर का नाम

रैवत – मन्वन्तर का नाम

व्यतीत – बीता हुआ

व्यवहारिक – व्यवहार में आने वाला

कल्पान्त – कल्प के अन्त में

सृष्टि – चराचर प्राणि , ग्रह – नक्षत्र, देव – दैत्य से युक्त स्थल

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. चतुर्युग का अर्थ है चार युग – सत्ययुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग
2. 4,32,000
3. 4 पाद
4. 4,32,000 सौर वर्ष
5. 1000 महायुग
6. 72000
7. 72
8. 3600 दिव्य वर्ष
9. 71
10. वैवस्वत नामक मन्वन्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त
2. सिद्धान्तशिरोमणि
3. वृहज्ज्योतिसार
4. भारतीय ज्योतिष
5. भारतीय फलित ज्योतिष

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. युग एवं महायुग को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये।
2. मनु से क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
3. कल्प से क्या अभिप्राय है। वर्णन कीजिये।

खण्ड – 3
पञ्चाङ्ग परिचय

इकाई – 1 तिथि एवं वार क्रम का सैद्धान्तिक स्वरूप

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 तिथिक्रम
1.3.1 तिथिशब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा
1.3.2 पक्ष विचार एवं तिथियों की संख्या
1.3.3 तिथियों की संज्ञाएं एवं स्वामी विचार
1.3.4 क्षय एवं वृद्धि तिथि विचार
1.3.5 तिथियों की व्यावहारिकता
1.4 तिथियों का सैद्धान्तिक स्वरूप
1.4.1 तिथि का सैद्धान्तिक स्वरूप
1.4.2 चन्द्र एवं सूर्य का स्थानान्तर तथा बिम्बान्तर विचार
1.4.3 तिथि का मध्यम एवं स्पष्ट मान विचार
1.4.4 तिथिसाधनविचार
1.5 वार क्रम
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सहायक पाठ्यसामग्री
1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 निबन्धात्मकप्रश्न

1.1 प्रस्तावना

पंचांग परिचय से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह प्रथम इकाई है। यह खण्ड आपको पंचांग विज्ञान के परिचय के साथ साथ उनके बारे में विशिष्ट ज्ञान भी प्रदान करेगा। सामान्यतः पंचांग के पाँच अंगों को आप जानते ही होंगे। तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण ये पंचांग के पाँच अंग हैं। इनकी सहायता से ही भारतीयों, विशेष रूप से हिन्दूमतावलम्बियों के व्रत, पर्व, उत्सवों एवं षोडशसंस्कारों का सम्पादन करने का समय निर्धारित किया जाता है।

पंचांग के पाँच अंगों में सर्वप्रथम तिथि नामक अंग की गणना होती है। तिथिशब्द का क्या अर्थ है? पक्ष किसे कहते हैं एवं पक्ष में तिथियों की संख्या कितनी होती है? तिथियों के स्वामी कौन कौन हैं? वृद्धि एवं क्षय तिथि क्या हैं? तिथियों की व्यावहारिकता क्या है? तिथियों का सैद्धान्तिक स्वरूप क्या है? तिथियों के मान का साधन किस प्रकार किया जाता है? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर के रूप में इस इकाई को आपके लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप पंचांग के प्रमुख अंग **'तिथि'** के व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक स्वरूप को समझा सकेंगे। साथ ही इस सम्बन्ध में विभिन्न पक्षों को जानकर तिथिसाधन के विभिन्न तथ्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद -

1. आप बता सकेंगे कि तिथिशब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ क्या है? तिथियां कितनी हैं? तिथियों को और किन किन नामों से जाना जाता है तथा इनके स्वामी कौन - कौन हैं?
2. आप समझा सकेंगे कि तिथियों का सैद्धान्तिक स्वरूप क्या है? साथ ही इनकी व्यावहारिकता क्या है?
3. आप जान सकेंगे कि सूर्य एवं चन्द्र की स्थितियों के आधार पर तिथिसाधन का ज्ञान वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक है। मुहूर्तों के शोधन में इसका अत्यन्त उपयोग है, जो जन सामान्य की सेवा, धनप्राप्ति व यशप्राप्ति में सहायक है। इसी कारण इसका अध्ययन व साधन किया जाता है।
4. आप तिथिसाधन के व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक पहलुओं के विषय में विभिन्न मतों को श्रेणीबद्ध कर उनका विश्लेषण सकेंगे।
5. तिथि के मान का साधन कर उसका व्यावहारिक प्रयोग कर सकेंगे।

1.3 तिथिक्रम

आप जानते ही हैं कि पंचांग के पांच अंगों में सर्वप्रथम तिथिसाधन किया जाता है। परन्तु आप तिथिसाधन करें, उससे पहले आप के लिए यह जानना जरूरी है कि तिथिशब्द किस प्रकार से व्युत्पन्न है? इस शब्द का क्या अर्थ है? तिथियां कितनी होती हैं ? तिथिविशेष को और किस नाम से पुकारा जाता है एवं तिथियों के स्वामी कौन कौन हैं? आपने सुना होगा कि अमुक दिन को तिथि का क्षय हुआ है या उसकी वृद्धि हुई है, इस क्षय व वृद्धि का क्या कारण है? साथ ही तिथियों का व्यवहार में किस प्रकार उपयोग मिलता है? प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत उपर्युक्त बातों को बताया जा रहा है।

1.3.1 तिथिशब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

वाचस्पत्यम् नामक शब्दकोश के अनुसार अत् (चलने के अर्थ में प्रयुक्त धातु) में इथिन् प्रत्यय को जोडने पर, अथवा पृषोदरादित्वात् ङीप् प्रत्यय के योग से तिथि शब्द व्युत्पन्न होता है। वहीं पर कालमाधव के अनुसार तिथिशब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गयी है- '**तिथिशब्दस्तनोतेर्द्धार्निष्पन्नः।** तनोति **विस्तारयति वर्द्धमानां क्षीयमाणां वा चन्द्रकलामेकां यः कालविशेषः सा तिथिः**। यद्वा यथोक्तकलया तन्यत इति तिथिः।' अर्थात् जो कालविशेष, वृद्धि या क्षय होने वाली एक चन्द्रकला को विस्तार देता है, वही तिथि है। अथवा यथोक्त कला के द्वारा जो विस्तारित है, वह तिथि है। इसी प्रकार सिद्धान्तशिरोमणि नामक ग्रन्थ में भी कहा गया है- '**तन्यते कलया यस्मात्तस्मात्तास्तिथयः स्मृताः**।'

इस प्रकार तिथि शब्द का अर्थ है - चन्द्र की एक कला का मान। आप जानते ही हैं कि चन्द्र का अपना प्रकाश नहीं होता है। वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। अमावस्या के अन्त में चन्द्र सूर्य के निकट रहता है। इस समय सूर्य एवं चन्द्र का पूर्वापर अन्तर शून्य अंश होता है। चन्द्र अपनी शीघ्रगति के कारण अपनी पूर्वाभिमुखी गति से सूर्य के आगे हो जाता है। सूर्य एवं चन्द्र के भ्रमण से इन दोनों के मध्य प्रतिदिन प्रायः 12 अंश का अन्तर पडता है। अतः ठीक पूर्णिमा के अन्त में इन दोनों के बीच 180 अंश का अन्तर हो जाता है। पुनः 360 (या 0) अंश का अन्तर होते ही दूसरी अमावस्या की समाप्ति हो जाती है। अब आप समझ गये होंगे कि एक अमावस्या के अन्त से दूसरे अमावस्या के अन्त तक के बीच के समय को ही चान्द्रमास कहते हैं। इस प्रकार एक चान्द्रमास में सूर्य से कोणीय स्थिति के अनुसार चन्द्र का बिम्ब कभी अदृश्य रहता है। कभी आपको बिम्ब का थोडा सा हिस्सा ही दिखाई देता है। कभी बिम्ब का आधा हिस्सा ही दृष्टिगोचर होता है, तो कभी आधे से ज्यादा भाग। पूर्णिमा के दिन आपको चन्द्र का पूर्ण बिम्ब आह्लादित कर देता होगा। तो पुनः एक रात्रि को यही चन्द्रबिम्ब दिखाई नहीं देता है। इन्हीं चन्द्रबिम्ब के दृश्यादृश्य भाग के आधार पर प्राचीनाचार्यों ने चन्द्र की षोडश (16) कलाओं की कल्पना की, जो पूरे चान्द्रमास में दिखाई देते हैं।

एक कला का मान लगभग 12 अंश होता है। इसी को तिथि का मध्यम (औसत) मान भी कहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर आप तिथिशब्द को निम्न शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं - चान्द्रमास का तीसवां भाग अथवा **सूर्य व चन्द्र में 12 अंश का अन्तर पडने में जितना समय लगता है उसे तिथि कहते हैं।**

बोध प्रश्न-हॉं या नहीं में उत्तर दीजिए-

1. तिथि शब्द अत् धातु में इथिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है।
2. तिथि शब्द का अर्थ होता है चन्द्र की एक अंश का मान।
3. पूर्णिमा के दिन सूर्य एवं चन्द्र के मध्य 360 अंश का अन्तर होता है।
4. दृश्यादृश्य भाग के आधार पर प्राचीनाचार्यों ने चन्द्र की षोडश (16) कलाओं की कल्पना की है।
5. सूर्य व चन्द्र में 12 अंश का अन्तर पडने में जितना समय लगता है उसे तिथि कहते हैं।
6. अमावस्या के अन्त से पूर्णिमा के बीच के समय का मान चान्द्रमास होता है।

उत्तर- 1. हॉं, 2. नहीं, 3. नहीं, 4. हॉं, 5. हॉं, 6. नहीं

1.3.2 पक्ष विचार एवं तिथियों की संख्या

आप जानते ही हैं कि अमावस्या के अन्त से दूसरे अमावस्या के अन्त तक के मान को चान्द्रमास कहते हैं। इस चान्द्रमास को हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने चन्द्र के घटती-बढती कलाओं के आधार पर दो पक्षों - शुक्ल एवं कृष्ण, में विभक्त किया है। अमावस्या के अन्त में सूर्य व चन्द्र के मध्य का पूर्वापर अन्तर शून्य होता है। सूर्य के निकट होने के कारण उस दिन चन्द्र दिखाई नहीं देता है। अमावस्या के अन्त से सूर्य व चन्द्र के बीच का अन्तर 12 अंश हो जाने पर पहली तिथि के अन्त अथवा दूसरी तिथि के आरम्भ में चन्द्रबिम्ब का दर्शन हल्की सी रेखा के रूप में होता है। धीरे धीरे चन्द्रबिम्ब के दृश्य भाग में बढोत्तरी होते होते पूर्णिमा के दिन चन्द्र का पूर्णबिम्ब दिखाई देता है। अतः पहलीतिथि के आरम्भ से पूर्णिमा तक चन्द्रबिम्ब के दृश्यभाग में लगातार वृद्धि होने के कारण चान्द्रमास के इस आधे भाग अर्थात् 15 दिनों (वस्तुतः 15 तिथियों) के समूह को प्राचीनाचार्यों ने शुक्ल पक्ष की संज्ञा दी। पूर्णिमा के दूसरे दिन से चन्द्रबिम्ब के दृश्य भाग में कमी होने लगती है। यही दृश्य भाग घटते घटते अमावस्या तक एकदम शून्य हो जाता है। पूर्णिमा के अन्त से अमावस्या तक चन्द्रबिम्ब के अदृश्यभाग में लगातार ह्रास होने के कारण चान्द्रमास के इस आधे भाग अर्थात् 15 दिनों (वस्तुतः 15 तिथियों) के समूह को कृष्णपक्ष की संज्ञा दी गई। इस प्रकार एक चान्द्रमास में दो

पक्ष होते हैं।

शुक्ल एवं कृष्ण, इन दोनों पक्षों में 15-15 तिथियाँ होती हैं। इनमें तिथियों का क्रम एक सा होता है। केवल 15वीं तिथि के नाम में अन्तर होता है। शुक्लपक्ष की 15वीं तिथि को चन्द्रबिम्ब पूर्ण रहता है। अतः इस दिन को पूर्णिमा कहते हैं। कृष्णपक्ष की 15वीं तिथि को चन्द्रबिम्ब अदृश्य रहता है। अतः इस दिन को अमावस्या कहते हैं।

शुक्लपक्ष में तिथियों का क्रम निम्न प्रकार से है -

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा।

कृष्णपक्ष में तिथियों का क्रम निम्न प्रकार से है -

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं अमावस्या ।

अमावस्या एवं पूर्णिमा के दो- दो भेद होते हैं। जिस दिन अमावस्या कृष्णचतुर्दशी से युक्त होती है, उस अमावस्या को सिनी कहते हैं। तथा जिस दिन अमावस्या शुक्लप्रतिपदा से युक्त होती है, उस अमावस्या को कुहू कहते हैं। इसी प्रकार जिस दिन पूर्णिमा शुक्लचतुर्दशी से युक्त होती है, उस पूर्णिमा को अनुमति कहते हैं। तथा जिस दिन पूर्णिमा कृष्णप्रतिपदा से युक्त होती है, उस पूर्णिमा को राका कहते हैं। (सचित्र ज्योतिष शिक्षा, प्रारम्भिक ज्ञान खण्ड पृ. 73)। डॉ. नेमिचन्द्रशास्त्री के अनुसार अमावस्या के तीन भेद हैं - सिनीवाली, दर्श एवं कुहू। प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक रहने वाली अमावस्या को सिनीवाली, चतुर्दशी से विद्ध को दर्श एवं प्रतिपदा से युक्त अमावस्या को कुहू कहते हैं। (भारतीय ज्योतिष पृ. 119)। परन्तु अमरकोश (प्रथमकाण्ड कालवर्ग 231-232 पंक्ति) में सूर्य व चन्द्र के संगम (अमावस्या, जब सूर्य व चन्द्र के मध्य का पूर्वापर अन्तर शून्य होता है।) को ही दर्श कहा है। जिस अमावस्या को चन्द्र दिखाई दे (अमावस्या कृष्णचतुर्दशी से युक्त हो) उसे **सिनीवाली** कहते हैं। जिस अमावस्या को चन्द्र दिखाई न दे (अमावस्या शुक्लप्रतिपदा से युक्त हो) उसे **कुहू** कहते हैं। उपर्युक्त मतों में से अमरकोश का कथन अधिक प्रामाणिक है। उत्तर भारतीय पंचांगपत्रकों में तिथियां शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिनी जाती हैं। 15 तिथि पूर्णिमा को होती है, इस कारण पंचांग पत्रक में पूर्णिमा के स्थान में 15 लिखते हैं। इसके उपरान्त कृष्णपक्ष की तिथियां आरम्भ होती हैं। वे भी प्रतिपदा से आरम्भ होकर अमावस्या तक गिनी जाती हैं। परन्तु अमावस्या को 30 वीं तिथि कहते हैं। अतः पंचांगपत्रक में अमावस्या के स्थान पर 30 लिखते हैं। स्पष्टता के लिए आप निम्न पंचांगपत्रक का नमूना देखें।

बोध प्रश्न-सही विकल्प चुनिए -

1. एक चान्द्रमास में पक्ष होते हैं-

    (क) 1 (ख) 2 (ग) 3 (घ) 4

2. जिस दिन चन्द्र व सूर्य के मध्य लगभग 180 अंश का अन्तर होता है। उस दिन तिथि होती है -

    (क) चतुर्थी (ख) नवमी (ग) पूर्णिमा (घ) अमावस्या

3. अमावस्या के दिन चन्द्रबिम्ब का दर्शन होता है-

    (क) नहीं (ख)आधा (ग) आधे से अधिक (घ) पूर्ण

4. अमान्त के बाद सूर्य व चन्द्र के मध्य निम्न अन्तर होने पर सर्वप्रथम चन्द्रदर्शन होता है-

    (क) 0 अंश (ख) 12 अंश (ग) 180 अंश (घ) 270 अंश

5. जिस दिन अमावस्या शुक्लप्रतिपदा से युक्त होती है, उस अमावस्या को कहते हैं-

(क) अनुमति (ख) राका (ग) सिनीवाली (घ) कुहू

उत्तर- 1 - ख, 2 - ग, 3 - क, 4 - ख. 5 - घ

नमूना पंचांगपत्रक –1

विश्वावसु संवत्सर, वि.संवत् 2069, शक संवत् 1934, सौम्यायन, उत्तरगोल, वसन्तऋतु, चैत्र शुक्ल पक्ष (23 मार्च से 06 अप्रैल 2012 ई.)

दि.	वार	ति.	घ/प	घ/मि	नक्षत्र	घ/प	घ/मि	योग	घ/मि	करण	घ/मि	करण	घ/मि	सू उ	सूअ	[illegible]
23	शुक्र	1	38/50	रा 10/00	उ.भा	15/12	दि 12/33	ब्रह्म	रा 2/37	किंस्तु	प्रा 9/03	बव	रा 10/00	6/28	6/24	29
24	शनि	2	44/22	रा 0/12	रेव	21/52	दि 3/12	ऐन्द्र	रा 3/22	बाल	दि 11/06	कौल	रा 0/12	6/27	6/24	29
25	रवि	3	50/52	रा 2/47	अश्वि	29/15	सा 6/08	वैधृ	रा 4/19	तैतु	दि 1/29	गर	रा 2/47	6/26	6/24	29
26	सोम	4	57/37	रा 5/28	भर	37/05	रा 9/15	विष्कु	रा 5/22	वणि	सा 4/07	विष्टि	रा 5/28	6/25	6/24	29
27	मंग	5	60/00	सम्पूर्ण	कृत्ति	45/02	रा 0/25	प्रीति	प्रा 6/24			बव	सा 6/47	6/24	6/24	30
28	बुध	5	04/20	प्रा 8/07	रोहि	52/32	रा 3/24	आयु	सम्पूर्ण	बाल	प्रा 8/07	कौल	रा 09/19	6/23	6/24	30
29	गुरु	6	10/25	प्रा 10/32	मृग	59/05	रा 6/00	आयु	प्रा 7/16	तैतु	प्रा 10/32	गर	रा 11/29	6/22	6/24	30
30	शुक्र	7	15/15	दि 12/27	आर्द्रा	60/00	सम्पूर्ण	सौभा	प्रा 7/47	वणि	दि 12/27	विष्टि	रा 1/04	6/21	6/24	30
31	शनि	8	18/25	दि 1/42	आर्द्रा	04/07	प्रा 7/59	शोभ	प्रा 7/56	बव	दि 1/42	बाल	रा 1/55	6/20	6/24	30
1	रवि	9	19/32	दि 2/08	पुन	07/12	प्रा 9/12	अति	प्रा 7/15	कौल	दि 02/08	तैति	रा 1/54	6/19	6/24	30
								सुक	रा 6/01							
2	सोम	10	18/27	दि 1/41	पुष्य	08/12	प्रा 9/35	धृति	रा 4/09	गर	दि 1/41	वणि	रा 1/02	6/18	6/24	30
3	मंग	11	15/15	दि 12/23	आश्ले	07/02	प्रा 9/06	शूल	रा 1/30	विष्टि	दि 12/23	बव	रा 11/20	6/17	6/24	30
4	बुध	12	10/05	प्रा 10/18	मघा	03/57	प्रा 7/51	गण्ड	रा 10/21	बाल	प्रा 10/18	कौल	रा 08/56	6/16	6/24	30
					पू फ	59/10	रा 5/56									
5	गुरु	13	03/17	प्रा 7/34	उ फ	53/10	रा 3/31	वृद्धि	सा 06/44	तैतु	प्रा 7/34	गर	सा 5/57	6/15	6/24	30
		14	51/55	रा 4/20								वणि	रा 4/20			
6	शुक्र	15	46/25	रा 0/48	हस्त	46/20	रा 0/46	ध्रुव	दि02/47	विष्टि	दि 02/34	बव	रा 0/48	6/14	6/24	30

सौजन्य– श्रीभोजराजपंचांग 2069

नमूना पंचांगपत्रक –2

विश्वावसु संवत्सर, वि.संवत् 2069, शक संवत् 1934, सौम्यायन,

उत्तरगोल, वसन्तऋतु, चैत्र कृष्ण पक्ष (07 अप्रैल से 21 अप्रैल 2012 ई.)

दि.	वार	ति.	घ/प	घ/मि	नक्षत्र	घ/प	घ/मि	योग	घ/मि	कर	घ/मि	कर	घ/मि	सू उ	सू. अ	दि.मा
7	शनि	**1**	37/17	रा09/08	चित्रा	39/12	रा 9/54	व्याघा	प्रा10/40	बा	दि10/58	कौ	रा09/08	**6/13**	**6/24**	30/27
8	रवि	**2**	28/15	स 5/30	स्वाती	32/07	रा 7/03	हर्ष	प्रा 6/30	तै	प्रा 7/19	गर	सा5/30	**6/12**	**6/24**	30/30
								वज्र	रा 2/25			वणि	रा03/47			
9	सोम	**3**	19/42	दि02/04	विशा	25/37	स 4/26	सिद्धि	रा10/34	वि	दि02/04	बव	रा00/31	**6/11**	**6/24**	30/32
10	मंग	**4**	12/00	प्रा10/58	अनू	20/02	दि2/11	व्यती	रा07/03	बा	दि10/58	कौ	रा09/39	**6/10**	**6/24**	30/35
11	बुध	**5**	05/27	प्रा 8/20	ज्येष्ठा	15/37	दि12/24	वरी	दि03/57	तै	प्रा08/20	गर	रा07/19	**6/09**	**6/24**	30/37
12	गुरु	**6**	00/25	प्रा 6/18	मूल	12/37	दि11/11	परि	दि 1/19	वणि	प्रा06/18	वि	रा05/33	**6/08**	**6/24**	30/40
		7	56/17	रा 4/49								बव	रा 4/49			
13	शुक्र	**8**	54/40	रा 3/59	पू षा	11/10	प्रा10/35	शिव	दि11/11	बाल	सा4/24	कौ	रा3/59	**6/07**	**6/24**	30/42
14	शनि	**9**	54/12	रा 3/48	उ षा	11/15	प्रा10/37	सिद्धि	प्रा 9/34	तैतु	दि03/53	गर	रा 3/48	**6/07**	**6/25**	30/45
15	रवि	**10**	55/12	रा 4/11	श्रव	12/55	प्रा11/16	साध्य	प्रा 8/26	वन	दि03/59	वि	रा 4/11	**6/06**	**6/25**	30/47
16	सोम	**11**	57/35	रा 5/07	धनि	15/55	दि12/27	शुभ	प्रा 7/45	बव	सा4/39	बाल	रा 5/07	**6/05**	**6/25**	30/50
17	मंग	**12**	60/00	....	शत	20/12	दि02/09	शुक्ल	प्रा 7/29			कौ	सा5/48	**6/04**	**6/25**	30/52
18	बुध	**12**	01/07	प्रा 6/30	पू भा	25/32	सा4/16	ब्रह्म	प्रा 7/35	तैतु	प्रा 6/30	गर	रा 7/24	**6/03**	**6/25**	30/55
19	गुरु	**13**	05/40	प्रा 8/18	उ भा	31/47	सा6/45	ऐन्द्र	प्रा 7/58	वन	प्रा 8/18	वि	रा 9/21	**6/02**	**6/25**	30/57
20	शुक्र	**14**	11/00	प्रा10/25	रेव	38/45	रा09/31	वैधृ	प्रा 8/37	शकु	प्रा10/25	चतु	रा11/36	**6/01**	**6/25**	31/00
21	शनि	**30**	17/00	दि12/48	अश्वि	46/17	रा 0/31	विष्कु	प्रा 9/28	नाग	दि12/48	किं	रा 2/05	**6/00**	**6/25**	31/02

सौजन्य– श्रीभोजराजपंचांग 2069

1.3.3 तिथियों की संज्ञाएं एवं स्वामी विचार

तिथिसंज्ञा - हमारे प्राचीनाचार्यों ने कार्यों के गुण-दोषादि के आधार पर उनके सम्पादन हेतु तिथियों को कई प्रकार से विभाजित किया है। इनमें प्रमुख हैं तिथियों की नन्दादि संज्ञा। दोनों पक्षों की 1, 6 एवं 11 तिथियों की संज्ञा नन्दा है। इसी प्रकार दोनों पक्षों की 2, 7, 12 तिथियों की भद्रा, 3, 8, 13 तिथियों की जया, 4, 9, 14 तिथियों की रिक्ता तथा 5, 10 एवं पूर्णिमा तिथियों की पूर्णा संज्ञा है। शुक्लपक्ष में तिथियां प्रतिपदा से पंचमी तक अशुभ, षष्ठी से दशमी तक मध्यम तथा एकादशी से पूर्णिमा तक शुभ फलदायी कही गई हैं। इसके विपरीत कृष्णपक्ष में तिथियां प्रतिपदा से पंचमी तक शुभ, षष्ठी से दशमी तक मध्यम तथा एकादशी से पूर्णिमा तक अशुभ फलदायी होती हैं। शुक्रवार को नन्दासंज्ञक तिथियां (1, 6, 11), बुधवार को भद्रासंज्ञक तिथियां (2, 7, 12), मंगलवार को

जयासंज्ञक तिथियां (3, 8, 13), शनिवार को रिक्तासंज्ञक तिथियां (4, 9, 14) एवं गुरुवार को पूर्णासंज्ञक तिथियां (5, 10, 15) हो तो उस दिन सिद्धयोग होता है। जो शुभफलदायी होता है। (मुहूर्तचिन्तामणि 1/4) रविवार को नन्दासंज्ञक तिथियां, सोमवार को भद्रासंज्ञक तिथियां, मंगलवार को नन्दासंज्ञक तिथियां, बुधवार को जयासंज्ञक तिथियां, गुरुवार को रिक्तासंज्ञक तिथियां, शुक्रवार को भद्रासंज्ञक तिथियां तथा शनिवार को पूर्णासंज्ञक तिथियां मृतयोग बनाती हैं।(मुहूर्तचिन्तामणि 1/5)। मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधारा टीका के अनुसार यह मृतयोग न होकर अमृतयोग है, जो अशुभ न होकर शुभ है। मुहूर्तचिन्तामणि (1/6)में कुछ तिथियों के वारविशेष से संयुत रहने पर अधम (इन्हें पीयूषधारा टीका में क्रकच एवं संवर्तक योग कहा गया है।) योग कहे गये हैं। दोनों पक्षों की षष्ठी को शनिवार, सप्तमी को शुक्रवार, अष्टमी को गुरुवार, नवमी को बुधवार, दशमी को मंगलवार, एकादशी को सोमवार तथा द्वादशी को रविवार हो तो अधम (क्रकच)योग बनता है। इसी प्रकार दोनों पक्षों की प्रतिपदा को बुधवार एवं सप्तमी को रविवार होने पर भी अधम (संवर्तक)योग होता है।

उपर्युक्त प्रकार से ही रविवारादि का तिथिविशेष से संयोग होने पर उनकी दग्धादि संज्ञा कही गयी है।

वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
दग्धा तिथि	12	11	5	3	6	8	9
विषाख्य तिथि	4	6	7	2	8	9	7
हुताशन तिथि	12	6	7	8	9	10	11

जिसे निम्नसारिणी की सहायता से आप आसानी से समझ सकते हैं (मुहूर्तचिन्तामणि 1/8)

इसी प्रकार चैत्रादिमासों में तिथि विशेष की मासशून्य संज्ञा (मुहूर्तचिन्तामणि 1/10) होती है। चैत्रमास में दोनों पक्षों की अष्टमी एवं नवमी तिथि, वैशाखमास में दोनों पक्षों की द्वादशी, ज्येष्ठमास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी एवं शुक्लपक्ष की त्रयोदशी, आषाढ मास में कृष्णपक्ष की षष्ठी एवं शुक्लपक्ष की सप्तमी, श्रावणमास में दोनों पक्षों की द्वितीया एवं तृतीया तिथि, भाद्रपदमास में दोनों पक्षों की प्रतिपदा एवं द्वितीयातिथि, आश्विनमास में दोनों पक्षों की दशमी एवं एकादशी, कार्तिकमास में कृष्णपक्ष की पंचमी एवं शुक्लपक्ष की चतुर्दशी, मार्गशीर्षमास में दोनों पक्षों की सप्तमी एवं अष्टमी तिथि, पौषमास में दोनों पक्षों की चतुर्थी एवं पंचमी, माघमास में कृष्णपक्ष की पंचमी एवं शुक्लपक्ष की षष्ठी तथा फाल्गुनमास में कृष्णपक्ष की चतुर्थी एवं शुक्लपक्ष की तृतीया तिथि मासशून्य संज्ञक हैं। इन तिथियों में शुभ कर्म नहीं करने चाहिए।

तिथिस्वामी- मुहूर्तचिन्तामणि (1/3)में तिथियों के स्वामी निम्न प्रकार कहे गये हैं-

तिथीशां वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः।

शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी।।

अर्थात् प्रतिपदा तिथि के स्वामी अग्निदेव, द्वितीया तिथि के स्वामी ब्रह्माजी, तृतीया की गौरी पार्वती, चतुर्थी तिथि के स्वामी गणेश, पंचमी तिथि के स्वामी सर्प, षष्ठी तिथि के स्वामी गुह अर्थात् कार्तिकेय, सप्तमी के स्वामी सूर्यदेव, अष्टमी के स्वामी शिव, नवमी की स्वामिनी दुर्गा, दशमी के स्वामी यमराज, एकादशी के स्वामी विश्वेदेव, द्वादशी के स्वामी विष्णु, त्रयोदशी के स्वामी कामदेव, चतुर्दशी के स्वामी शिव तथा पूर्णिमा व अमावस्या के स्वामी चन्द्रदेव हैं। कुछ लोग अमावस्या का स्वामी पितरदेव को कहते हैं। इन तिथियों के स्वामी कहने का प्रयोजन यह है कि जिस तिथि का जो स्वामी है, उस दिन उस देव की प्रतिष्ठा, अर्चना, उपासना इत्यादि कर्म विशेष फलदायी होते हैं। जैसे गणेश जी की उपासना हेतु चतुर्थी विशेष फलदायी होती है।

बोध प्रश्न-सही विकल्प चुनिए -

1. चतुर्थी तिथि की संज्ञा है -

   (क) नन्दा (ख) जया (ग) रिक्ता (घ) पूर्णा

2. कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पंचमी तक की तिथियां होती हैं-

   (क) शुभ (ख) मध्यम (ग) अशुभ (घ) मिश्रित

3. सिद्धयोग होता है यदि शनिवार को निम्न संज्ञक तिथियां हों -

   (क) नन्दा (ख) भद्रा (ग) जया (घ) रिक्ता

4. भद्रासंज्ञक तिथियां निम्न वार में हों तो मृतयोग बनाती हैं -

   (क) रविवार (ख)सोमवार (ग) मंगलवार (घ) बुधवार

5. एकादशीतिथि को यदि सोमवार हो तो उसकी निम्नसंज्ञा होती है-

   (क) अमृत (ख) दग्धा (ग) मासशून्य (घ) हुताशन

6. द्वादशी तिथि के स्वामी हैं-

(क) अग्नि (ख) ब्रह्मा (ग) विष्णु (घ) शंकर

उत्तर - 1 - ग, 2 - क, 3 - घ, 4 - ख, 5- ख, 6 - ग

1.3.4 क्षय एवं वृद्धि तिथि विचार

आप जानते ही हैं कि जब सूर्य और चन्द्र में 12 अंश का अन्तर पडता है तो 1 तिथि होती है। यह अन्तर अर्थात् 1 तिथि का मान औसतन 59 घटी 3 पल का होता है। चान्द्रमास साढे उनतीस

दिन का होता है, जिसमें 30 तिथियां व्यतीत होती हैं। इस प्रकार 12 चान्द्रमास में 354 सावन दिन होते हैं जिसमें 360 तिथियां होती हैं। इस प्रकार 1वर्ष में तिथियों का क्षय एवं वृद्धि होकर लगभग 6 दिन कम हो जाते हैं।

चन्द्रगति के आधार पर तिथि का मान 60 घटी से कम या अधिक होता रहता है। प्राचीनविद्वानों के अनुसार तिथिमान '**बाणवृद्धिः रसक्षयः**'सिद्धान्त के अनुसार न्यूनतम 54 घटी एवं अधिकतम 65 घटी तक होता है। अर्वाचीन विद्वानों के 'सप्तवृद्धिः दशक्षयः' सिद्धान्त के अनुसार तिथि का न्यूनतम मान 50 घटी तथा अधिकतम मान 67 घटी तक हो सकता है। परन्तु यह न्यूनतम एवं अधिकतम मान इससे भी अधिक या कम हो सकता है। सामान्यतः जब तिथि का मान 60 घटी से अधिक हो तो वृद्धि तिथि तथा 60 घटी से कम हो तो क्षयतिथि की सम्भावना होती है।

क्षयतिथि - आप जान ही चुके हैं कि जब तिथि का मान 60 घटी से कम हो तो क्षय तिथि की सम्भावना होती है। पंचांग पत्रक में सूर्योदय के समय विद्यमान तिथि अंकित रहती है। सूर्योदय के समय जो तिथि किसी भी दिन पंचांग में नहीं बतायी गयी हो उसे क्षयतिथि समझना चाहिए। उदाहरण के लिए पंचांग पत्रक नमूना 1 को देखें। इसमें सर्वप्रथम दि. अंकित है, जिसका तात्पर्य अंग्रेजी दिनांक से है। इस कालम में 23 मार्च से अंग्रेजी तारीख हैं। इसके आगे के कालम में वार हैं। उसके आगे तीसरे कालम में ति. अंकित है, जो तिथि को सूचित करते हैं। इसमें प्रतिपदा आदि तिथियों को 1, 2, 3, 4....... इत्यादि क्रम से 15 अर्थात् पूर्णिमा तक अंकित हैं। इसके आगे के कालम में घ./प. लिखा है। जो घटी एवं पल के रूप में तिथि के समाप्ति काल को इंगित करता है। इसके आगे कालम में घ./मि. लिखा है। जिसके नीचे अंकित मान भारतीय स्टैण्डर्ड समय के अनुसार तिथि के समाप्तिकाल को सूचित करते हैं। स्पष्टता के लिए निम्न तालिका देखें।

दि.	वर	ति.	घ/प	घ/मि
4	बुध	12	10/05	प्रा 10/18
5	गुरु	13	03/17	प्रा 7/34
		14	51/55	रा 4/20
6	शुक्र	15	46/25	रा 0/48

पंचांगपत्र के नमूना 1 में देखने पर आप को दिनांक 4 अप्रैल 2012 ई. बुधवार को द्वादशी तिथि 10 घटी 05 पल को समाप्त होती दिखाई दे रही होगी। भारतीय स्टैण्डर्ड समय के अनुसार प्रातः 10 बजकर 18 मिनट पर द्वादशी तिथि समाप्त हो गयी है तथा त्रयोदशी तिथि प्रारम्भ हो गयी है। यही त्रयोदशी तिथि दिनांक 5 अप्रैल गुरुवार को सूर्योदय के पश्चात् 3 घटी 17 पल में समाप्त हो रही है।

भारतीय स्टैण्डर्ड समय के अनुसार त्रयोदशी तिथि का समाप्तिकाल प्रातः 7 बजकर 34 मिनट है। परन्तु 6 अप्रैल शुक्रवार को तिथि वाले कालम में 15 लिखा है जो पूर्णिमा तिथि को सूचित करता है। इस प्रकार 4 अप्रैल को सूर्योदयकालिक तिथि द्वादशी, 5 अप्रैल को त्रयोदशी तथा 6 अप्रैल को पूर्णिमा तिथि होने से चतुर्दशी तिथि लुप्त अर्थात् उसका क्षय होने के कारण यह क्षयतिथि है। परन्तु आप को यह नहीं समझना चाहिए कि त्रयोदशी के पश्चात् तुरन्त ही पूर्णिमा आ गई तथा चतुर्दशी का कुछ भी मान नहीं होगा। वास्तव में 5 अप्रैल को त्रयोदशी के बाद से चतुर्दशी तिथि प्रारम्भ हो रही है। तथा इसी दिन यह 51 घटी 55 पल पर समाप्त हो रही है। भारतीय स्टैण्डर्ड टाइम के अनुसार रात्रि 4 बजकर 20 मिनट पर सूर्योदय से पूर्व ही चतुर्दशी समाप्त हो गयी है। चतुर्दशी समाप्त होते ही पूर्णिमा तिथि प्रारम्भ हो गयी है। इसी कारण 6 अप्रैल को सूर्योदयकालिक पूर्णिमा तिथि पंचांग में अंकित की गयी है। चतुर्दशी तिथि का कुल मान 51/55 - 3/17 = 48/38 है। किन्तु

सूर्योदयकालीन न होने के कारण यहाँ चतुर्दशीतिथि को क्षयतिथि कहा जायेगा। स्पष्टता के लिए

चित्र 1

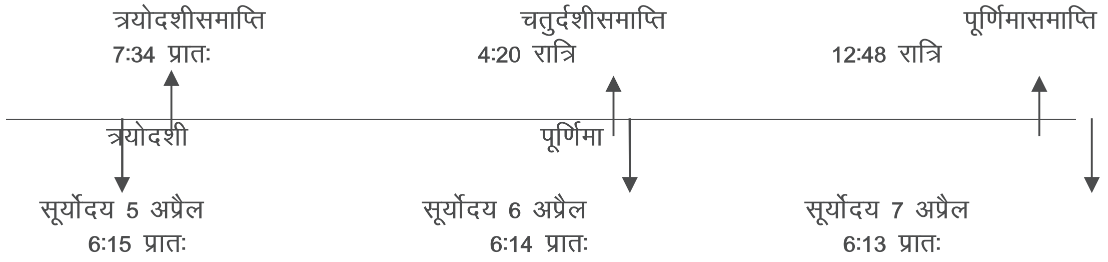

इस चित्र में 5 अप्रैल को प्रातः 6:15 पर सूर्योदय अंकित है। उस समय त्रयोदशी तिथि है, जो प्रातः 7:34 में समाप्त हो रही है। तत्पश्चात् रात्रि 4:20 पर चतुर्दशी तिथि समाप्त हो रही है। इसके बाद 6 अप्रैल को प्रातः 6:14 पर सूर्योदय अंकित है। उस समय पूर्णिमा तिथि है। भारतीयसिद्धान्त ज्योतिष के अनुसार दो सूर्योदय के बीच के काल को सावन दिन कहते हैं। यही सावन दिन व्यावहारिक दिन है। 5 अप्रैल को सूर्योदय के समय त्रयोदशी तथा 6 अप्रैल को सूर्योदय के समय पूर्णिमा तिथि है। सूर्योदय के समय चतुर्दशी तिथि न होने के कारण उसे क्षयतिथि मानी जाती है।

वृद्धि तिथि - आप जानते ही हैं कि जब तिथि का मान 60 घटी से अधिक हो जाता है तो तिथि वृद्धि की सम्भावना रहती है। पंचांग पत्रक में सूर्योदय के समय विद्यमान तिथि अंकित रहती है।

सूर्योदय के समय जो तिथि किन्हीं दो दिन लगातार पंचांग में बतायी गयी हो उसे वृद्धितिथि समझना चाहिए। उदाहरण के लिए पंचांग पत्रक नमूना 1 देखें।

दि.	वार	ति.	घ/प	घ/मि	सू.उ.
26	सोम	4	57/37	रा 5/28	6/25
27	मंग	5	60/00	सम्पूर्ण	6/24
28	बुध	5	04/20	प्रा 8/07	6/23
29	गुरु	6	10/25	प्रा 10/32	6/22

26 मार्च सोमवार को चतुर्थी तिथि 57 घटी 38 पल तक अंकित है। भारतीयस्टैण्डर्ड टाइम के अनुसार यह तिथि 27 मार्च को सूर्योदय से पूर्व ही 5:28 रात्रि में समाप्त हो रही है। इसके बाद पंचमी आरम्भ होकर 27 मार्च को सूर्योदय के समय विद्यमान है। यही पंचमी तिथि 27 मार्च को दिनरात रहकर दूसरे दिन 28 मार्च को भी सूर्योदय काल में भी विद्यमान रहकर उस दिन 4 घटी 20 पल अर्थात् भा.स्टै.टा.के अनुसार प्रातः 8:07 पर समाप्त हो रही है। इस प्रकार पंचमी तिथि 27 मार्च एवं 28 मार्च को दोनों ही दिन सूर्योदय काल में विद्यमान है। जिस कारण पंचांग पत्रक में दोनों ही दिन पंचमी तिथि अंकित है। अतः यहाँ पंचमी तिथि की वृद्धि कही जायेगी। यहाँ पंचमी तिथि का सम्पूर्ण मान 66 घटी 43 पल है। स्पष्टता के लिए निम्न चित्र देखें।

चित्र 2

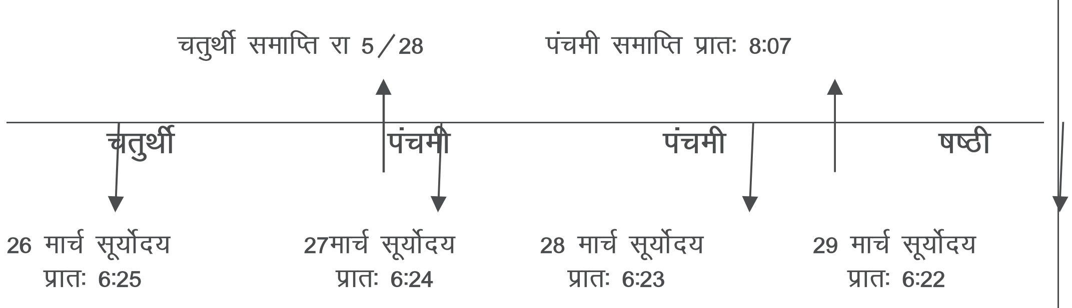

बोध प्रश्न-सही विकल्प चुनिए -

1. 1 तिथि का औसतन मान का होता है -
   (क) 52 घटी 3 पल (ख) 59 घटी 3 पल
   (ग) 60 घटी 3 पल (घ) 60 घटी 3 पल
2. 12 चान्द्रमास में सावन दिन होते हैं -

(क) 354 (ख) 360

(ग) 365 (घ) 372

3. **'बाणवृद्धिः रसक्षयः'** सिद्धान्त के अनुसार न्यूनतम तिथिमान होना चाहिए -

(क) 54 घटी (ख) 56 घटी

(ग) 59 घटी (घ) 60 घटी

4. जो तिथि किसी भी दिन सूर्योदय के समय न हो उसे समझना चाहिए -

(क) वृद्धितिथि (ख) क्षयतिथि

(ग) समतिथि (घ) अधितिथि

5. जो तिथि किन्हीं दो सूर्योदय के समय लगातार पंचांग में बतायी गयी हो उसे समझना चाहिए-

(क) समतिथि (ख) वृद्धितिथि

(ग) क्षयतिथि (घ) न्यून तिथि

उत्तर - 1. ख, 2. क, 3. क,4. ख, 5. ख

1.3.5 तिथियों की व्यावहारिकता –

भारतीय हिन्दू परम्परा में मनाये जाने वाले अधिकांश व्रत, त्यौहार एवं उत्सव चान्द्रमान के अनुसार ही मनाये जाते हैं। आप जानते ही हैं कि गणेश व्रत चतुर्थी तिथि से, दुगापूजन अष्टमी से, दीपावली अमावस्या से, होली पूर्णिमा से, नवरात्रिपूजन प्रतिपदा से नवमी तिथि तक, वसन्तपंचमी पंचमी तिथि से जुडे हुए हैं। इसी प्रकार एकादशी व्रत, अक्षय तृतीया, गंगा दशहरा, विजयादशमी इत्यादि व्रत, त्यौहार किसी न किसी तिथिविशेष से जुड़े हुए हैं। वैदिक काल से ही यज्ञ- यागादि कार्यों के निष्पादन के लिए तिथि ज्ञान आवश्यक रहा है। तिथियों के ज्ञान से ही अष्टकायज्ञ, पौर्णमास्ययज्ञ, अमावस्या यज्ञ इत्यादि वैदिक यज्ञ सम्पन्न किए जाते रहे हैं। इसी प्रकार मृतपूर्वजों की तृप्ति एवं उनके प्रति श्रद्धा एवं कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उनको याद किए जाने के लिए धर्मशास्त्र के अनुसार आयोजित किए जाने वाले सांवत्सरिकश्राद्ध, महालय श्राद्ध, पार्वण श्राद्धादि का सम्यक् निष्पादन भी तिथिज्ञान के बिना सम्भव नहीं है। आप जानते ही हैं कि रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, परशुराम जयन्ती, शंकराचार्य जयन्ती, महावीर जयन्ती, बुद्ध जयन्ती इत्यादि महापुरुषों की जयन्तियां भी अधिकांशतः तिथियों के आधार पर सुनिश्चित की जाती है। तिथिज्ञान के बिना सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्मों का सम्पादन सम्भव नहीं है। मुण्डन, उपनयन, विवाहादि समस्त हिन्दूसंस्कारों के लिए मुहूर्तशोधन में भी तिथिज्ञान की आवश्यकता पड़ती ही है। छोटे-बडे किसी भी प्रकार के मुहूर्त का निर्णय तिथिज्ञान के बिना नहीं हो पाता है। इस प्रकार हिन्दू धर्मावलम्बियों के लिए तिथियों का महत्व स्पष्ट ही है।

तिथियों का महत्व न केवल हिन्दूधर्म में ही है अपितु सिख, बौद्ध, जैनमतावलम्बियों में भी है। कार्तिक पूर्णिमा, कार्तिक अमावस्या, वैशाख पूर्णिमा आदि तिथियों का ज्ञान भी इनके व्रत, पर्वोत्सवादि में आवश्यक होता है। मुस्लिमधर्म में रमजान इत्यादि के निर्धारण में तिथिज्ञान की आवश्यकता होती है। यद्यपि वहाँ चन्द्रदर्शन की परम्परा भी विद्यमान है। मुस्लिम पंचांग विशुद्ध चान्द्रमान पर आधारित होता है। अतः तिथिज्ञान का उनका भी प्रयास रहता है। इस प्रकार तिथियों की व्यावहारिकता स्पष्ट है।

बोध प्रश्न-सही विकल्प चुनिए -

1. निम्न तिथि का गणेशव्रत से सम्बन्ध है -
   (क) द्वितीया (ख) चतुर्थी (ग) अष्टमी (घ)एकादशी
2. पूर्णिमा तिथि से निम्न पर्व का सम्बन्ध है -
   (क) वैशाखी (ख) दीपावली (ग) होली (घ) दुर्गापूजन
3. निम्न पर्व में तिथि का महत्व नहीं है -
   (क) परशुराम जयन्ती (ख) महावीर जयन्ती (ग) बुद्ध जयन्ती (घ) ईसा मसीहजयन्ती
4. मुस्लिम पंचांग आधारित हैं -
   (क) सौरमान पर (ख) सावनमान पर (ग) चान्द्रमान पर (घ) नाक्षत्रमान पर

उत्तर- 1. ख, 2. ग, 3. घ, 4. ग

अभ्यासप्रश्न -

1. सही या गलत बताईये-

क. जिस दिन पूर्णिमा शुक्लचतुर्दशी से युक्त होती है, उस पूर्णिमा को अनुमति कहते हैं।

ख. एक अमावस्या के अन्त से दूसरे अमावस्या के अन्त तक के बीच के समय को ही सौरमास कहते हैं।

ग. सप्तमीतिथि के स्वामी सूर्यदेव हैं।

घ. द्वादशी को रविवार हो तो अधम (क्रकच)योग बनता है।

ङ सूर्योदय के समय जो तिथि किसी भी दिन पंचांग में नहीं बतायी गयी हो उसे वृद्धितिथि समझना चाहिए।

2. रिक्तस्थान भरिये -

क. ....के अन्त में चन्द्र सूर्य के निकट रहता है। इस समय सूर्य एवं चन्द्र का पूर्वापर अन्तर .... अंश होता है।

ख. दोनों पक्षों की 2, 7, 12 तिथियों की ....संज्ञा है।

ग. भारतीयसिद्धान्तज्योतिष के अनुसार दो सूर्योदय के बीच के काल को ....दिन कहते हैं।

घ. फाल्गुनमास में कृष्णपक्ष की...............एवं शुक्लपक्ष की ....तिथि मासशून्य संज्ञक हैं।

ङ सूर्योदय के समय जो तिथि किन्हीं दो दिन लगातार पंचांग में बतायी गयी हो उसे ....समझना चाहिए।

च. दीपावलीपर्व का सम्बन्ध ....तिथि से है।

1.4 तिथियों का सैद्धान्तिक स्वरूप

1.4.1 तिथि का स्वरूप –

आप जानते ही हैं कि तिथियां सूर्य और चन्द्र के गत्यन्तर पर आधारित हैं। पृथ्वी से आकाश निरीक्षण करने पर ग्रहनक्षत्रों की पूर्व से पश्चिम की ओर गति दिखाई देती है। निरन्तर निरीक्षण करने पर आपको नक्षत्रों के सापेक्ष ग्रह पश्चिम से पूर्व की ओर अपना स्थान परिवर्तित करते दिखाई देगें। इसे ग्रहों की पूर्वाभिमुखी गति कहते हैं। यही पूर्वाभिमुखी गति सूर्य एवं चन्द्र की भी दिखाई देती है। सूर्य की अपेक्षा चन्द्र पृथ्वी के अधिक निकट है। अतः सूर्य की कक्षा ऊपर अर्थात् दूर है तथा चन्द्र की कक्षा उससे नीचे अर्थात् निकट है। सूर्य की दिखाई देने वाली पूर्वाभिमुखी गति वस्तुतः पृथ्वी की कक्षीय गति है। जिस कारण किसी नक्षत्र के साथ स्थित सूर्य अपने पूर्वाभिमुखी गति से लगभग 365 दिन में पुनः उसी नक्षत्र के सामने आ जाता है। इसे भगणपूर्ति अर्थात् 12 राशियों का भोगकाल कहते हैं। इसी प्रकार चन्द्र लगभग 27 दिन में भगणपूर्ति कर लेता है। पूर्वाभिमुख जाते हुए सूर्य और चन्द्र का जब पूर्वापर अन्तर शून्य हो जाता है तो उसे सूर्य व चन्द्र का योग कहा जाता है। इसे ही अमावस्या का अन्त कहा जाता है। कहा भी गया है - ‘**दर्शःसूर्येन्दुसंगमः**’(अमरकोश 1/48)। इस अमान्त के समय सूर्य एवं चन्द्र के राश्यादि मान समान होते हैं। इसके बाद शीघ्रगति से चलता हुआ चन्द्र कुछ दिनों के बाद सूर्य से पुनः जब योग करता है तो दूसरा अमान्त हो जाता है। यही अमान्त से अमान्त तक का समय चान्द्रमास कहलाता है। इस एक चान्द्रमास में जब तक सूर्य अपनी पूर्वाभिमुखी गति से एक राशि का भोग करता दिखाई देता है, तब तक चन्द्र अपनी शीघ्रगति से 12 राशियों को पार करते हुए उस सूर्य राशि को भी पार कर लेता है तथा सूर्य से संयोग कर लेता है। अर्थात् सूर्य जब तक 1 राशि पार करता है तब तक चन्द्र 13 राशियों को पार कर लेता है। फलतः

एक चान्द्रमास में सूर्य एवं चन्द्र की गतियों का अन्तर 13राशि - 1राशि = 12 राशि हो जाता है। 12 राशि अर्थात् 360 अंश।

सामान्यतः 30 दिनों का एक मास होता है। अतः अमान्त से अमान्त तक के चान्द्रमास में भी 30 चान्द्रदिनों की कल्पना की गई है। इन्हीं चान्द्रदिनों को हमारे पूर्वज ऋषियों ने तीस तिथियों के नाम से अभिव्यक्त किया है। आप जानते ही हैं कि 1 चान्द्रमास को चन्द्र कलाओं के बढने एवं घटने के क्रमानुसार शुक्लएवं कृष्ण पक्ष इन दो विभागों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक पक्ष में 15-15 तिथियां परिगणित होती हैं। जो प्रतिपदादि संज्ञाओं के नाम से निम्न प्रकार से जानी जाती हैं -

शुक्लपक्ष में तिथियां -

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा।

कृष्णपक्ष में तिथियां -

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं अमावस्या।

आप जान चुके हैं कि एक चान्द्रमास की 30 तिथियों में सूर्य और चन्द्र का गत्यन्तर 12 राशि अर्थात् 360 अंश होता है। अतः त्रैराशिक अनुपात से 1 तिथि में सूर्य व चन्द्र का गत्यन्तर आसानी से जाना जा सकता है। जैसे कि - तीस तिथियों में सूर्य व चन्द्र का गत्यन्तर 360 अंश होता है तो 1 तिथि में सूर्य व चन्द्र का गत्यन्तर कितना होगा ?

1 तिथि = $\frac{360 \times 1}{30}$ = 12 अंश (1 तिथि में सूर्य व चन्द्र का गत्यन्तर अंशात्मक मान)

अर्थात् सूर्य व चन्द्र की गतियों में जब 12 अंश का अन्तर हो जाता है तब 1 तिथि की समाप्ति होती है। इस प्रकार 30 तिथियों की समाप्ति होते होते सूर्य व चन्द्र का अन्तर 360 अंश या 12 राशि हो जाता है। तब अमान्त में पुनः सूर्य व चन्द्र दोनों का योग हो जाता है। इस 12 अंश को कलात्मक मान में परिवर्तित करने से 1 तिथि का मान 60 × 12 = 720 कला हो जाता है। इसी कारण सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है- 'खाश्विशैलास्तथा तिथेः' (सू.सि. 2/64)। उपर्युक्त प्रकार से 1 तिथि का कलात्मक मान ज्ञात हो जाने पर सूर्य व चन्द्र के गत्यन्तर के आधार पर सभी तिथियों का घट्यात्मक अथवा घंटा-मिनटात्मक मान साधन करने की प्रविधि हमारे ऋषि- मुनियों एवं आचार्यों ने दी है। जैसे ग्रहलाघव में कहा गया है -

'भक्ता व्यर्कविधोर्लवा यमकुभिर्याता तिथिः स्यात्फलं शेषं.........।'(ग्रहलाघव 2/8-9)। अमान्त के बाद शीघ्रगतिक चन्द्र जितने समय में सूर्य से 720 कला आगे होता है, उतने समय में जितनी घट्यादि (अथवा घंटा-मिनटात्मकादि) मान बीत जाता है वही प्रतिपदा का मान होता है। इसी तरह सूर्य से चन्द्र का 12 -12 अंश का अन्तर होने पर एक - एक तिथि हुआ करती है।

बोध प्रश्न-सही विकल्प चुनिए -

1. चन्द्र का एक भगणपूर्ति काल प्रायः होता है -

(क) 27 दिन (ख) 30 दिन

(ग) 354 दिन (घ) 360 दिन

2. 'दर्शःसूर्येन्दुसंगमः' यह कथन है -

(क) ग्रहलाघव का (ख) अमरकोश का

(ग) सूर्यसिद्धान्त (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. 1 तिथि का मान होता है -

(क) 12 कला (ख) 30 कला

(ग) 360 कला (घ) 720 कला

4. 1 चान्द्रमास में चन्द्र अपनी पूर्वाभिमुखी गति से पार कर लेता है -

(क) 1 राशि (ख) 12 राशि

(ग) 13 राशि (घ) 30 राशि

उत्तर- 1 - क, 2 - ख, 3 - घ, 4 - ग.

1.4.2 चन्द्र एवं सूर्य का स्थानान्तर तथा बिम्बान्तर विचार

जैसा कि आप जान ही चुके हैं कि पृथ्वी में स्थित होने के कारण हमें सूर्य नक्षत्रों के सापेक्ष पूर्वाभिमुख गति करता हुआ दिखाई देता है। सूर्य का यह परिभ्रमण जिस वृत्त में होता दिखाई देता है उसे क्रान्तिवृत्त कहते हैं। वस्तुतः इसी क्रान्तिवृत्त में पृथ्वी का वार्षिक परिभ्रमण होता है। इसी प्रकार चन्द्र का पूर्वाभिमुख भ्रमण जिस वृत्त में होता है उसे चन्द्रविमण्डल कहते हैं। हमें इनका याम्योत्तर अन्तर दो स्थानों पर शून्य आभासित होता है अर्थात् पृथ्वी से हमें यह दोनों आभासिक वृत्त दो स्थानों पर कटते हुए दिखाई देते हैं। क्रान्तिवृत्त के जिस आभासिक बिन्दु से चन्द्र क्रान्तिवृत्त के उत्तर की ओर (नीचे से ऊपर)जाता दिखाई देता है उस बिन्दु को राहु कहते हैं। इसी प्रकार जिस आभासिक बिन्दु से चन्द्र क्रान्तिवृत्त के दक्षिण की ओर (ऊपर से नीचे)जाता दिखाई देता है उस बिन्दु को राहु कहते हैं। क्रान्तिवृत्त एवं विमण्डल के इन कटते हुए स्थानों को ही पात कहते हैं। इस कारण राहु व

केतु कोई दृश्यमान ग्रह नहीं हैं केवल आभासिक बिन्दुमात्र हैं। ये दोनों एक दूसरे से सदा 6 राशि के अन्तर पर रहते हैं। साथ ही हमेशा दूसरे ग्रहों की दिशा से विलोम क्रम में चलते हैं। जब चन्द्रमा पूर्णिमा या अमावस्या के दिन इन्हीं दो बिन्दुओं के पास पहुंचता है तो चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण होता है। इसी कारण राहु व केतु को भी ग्रह माना गया है। स्पष्टता के लिए निम्न चित्र देखें -

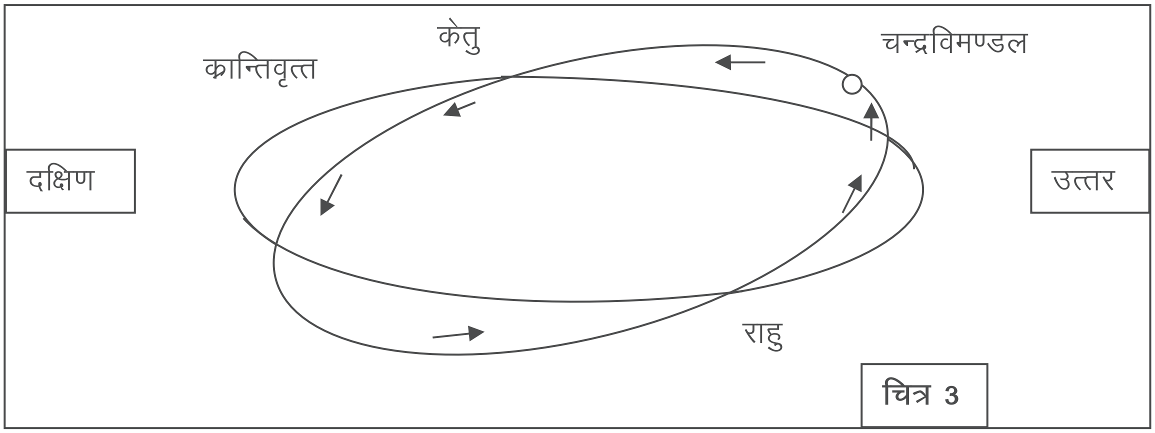

चित्र 3

चन्द्रविमण्डल या चन्द्रकक्षा क्रान्तिवृत्त को लगभग 5 अंश का कोण बनाते हुए काटती है। अर्थात् जहाँ चन्द्र का मार्ग सूर्य (वस्तुतः पृथ्वी) के मार्ग को काटता है वहाँ लगभग 5 अंश का कोण बनता है। इसी कोण को चन्द्र का परम विक्षेप या शर कहते हैं। आंग्ल भाषा में इसे Celestial Latitude कहते हैं।

विशेष- आप जानते ही हैं कि ज्योतिश्शास्त्र में गणितीयसुविधा हेतु पृथ्वी को स्थिर मानकर सूर्य को चलता हुआ माना गया है। चाहे सूर्य को स्थिर मानें या पृथ्वी को, उनकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता है। सूर्य को चलता हुआ मानने पर गणितकार्य में सुविधा होती है। इसका कारण हमारी पृथ्वी पर स्थिति है। इसलिए आधुनिक विज्ञान में भी पृथ्वीकेन्द्रिक होने के कारण सूर्योदय सूर्यास्त इत्यादि शब्दावली का प्रयोग मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन से आप चन्द्र एवं सूर्य की कक्षाओं के बारे में भलीभांति जान चुके हैं। यद्यपि चन्द्र अपनी कक्षा में रहता है तथापि उसकी स्थिति का विचार क्रान्तिवृत्त द्वारा ही किया जाता है। कहा जा सकता है कि क्रान्तिवृत्त ग्रहों की स्थित्यादि को जानने का पैमाना है। सैद्धान्तिक रूप में अपने विमण्डल में स्थित चन्द्र की स्थिति (चित्र 4 में गो ग्र च **गो1** वृत्तखण्ड चन्द्रविमण्डल है तथा **ग्र** स्थान चन्द्र की स्थिति दिखाता है।) को क्रान्तिवृत्त (चित्र 4 में **गो स्था क गो1** वृत्तखण्ड है।) में समझने के लिए हमें निम्नलिखित कुछ और खगोलीय परिभाषाओं को जानना होगा।

नाडीवृत्त- जिस प्रकार पृथ्वी के दो धुरवस्थान हैं उसी प्रकार आकाश में पृथ्वी के ध्रुवों के समानान्तर पर आकाशीय धुरवस्थान परिकल्पित है। आकाशीय उत्तर धुरवस्थान या उसके निकट में रहने वाले तारे को ही ध्रुवतारा कहा जाता है। आकाशीय धुरवस्थान से 90 अंश अक्षांश की दूरी पर नाडीवृत्त रहता है। यह पृथ्वी के विषुवत्वृत्त के समानान्तर ही आकाश में कल्पित है। सूर्य विषुवदिन अर्थात् लगभग 21मार्च एवं 22 सितम्बर को इसी वृत्त में रहता है। जैसे चित्र में गो वि ज ख गो1 वृत्तखण्ड नाडीवृत्त है। धुरवस्थान से गये हुए वृत्त को धुवप्रोतवृत्त कहते हैं। जैसे चित्र में ध्रु स्था वि वृत्तखण्ड है।

क्रान्ति- आकाशीय नाडीवृत्त से क्रान्तिवृत्तीय ग्रह का अन्तर नापा जाता है कि क्रान्तिवृत्तीयग्रह नाडीवृत्त से कितने अन्तर पर उत्तर या दक्षिण में स्थित है। जैसे चित्र में स्था वि वृत्तखण्ड है। परमक्रान्ति का मान लगभग 24 अंश है। जैसे चित्र में क ख वृत्तखण्ड है।

सम्पात - आकाशीय नाडीवृत्त एवं क्रान्तिवृत्त एक दूसरे को लगभग साढे तेईस अंश का कोण बनाते हुए दो स्थानों को काटते हैं। उन दोनों को सम्पात बिन्दु या विषुव बिन्दु कहते हैं। ये दोनों सम्पात आभासिक बिन्दु है । जैसे चित्र में गो एवं गो1 बिन्दु हैं। मेष का आरम्भ बिन्दु जिसे मेषसम्पात या उत्तर सम्पात कहते हैं, उससे आकाशीय पूर्वापर देशान्तर का नाप होता है । यह पश्चिम से पूर्व की ओर नापा जाता है। अर्थात् पश्चिम से पूर्व की ओर मेष, वृष आदि राशियों की स्थिति जाननी चाहिए।

अक्षांश या शर - क्रान्तिवृत्त से उत्तर या दक्षिण स्थित ग्रहादि के अन्तर को अक्षांश या शर कहते हैं। जैसे चित्र में ग्र स्था है। सूर्य क्रान्तिवृत्त में रहता है अतः उसका शर नहीं होता है। इसी प्रकार जब चन्द्र आदि ग्रह अपने पातों पर रहते हैं तो उनकी स्थिति क्रान्तिवृत्त में होने के कारण उस समय शर नहीं होता। इसे ही शर का अभाव या शराभाव कहते हैं। जैसे चित्र में राहु, केतु या गो, गो1 स्थान है। परमशर का मान लगभग 5 अंश है। जैसे चित्र में च क वृत्तखण्ड है।

कदम्ब- जिस प्रकार नाडीवृत्त से 90 अंश अक्षांश की दूरी पर आकाशीय धुरवस्थान है। उसी प्रकार क्रान्तिवृत्त से 90 अंश अक्षांश की दूरी पर दो कदम्बस्थानों की परिकल्पना की गयी है। कहा जा सकता है कि क्रान्तिवृत्त का धुरव या पृष्ठीयकेन्द्र कदम्बस्थान है। जैसे चित्र में कदम्ब बिन्दु है।कदम्बस्थान से गये हुए वृत्त को कदम्बप्रोतवृत्त कहते हैं। जैसे चित्र में कदम्ब ग्र स्था ज वृत्तखण्ड है। चित्र 4 को देखने से आप समझ ही गये होंगे कि चन्द्र की स्थिति वस्तुतः चन्द्रविमण्डल **गो ग्र च**

गो1में होती है। परन्तु उसकी स्थिति हम क्रान्तिवृत्त गो स्था क गो1 में लाते हैं। जिसके लिए त्रैराशिक अनुपात किया जाता है। यथा-

ज्या गो च (त्रिज्या अर्थात् विमण्डल एवं क्रान्तिवृत्त के सम्पात से 90 अंश) में ज्या च क (परमशर) प्राप्त होता है तो ज्या गोग्र (विमण्डल में सम्पात से चन्द्र की वर्तमान स्थिति) में क्या ? उत्तर में ज्या ग्रस्था मिलेगा। इसका चाप ग्र स्था है। जिसे शर कहते हैं। इस प्रकार शर के अग्र बिन्दु स्था बिन्दु में चन्द्र की स्थिति क्रान्तिवृत्त में कही जायेगी। क्रान्तिवृत्तीय स्था बिन्दु की स्थिति को जब हम कालज्ञापक नाडीवृत्त में लाते हैं तो ध्रुवप्रोतवृत्त में क्रान्ति स्था वि के अग्रविन्दु वि में उसकी स्थिति कही जायेगी।

इस प्रकार क्रान्तिवृत्त में चन्द्र की शराग्र में स्थिति को स्थानबिम्ब कहा जाता है। आप जानते ही हैं कि सूर्य की स्थिति तो क्रान्तिवृत्त में रहती ही है। अतः क्रान्तिवृत्त में चन्द्र के स्थानबिम्ब एवं सूर्य की स्थिति के अन्तर के द्वारा ही तिथि का अंशात्मक साधन किया जाता है। जिसको घट्यादि में जानने के लिए नाडीवृत्त में परिवर्तित किया जाता है।

बोध प्रश्न-सही विकल्प चुनिए -

1. चन्द्रबिम्ब का वास्तविक भ्रमण होता है -

(क) क्रान्तिवृत्त में (ख) नाडीवृत्त में

(ग) चन्द्रविमण्डल में (घ) याम्योत्तर में

2. क्रान्तिवृत्त से उत्तर या दक्षिण स्थित ग्रहादि के अन्तर को कहते हैं -

(क) शर (ख) क्रान्ति

(ग) त्रिज्या (घ) राहु

3. क्रान्तिवृत्त से 90 अंश अक्षांश की दूरी पर परिकल्पना की गयी है-

(क) खमध्यस्थान की (ख) धुरवस्थान की

(ग) समस्थान की (घ) कदम्बस्थान की

4. क्रान्तिवृत्त में चन्द्र की शराग्र में स्थिति को कहा जाता है -

(क) राहुबिम्ब (ख) शरबिम्ब

(ग) स्थानबिम्ब (घ) धुरवबिम्ब

5. कालज्ञापक वृत्त है -

(क) क्रान्तिवृत्त (ख) नाडीवृत्त

(ग) चन्द्रविमण्डल (घ) याम्योत्तर

उत्तर- 1 - ग, 2 - क, 3 - घ, 4 - ग. 5 - ख.

1.4.3 तिथि का मध्यम एवं स्पष्ट मान विचार

आप जानते ही हैं कि चान्द्रमास लगभग साढे उनतीस दिनों का होता है। जिसमें 30 तिथियां होती हैं। क्योंकि 1 दिन में 60 घटी होती हैं। अतः साढे उनतीस दिनों को यदि हम घटी में परिवर्तित करते हैं, तो 29) × 60 = 1770 घटी । इसमें 30 का भाग देने पर 1 तिथि का औसतन मान 59 घटी आता है। विशुद्ध रूप में 1 तिथि का औसतन मान 59 घटी 3 पल का होता है। इसे तिथि का मध्यममान कहा जाता है। परन्तु चन्द्र एवं सूर्य का क्रान्तिवृत्तीय अन्तर नाडीवृत्त में परिवर्तित करने पर घट्यादि मान में न्यूनाधिकता होती रहती है। इसका मुख्य कारण सूर्य एवं चन्द्र की मध्यम एवं स्पष्ट गतियों में अन्तर है। अतः तिथि का मान कभी 66 घटी तक हो जाता है तथा कभी न्यूनतम मान 50 घटी तक रहता है।

इस प्रकार तिथि के मध्यम मान से तात्पर्य यह है कि औसतन एक तिथि 59 घटी में समाप्त हो जाती है। परन्तु पंचांग में तिथि का स्पष्टमान यदि आप देखें तो पायेंगे कि यह 59 घटी से कम या ज्यादा समय में समाप्त हो रही है। मध्यम एवं स्पष्टमान के अन्तर को आप इस प्रकार समझ सकते हैं कि एक कक्षा में विभिन्न आयुवर्ग के बालक हैं। उनकी औसत आयु निकालने के लिए आप सभी की आयुसंख्या को जोडकर उसमें कुल छात्रों की संख्या का भाग देते हैं। इस प्रकार कक्षा के छात्रों की औसतन आयु निकल जाती है। परन्तु औसतन आयु के बराबर ही सबकी आयु नहीं होती। कुछ की आयु औसतन आयु से कम एवं कुछ की ज्यादा होती है। इसी प्रकार तिथि के मध्यम एवं स्पष्ट मान के अन्तर को भी आप समझ गये होंगे।

बोध प्रश्न- सही विकल्प चुनिए -

1. एक तिथि का औसतन मान होता है -

(क) 55 घटी 3 पल (ख) 57 घटी 3 पल
(ग) 59 घटी 3 पल (घ) 61 घटी 3 पल

2. एक चान्द्रमास में घटियां होती है -

(क) 1670 (ख) 1770
(ग) 1870 (घ) 1970

3. तिथि का अधिकतम मान हो सकता है -

(क) 55 घटी (ख) 60 घटी
(ग) 63 घटी (घ) 66 घटी

4. तिथि का न्यूनतम मान हो सकता है -

(क) 40 घटी (ख) 45 घटी

(ग) 50 घटी (घ) 55 घटी

उत्तर- 1 - ग, 2 - ख, 3 - घ, 4 - ग.

1.4.4 तिथिसाधनविचार

यह तो आप जानते ही हैं कि क्रान्तिवृत्त में जब चन्द्र का स्थान बिम्ब एवं सूर्यबिम्ब एक ही राशि, अंश, कला एवं विकला में होते हैं तो अमावस्या की समाप्ति होती है। सूर्य की गति से चन्द्र की गति तीव्र है। अतः जब दोनों का अन्तर बढने लगता है तो 1 तिथि का आरम्भ होने लगता है। यही प्रतिपदा तिथि का समय होने लगता है। जब अन्तर बढते हुए 12 अंश का हो जाता है तो प्रतिपदातिथि पूर्ण हो जाती है। इस प्रकार प्रतिपदातिथि के समाप्ति के बाद द्वितीया तिथि का आरम्भ हो जाता है। वहॉ से 12 अंश के अन्तर के बाद द्वितीया की समाप्ति होकर तृतीयातिथि आरम्भ हो जायेगी। इसी प्रकार 12-12 अंश के अन्तर से तिथियां होती हैं, परन्तु ये अंशात्मक तिथियां क्रान्तिवृत्तीय होती हैं। इससे पूर्व आप पढ ही चुके हैं कि क्रान्तिवृत्तीयतिथियों का घट्यात्मकादि मान जानने के लिए उन्होंने नाडीवृत्त में परिवर्तित करना होता है। क्योंकि नाडीवृत्त ही कालज्ञान कराने वाला वृत्त है। इस प्रकार तिथिसाधन का ज्ञान होता है।

तिथिसाधन हेतु आवश्यक मान - अभीष्ट समय का तात्कालिक राश्यादि चन्द्र स्पष्ट एवं सूर्य स्पष्ट तथा सूर्य एवं चन्द्र की स्पष्ट गतियां।

तिथिसाधन विधि - सर्वप्रथम अभीष्टसमय में तात्कालिक चन्द्र एवं सूर्य का राश्यादि स्पष्ट निकालते हैं। चन्द्र की राश्यादि को अंशादि में परिवर्तित करते हैं। इसी प्रकार सूर्य की राश्यादि को भी अंशादि में परिवर्तित कर देते हैं। फिर अंशादि चन्द्र में से अंशादि सूर्य को घटाकर प्राप्त मान में 12 का भाग देते हैं। अब आप प्राप्त लब्धि को गत तिथिसंख्या जानें। गततिथि संख्या में एक जोडने पर वर्तमान तिथि का ज्ञान होता है। जो शेष अंशादि हैं वह तिथि का भुक्तमान होता है। 12 अंश में से भुक्तमान घटाने पर अंशादि भोग्यमान मिलता है। अब आप अंशादि भुक्तमान एवं भोग्यमान को विकलात्मक बनायें।

चन्द्र की स्पष्टगति में से सूर्य की स्पष्टगति को घटाकर दोनों का कलादि गत्यन्तर प्राप्त होता हैं। इस गत्यन्तर को भी विकलात्मक बनायें। तत्पश्चात् आप विकलात्मक भुक्तमान को 60 से गुणाकर विकलात्मक गत्यन्तर से भाग देकर घट्यादि भुक्तकाल प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार आप विकलात्मक भोग्यमान को 60 से गुणाकर विकलात्मक गत्यन्तर से भाग देकर घट्यादि भोग्यकाल प्राप्त कर सकते हैं। भुक्तमान एवं भोग्यमान का योग करने पर तिथि का सम्पूर्णमान प्राप्त होता है।

उदाहरण - सूर्य- 01|05|42|37, चन्द्र - 06|24|15|03, सूर्यगति- 57|36, चन्द्रगति- 819|00

क्योंकि 1 राशि में 30 अंश होते हैं। अतः सूर्य की राशि 01को 30 से गुणा किया तो 30 अंश प्राप्त हुए। इसमें राश्यादि स्पष्ट सूर्य के अंशमान 05 जोडने पर कुल अंश 35 हुए।

अतः अंशादि सूर्य = 35|42|37

इसी प्रकार चन्द्र की राशि 06 ×30=180, इसमें राश्यादि चन्द्र के अंशमान 24 जोडने पर कुल अंश 204 हुए।

अतः अंशादि चन्द्र = 204|15|03

(अंशादिचन्द्र - अंशादिसूर्य) ÷12 = लब्धि गततिथिसंख्या, शेष भुक्तमान

(204|15|03 - 35|42|37) ÷12 =लब्धि 14 गततिथिसंख्या, गततिथिसंख्या में एक जोडने पर वर्तमानतिथि पूर्णिमा होती है।

शेष अंशादि 00|32|26 **पूर्णिमा का भुक्तमान।**

12-00|32|26 = 11|27|34 अंशादि **पूर्णिमा का भोग्यमान।**

क्योंकि 1 अंश में 60 कला होती हैं। अतः भुक्तमान के अंश 00 को 60 से गुणने तथा उसमें अंशादि भुक्तमान के 32 कला जोडने पर कुल 32 कला हुए। 1 कला में 60 विकला होने के कारण पुनः 32 कला को 60 से गुणने पर 1920 विकला हुई। इसमें पूर्वोक्त अंशादिभुक्तमान के 26 विकला जोडने पर सम्पूर्ण विकलात्मक भुक्तमान 1946 हुआ।

इसी प्रकार भोग्यमान के अंश 11 को 60 से गुणने तथा उसमें अंशादि भुक्तमान के 27 कला जोडने पर कुल 687 कला हुए। पुनः 687 कला को 60 से गुणने पर 41220 विकला हुई। इसमें पूर्वोक्त अंशादिभोग्यमान के 34 विकला जोडने पर सम्पूर्ण विकलात्मक भोग्यमान 41254 हुआ।

चन्द्रगति 819|00 - सूर्यगति 57|36 = 761|24 गत्यन्तर कलात्मक।

761 × 60 + 24 = 45684 विकलात्मक गत्यन्तर।

अब भुक्तादि मान को घट्यात्मक बनाते हैं-

विकलात्मक भुक्तमान 1946 × 60 = 116760 इसमें विकलात्मक गत्यन्तर 45684 का भाग देने पर -

45684) 116760 (2 घटी

91368

25392 × 60 =1523520

45684) 1523520 (33 पल

137052

153000

137052

15948 शेष

इस प्रकार गणित द्वारा भुक्तकाल 2 घटी 33 पल आया।

संक्षेप में सूत्र (विकलात्मक भुक्तमान × 60) विकलात्मक गत्यन्तर = घट्यादि भुक्तकाल

पुनःउपर्युक्त प्रकार से गणित करने पर भोग्यकाल आता है।

विकलात्मक भोग्यमान 41254 × 60 = 2475240 इसमें विकलात्मक गत्यन्तर 45684 का भाग देने पर

45684) 2475240 (54 घटी

228420

191040

182736

8304× 60 = 498240

45684) 498240 (10 पल

45684

41400

00000

41400 शेष

इस प्रकार गणित द्वारा भोग्यकाल 54 घटी 10 पल आया।

संक्षेप में सूत्र (विकलात्मक भोग्यमान × 60) ÷ विकलात्मक गत्यन्तर = घट्यादि भोग्यकाल

भुक्तकाल 2 घटी 33पल में भोग्यकाल 54घटी 10 पल जोडने पर तिथि का सम्पूर्ण मान 56 घटी 43 पल होता है।

बोध प्रश्न-सही विकल्प चुनिए –

1. एक राशि में अंश होते हैं -

(क) 12 (ख) 30

(ग) 60 (घ) 180

2. एक कला में विकलाएं होती हैं -

(क) 12 (ख) 30

(ग) 60 (घ) 180

3. तिथि के भुक्तकाल को जानने के लिए निम्न सूत्र हैं -

(क) (विकलात्मक भुक्तमान × 60) ÷विकलात्मक गत्यन्तर।

(ख) (विकलात्मक गत्यन्तर × 60) ÷ विकलात्मक भुक्तमान।

(ग) (विकलात्मक भुक्तमान × 30) ÷ विकलात्मक गत्यन्तर।

(घ) (विकलात्मक गत्यन्तर × 30) ÷ विकलात्मक भुक्तमान।

4. तिथिसाधन सूत्र में गत्यन्तर से तात्पर्य है -

(क) चन्द्र व मंगल की गतियों का अन्तर

(ख) चन्द्र व सूर्य की गतियों का अन्तर

(ग) राहु व सूर्य की गतियों का अन्तर

(घ) चन्द्र व राहु की गतियों का अन्तर

उत्तर- 1 - ख, 2 - ग, 3 - क, 4 - ख.

अभ्यासप्रश्न -

3. सही या गलत बताईये-

क. अमान्त से अमान्त तक के चान्द्रमास में 15 चान्द्रदिनों की कल्पना की गई है।

ख. 1 तिथि का मान 720 कला होता है।।

ग. क्रान्तिवृत्त से उत्तर या दक्षिण स्थित ग्रहादि के अन्तर को अक्षांश या शर कहते हैं।

घ. तिथि का न्यूनतम मान 30 घटी तक रहता है।

ङ (विकलात्मक भोग्यमान × 60) ÷विकलात्मक गत्यन्तर = घट्यादि भोग्यकाल होता है।

4. रिक्तस्थान भरिये -

क. नक्षत्रों के सापेक्ष ग्रह पश्चिम से पूर्व की ओर अपना स्थान परिवर्तित करते दिखाई देते हैं। इसे ग्रहों की ....गति कहते हैं।

ख. लगभग 21मार्च एवं 22 सितम्बर को सूर्य ....वृत्त में रहता है।

ग. आकाशीय ....स्थान से 90 अंश अक्षांश की दूरी पर नाडीवृत्त रहता है।

घ. राहु एवं केतु एक दूसरे से सदा .... राशि के अन्तर पर रहते हैं।।

ङ क्रान्तिवृत्त का धुूरव या पृष्ठीयकेन्द्र ....स्थान है।

च. क्रान्तिवृत्त में जब चन्द्र का स्थान बिम्ब एवं सूर्यबिम्ब एक ही राशि, अंश, कला एवं विकला में होते हैं तो ....की समाप्ति होती है।

1.5 वार क्रम

'मन्दादध: क्रमेण स्यु: चतुर्थ दिवसाधिपा:' इस सिद्धान्त के आधार पर ज्योतिष शास्त्र में वार क्रम का उल्लेख किया गया है। ज्योतिष के अतिरिक्त किसी भी अन्य शास्त्र द्वारा यह नहीं बतलाया जा सकता कि रविवार के बाद सोमवार कहाँ से और कैसे आया?

ग्रहकक्षा क्रम

शनि
गुरु
भौम
सूर्य
शुक्र
बुध
चन्द्र

सूत्र से मन्दादध: अर्थात् शनि से चौथा – सूर्य ..... प्रथम रविवार

सूर्य से चौथा गणना करने पर – चन्द्र अर्थात् सोमवार
चन्द्र से चौथा – भौमवार
भौम से चौथा – बुधवार
बुध से चौथा - गुरुवार
गुरु से चौथा - शुक्रवार
शुक्र से चौथा – शनिवार

इस प्रकार ज्योतिष में रविवार से शनिवार पर्यन्त सप्तवारों की कल्पना की गयी है।

तानि सप्त रवि सोमो मंगलश्च बुधस्तथा।
वृहस्पतिश्च शुक्रश्च शनिश्चैव यथाक्रमम्।।

सम्पूर्ण संसार को वार का ज्ञान सर्वप्रथम भारतवर्ष के द्वारा ही दिया गया था। इसमें कोई संशय नहीं है। हमारे प्राचीन ऋषियों के पास अनेक ऐसी अमोघ शक्तियाँ थी, जिसके आधार पर वह सम्पूर्ण लोकों का दर्शन कर सदैव कल्याणकारी संसाधन उपलब्ध कराते रहते थे। उनका अनुसंधान त्रिगोलाभिप्रायिक अनवरत् चलते रहता था।

1.6 सारांश -

इस पाठ के अध्ययन आप जान चुके हैं कि पंचांग के पाँच अंगों में सर्वप्रथम तिथि नामक अंग की गणना होती है। तिथि शब्द का अर्थ है - चन्द्र की एक कला का मान। जो 12 अंश होता है। चान्द्रमास का तीसवां भाग अथवा सूर्य व चन्द्र में 12 अंश का अन्तर पडने में जितना समय लगता है उसे तिथि कहते हैं। चान्द्रमास को हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने चन्द्र के घटती-बढती कलाओं के आधार पर दो पक्षों - शुक्ल एवं कृष्ण, में विभक्त किया है। इन दोनों पक्षों में 15-15 तिथियॉ होती हैं। इनमें तिथियों का क्रम एक सा होता है। केवल शुक्लपक्ष की 15वीं तिथि को पूर्णिमा व कृष्णपक्ष की 15वीं तिथि को अमावस्या कहते हैं। कार्यों के गुण-दोषादि के आधार पर उनके सम्पादन हेतु तिथियां कई प्रकार की संज्ञादिकों में विभाजित हैं। जैसे नन्दादि संज्ञाएं, मृतयोग, क्रकच-संवर्तकादि अधमयोग, दग्धादिसंज्ञा, मासशून्यसंज्ञा इत्यादि। प्रतिपदादि तिथियों के अग्निदेवादि अधिष्ठाता देव माने गए हैं। चन्द्रगति के आधार पर तिथि का मान 60 घटी से कम या अधिक होता रहता है। इसे तिथिक्षय एवं तिथिवृद्धि कहते हैं। सूर्य व चन्द्र के गत्यन्तर के आधार पर सभी तिथियों का घट्यात्मकादि मान साधन करने की प्रविधि हमारे ऋषि- मुनियों एवं आचार्यों ने दी है। सैद्धान्तिक दृष्टि से अपने विमण्डल में स्थित चन्द्र की स्थिति क्रान्तिवृत्त में शराग्र पर मानी जाती है। क्रान्तिवृत्त में चन्द्र के स्थानबिम्ब एवं सूर्य की स्थिति के अन्तर के द्वारा ही तिथि का अंशात्मकादि साधन किया जाता है। जिसको घट्यादि में जानने के लिए नाडीवृत्त में परिवर्तित किया जाता है।

1.7 शब्दावली

पूर्वापर अन्तर - पूर्व से पश्चिम के बीच का अन्तर।

पूर्वाभिमुखी गति- पूर्व की ओर मुख करके चलना, जैसे ग्रह पश्चिम से पूर्व की ओर चलते हैं।

बाणवृद्धिः रसक्षयः - बाण शब्द से ज्योतिषशास्त्र में 5 अंक का ग्रहण होता है। इसी प्रकार रसशब्द से 6 अंक का ज्ञान होता है। बाणवृद्धि शब्द का तात्पर्य यहाँ 60 घटी में 5 घटी की वृद्धि अर्थात् तिथि का अधिकतममान 65 घटी से है। इसी प्रकार रसक्षय का शब्द का तात्पर्य यहाँ 60 घटी में 6 घटी की कमी से अर्थात् तिथि के न्यूनतममान 54 घटी से है। जो प्राचीनविद्वानों का मत रहा है।

सप्तवृद्धिः दशक्षयः:- उपर्युक्त प्रकार से ही रसवृद्धि का तात्पर्य यहाँ 60 घटी में 7 घटी की वृद्धि अर्थात् तिथि का अधिकतममान 67 घटी से है। इसी प्रकार दशक्षय का शब्द का तात्पर्य यहाँ 60

घटी में 10 घटी की कमी से अर्थात् तिथि के न्यूनतममान 50 घटी से है। जो पश्चाद्वर्ती विद्वानों का मत रहा है।

क्षय एवं वृद्धि तिथि - क्षय शब्द का अर्थ नाश होना तथा वृद्धिशब्द का अर्थ बढना है। तिथि के क्षय होने के अर्थ में इसका तात्पर्य तिथि का नाश न होकर सूर्योदय के समय तिथि का न होना है। इसी प्रकार जब एक ही तिथि की दो सूर्योदय में स्थिति हो तो उसे तिथि की वृद्धि कहा जाता है।

सांवत्सरिकश्राद्ध, महालय श्राद्ध, पार्वण श्राद्धादि- मृत पूर्वजों के तृप्ति निमित्त श्राद्ध एवं तर्पण किया जाता है। जो कालभेदादि के कारण विभिन्न नामों से जाना जाता है। मृतक के मास, पक्ष एवं तिथि के अनुसार प्रतिवर्ष उसी मासादि में किया गया श्राद्ध सांवत्सरिकश्राद्ध होता है। आश्विनकृष्ण पक्ष को महालय पक्ष भी कहा जाता है। इस पक्ष की 15 तिथियों में से मृतक की तिथि के दिन उसके तृप्त्यर्थ किया जाने वाला श्राद्ध महालयश्राद्ध कहलाता है। पर्वदिन (विशेषतःअमावस्या) को सभी पितरों के निमित्त किया जाने वाला श्राद्धादि को पार्वणश्राद्ध कहते हैं।

भगणपूर्ति - भ शब्द का अर्थ राशि या नक्षत्र होता है। अतः भगण का तात्पर्य राशियों अथवा नक्षत्रों का समूह हुआ। भारतीय ज्योतिश्शास्त्र में राशियों अथवा नक्षत्रों के समूह को 360 अंशों में विभक्त किया गया है। जिस कारण भगणपूर्ति का मतलब 360 अंशों का भोग पूर्ण करना है।

त्रैराशिक अनुपात - तीन राशियों की सहायता से चौथी राशि का मान निकालने की गणितीय प्रविधि को त्रैराशिक अनुपात कहते हैं। इन तीन राशियों में 2 राशियां सजातीय होती हैं तथा तीसरी विजातीय। अतः प्राप्त उत्तर भी तीसरी विजातीय राशि का सजातीय होता है।

यथा- 25 नारंगी फल 180 रुपये में मिलते हैं तो 40 नारंगी फल कितने में मिलेंगे? उत्तर रुपये में आयेगा।

सजातीय राशियां - 25 नारंगी फल , 40 नारंगी फल, विजातीय राशि - 180 रुपये

$$\frac{180 \times 40}{25} = 288 \text{ रुपये}$$

याम्योत्तर - दक्षिण से उत्तर, जैसे याम्योत्तरवृत्त का तात्पर्य दक्षिण से उत्तर की ओर जाने वाला वृत्त।

भुक्तमान व भोग्यमान - तिथ्यादि का बीत चुके मान को भुक्तमान तथा आगे भोगे जाने वाले मान को भोग्यमान कहते हैं।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1. क.सही ख.गलत ग.सही घ.सही ङ.गलत

2. क. अमावस्या, शून्य ख. भद्रा ग.सावन घ. चतुर्थी, तृतीया ङ.वृद्धितिथि च. अमावस्या

3. क. गलत, ख. सही ग. सही घ. गलत ङ. सही

4. क. पूर्वाभिमुखी ख. नाडीग.धुरव घ. 6 ङ.कदम्ब च. अमावस्या

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री-

1. दैवज्ञ श्रीरामाचार्य, मुहूर्त चिन्तामणि, टीका-केदारदत्त जोशी, पीयूषधारा टीकासहित, (द्वितीयसंस्करण 1979, पुनर्मुद्रण 1995), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

2. प्रो.आजादमिश्र, श्री भोजराजपंचांग, (संस्करण 2012-13), राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल

3. प्रो. शशिप्रभा जैन, विद्यापीठ पंचांग, (संस्करण 2012-13), श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली

4. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, (संस्करण 2002), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

5. आचार्य भास्कर द्वितीय, सिद्धान्तशिरोमणि

6. आर्ष, सूर्यसिद्धान्त- श्रीतत्वामृतभाष्यसहित टीका एवं सम्पादन- श्रीकपिलेश्वरचौधरी (संस्करण वि.सं. 2003),चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी

7. आचार्य गणेशदैवज्ञ, ग्रहलाघव व्याख्याकार- पं.केदारदत्त जोशी, (प्रथमसंस्करण 1981) ,मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

8. श्री बी.एल.ठाकुर,सचित्र ज्योतिष शिक्षा(प्रारम्भिकज्ञानखण्ड)- (द्वितीयसंस्करण 1982) ,मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

9. आचार्य मीठालाल ओझा, भारतीय कुण्डली विज्ञान

10. आचार्य शंकरबालकृष्णदीक्षित भारतीय ज्योतिष- हि.अनुवाद शिवनाथ झारखण्डी (द्वितीयसंस्करण 1963)हिन्दी समिति, सूचना विभाग उत्तरप्रदेश, लखनऊ

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. आचार्य भास्कर द्वितीय, सिद्धान्तशिरोमणि सम्पादन- बापूदेवशास्त्री(संस्करण) चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

2. अमरसिंह, अमरकोश- संशोधन - नारायणराम आचार्य (पुनर्मुद्रितसंस्करण वि.सं.2064), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

3. आर्ष, सूर्यसिद्धान्त- श्रीतत्वामृतभाष्यसहित- टीका एवं सम्पादन- श्रीकपिलेश्वरचौधरी (संस्करण वि.सं. 2003),चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी

4. आचार्य गणेशदैवज्ञ, ग्रहलाघव-व्याख्याकार- पं.केदारदत्त जोशी, (प्रथमसंस्करण 1981) ,मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

5. श्री बी.एल.ठाकुर,सचित्र ज्योतिष शिक्षा (प्रारम्भिकज्ञानखण्ड)- (द्वितीयसंस्करण 1982) ,मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

6. आचार्य मीठालाल ओझा, भारतीय कुण्डली विज्ञान

7. आचार्य तारानाथतर्कवाचस्पति, वाचस्पत्यम् शब्दकोश (सीडी संस्करण2007) राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ मानितविश्वविद्यालय, तिरुपति

8. दैवज्ञ श्रीरामाचार्य, मुहूर्त चिन्तामणि, टीका-केदारदत्त जोशी, पीयूषधारा टीकासहित, (द्वितीयसंस्करण 1979, पुनर्मुद्रण 1995), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

9. प्रो.आजादमिश्र, श्रीभोजराजपंचांग वि. स. 2069 (संस्करण 2012-13), राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल

10. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, (संस्करण 2002), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

1.11 निबन्धात्मकप्रश्न

1. तिथिशब्द का अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट करते हुए तिथियों के क्रम की विवेचना कीजिए।
2. तिथियों के स्वामियों का उल्लेख करते हुए तिथियों की विभिन्नसंज्ञादियों को स्पष्ट कीजिए।
3. तिथियों के क्षय एवं वृद्धि का उदाहरणपूर्वक सैद्धान्तिक कारण स्पष्ट कीजिए।
4. तिथि का सैद्धान्तिक स्वरूप की विवेचना कीजिए।
5. तिथियों के व्यावहारिक महत्व पर एक निबन्ध लिखिए।
6. तिथिसाधन कीजिए-

यदि सूर्य- 02।15।52।37, चन्द्र - 08।24।25।13, सूर्यगति- 58।36, चन्द्रगति- 812।04

7. तिथिसाधन कीजिए-

यदि सूर्य- 8।13।02।49, चन्द्र - 06।14।53।31, सूर्यगति- 61।03, चन्द्रगति- 799।44

इकाई – 2 नक्षत्र क्रम एवं अंशात्मक विभाजन

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 नक्षत्र परिचय
2.3.1 नक्षत्र क्रम एवं अंशात्मक विभाजन
2.3.2 नक्षत्र साधन
बोध प्रश्न
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.7 सहायक पाठ्यसामग्री
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई खण्ड – 3 के द्वितीय इकाई **''नक्षत्र क्रम एवं अंशात्मक विभाजन''** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आप ने तिथियों का सैद्धान्तिक विवेचन का अध्ययन कर लिया है, अब इस इकाई में आप नक्षत्र क्रम एवं उसके अंशात्मक विभाजन के बारे में अध्ययन करेगें।

ज्योतिष शास्त्र में नक्षत्रों का अद्वितीय योगदान है। नक्षत्र पंचांग का एक महत्वपूर्ण अंग है। सैद्धान्तिक रीति से नक्षत्रों का क्रम एवं उसका अंशात्मक विभाजन का अध्ययन आप इस इकाई में करने जा रहे है।

इस इकाई में पाठकगण उपर्युक्त विषयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेगें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेगें कि –

- ❖ नक्षत्र क्या है?
- ❖ नक्षत्रों का क्रम किस प्रकार से है।
- ❖ सैद्धान्तिक रूप से नक्षत्रों का अंशात्मक विभाजन किस प्रकार से किया गया है।
- ❖ नक्षत्रों का महत्व है।
- ❖ नक्षत्रों में विशेष क्या है।

2.3 नक्षत्र परिचय

राशि मण्डल के तुल्य 27 विभाग किये गये है। जो 27 नक्षत्रों के नाम से जाने जाते है। 21600 कला का 27 वॉ भाग 800 कला होता है। इसलिये प्रत्येक नक्षत्र की भोगकला 800 कला मानी जाती है। आकाश में क्रान्तिवृत्तीय तारा – मण्डल को बराबर 27 भागों में विभाजित करने पर एक – एक खण्ड एक – एक नक्षत्र कहे जाते है। इस तरह प्रति नक्षत्र के हिस्से में जितने तारे आते है और उन तारों से जो विभिन्न खण्डों की विभिन्न आकृतियॉ बनती हैं, वे ही 27 नक्षत्र है। नक्षत्रों की अपनी गति नहीं होती है। इसलिये नक्षत्र को परिभाषित करते हुये कहा है कि – **'न क्षरतीति नक्षत्रम्** '। ग्रहों की कक्षा से भी उपर नक्षत्रों की कक्षा है। एक नक्षत्र का मान 3 अंश 20 कला के बराबर होता है। पंचांग में चान्द्र नक्षत्र तिथि के बाद दिये जाते है , उनका अवलोकन करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि किस दिन कौन सा नक्षत्र कितने समय तक है ।

2.3.1 नक्षत्र क्रम एवं अंशात्मक विभाजन

चन्द्रमा का नक्षत्रों में प्रतीयमान परिभ्रमण ही दैनिक चान्द्रनक्षत्र कहलाता है। 12 राशियों को 27 नक्षत्रों में बॉटा गया है। पूर्णिमा में चन्द्रमा के परिभ्रमण से विशेष नक्षत्र पर ही मासों के नक्षत्राभिप्रायिक नामकरण सकारण है। जिस पूर्णिमा को चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र के निकट से या चित्रापुंज होकर गमन करे वह चैत्रमास कहलाता है। इस प्रकार विशाखा के उपर परिभ्रमण करे तो वैशाख एवं फाल्गुनी पर परिभ्रमण करने से फाल्गुन कहलाता है। प्रत्येक ग्रह के मार्ग के हिसाब से 800 कला का एक नक्षत्र होता है। ये अश्विनी से रेवती तक 27 है।

$360^0 \div 27$ नक्षत्र $= 13^0 - 20' = 800$ कला।

$800 \div 4 = 200$ कला एक नक्षत्र चरण।

राशिमण्डल के तुल्य 27 विभाग किए गए हैं। जो 27 नक्षत्रों के नाम से जाने जाते हैं। 21600 कला का 27 वॉ भाग $(21600 \div 27) = 800$ कला है। इसलिये प्रत्येक नक्षत्र की भोगकला 800 कल मानी जाती है या आकाश में क्रान्तिवृत्तीय तारा – मण्डल को बराबर 27 भागों में विभाजित उनके नाम इस प्रकार हैं -

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी मृगः।
आर्द्रा पुनर्वसुः पुष्यस्ततः श्लेषा मघा तथा ।।
पूर्वाफाल्गुनिका तस्मादुत्तराफाल्गुनी ततः।
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती विशाखा तदनन्तरम् ।।
अनुराधा ततो ज्येष्ठा तथा मूलं निगद्यते।
पूर्वाषाढोत्तराषाढा अभिजिच्छ्रवणस्ततः ।।
धनिष्ठा शतताराख्यं पूर्वाभाद्रपदा ततः।
उत्तराभाद्रपाच्चैव रेवत्येतानि भानि च ।।

1. अश्विनी
2. भरणी
3. कृत्तिका
4. रोहिणी
5. मृगशिरा
6. आर्द्रा
7. पुनर्वसु
8. पुष्य

9. आश्लेषा
10. मघा
11. पूर्वाफाल्गुनी
12. उत्तराफाल्गुनी
13. हस्त
14. चित्रा
15. स्वाती
16. विशाखा
17. अनुराधा
18. ज्येष्ठा
19. मूल
20. पूर्वाषाढ़ा
21. उत्तराषाढ़ा
22. श्रवण
23. धनिष्ठा
24. शतभिषा
25. पूर्वाभाद्रपद
26. उत्तराभाद्रपद
27. रेवती

ये 27 नक्षत्र होत हैं। उत्तराषाढ़ा एवं श्रवण के मध्य में अभिजित् नक्षत्र की परिकल्पना है।

शुभाशुभ नक्षत्र –

रोहिण्यश्विमृगा: पुष्यो हस्तचित्रोत्तरात्रयम्।
रेवती श्रवणश्चैव धनिष्ठा च पुनर्वसु: ।।
अनुराधा तथा स्वाती शुभान्येतानि भानि च।
सर्वाणि शुभकार्याणि सिद्धयन्त्येषु च भेषु च ।।
पूर्वात्रयं विशाखा च ज्येष्ठार्द्रा मूलमेव च।
शतताराभिधैष्वेव कृत्यं साधारणं स्मृतम् ।।
भरणी कृत्तिका चैव मघा आश्लेषा तथैव च।

अत्युग्रं दुष्टकार्यं यत् प्रोक्तमेषु विधीयते ।।

रोहिणी, अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, चित्रा, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, अनुराधा, और स्वाती ये नक्षत्र शुभ कहे गये हैं, इनमें शुभ कर्म प्रशस्त हैं।

तीनों पूर्वा, विशाखा, ज्येष्ठा, आर्द्रा, मूल तथा शततारा इनमें साधारण कृत्य शुभ हैं।

भरणी, कृत्तिका, मघा, आश्लेषा, इनमें अति उग्र या दुष्टकर्म सिद्ध होते हैं।

इन नक्षत्रों में गुण के अनुसार 7 भेद हैं – उनके नाम है - 1. ध्रुव 2. चर 3. उग्र 4. मिश्र 5. लघु 6. मृदु **7.** तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र

ध्रुवनक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म -

उत्तरात्रय – रोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम्।
तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादिसिद्धये ।।

तीनों उत्तरा, रोहिणी और रविवार ये ध्रुव संज्ञक और स्थिर संज्ञक हैं। इनमें स्थायी गृहारम्भ विवाह, उपनयन, कृषि, शान्ति और वाटिका लगाना आदि कार्य शुभ होते हैं।

चरनक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

स्वात्यादित्ये श्रुतेस्त्रीतिण चन्द्रश्चापि चरं चलम्।
तस्मिन् गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम्।।

स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शततारा तथा ये चर और चल संज्ञक हैं, इनमें यात्रा, बागीचा गमन, हाथी आदि सवारी पर चढ़ना, नृत्य गीतादि अल्पकालीन सम्पन्न होने योग्य सभी कार्य सिद्ध होते है

उग्र नक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा।
तस्मिन् घाताग्निशाठयानि विषशस्त्रादि सिद्धयति ।।

तीनों पूर्वा, भरणी, मघा और मंगलवार उग्र और क्रूर संज्ञक हैं, इनमें घात, अग्नि, शठता, विष, शस्त्र, मारण आदि क्रूरकर्म की सिद्धि होती है।

मिश्र नक्षत्र और उनमें कृत्यकर्म –

विशाखाग्नेयभे सौम्ये मिश्रं साधारणं स्मृतम्।
तत्राऽग्निकार्यं मिश्रं च वृषोत्सर्गादि सिद्धयति ।।

विशाखा, कृत्तिका, और बुधवार ये मिश्र और साधारण संज्ञक हैं, इनमें अग्निकार्य, मिश्रकार्य और वृषोत्सर्गादिकार्य सिद्ध होते हैं।

बोध प्रश्न –

1. नक्षत्र की संख्या कितनी है।
2. एक नक्षत्र की भोग कला कितनी होती है।
3. सम्पूर्ण नक्षत्र की भोग कलात्मक मान कितना होता है।
4. नक्षत्रों में चरणों की संख्या कितनी है।
5. अभिजित सहित नक्षत्रों की संख्या कितनी है।
6. चित्रा नक्षत्र शुभ है या अथवा अशुभ
7. ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र कौन है।
8. अहोरात्र में सूक्ष्म नक्षत्रों की संख्या कितनी है।
9. नक्षत्रवृद्धि किसे कहते है।

लघु नक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

हस्ताश्वि पुष्याऽभिजित: क्षिप्रं लघु गुरूस्तथा।
तस्मिन् पुण्यरतिज्ञानं भूषाशिल्प कलादिकम्॥

हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् और वृहस्पतिवार ये लघु और क्षिप्र संज्ञक हैं, इनमें यात्रा, बाजार लगाना, मंगलकार्य, वस्त्र, भूषण, रति, शिल्प कला कार्य सिद्ध होते हैं।

मृदु नक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षं मृदु मैत्रं भृगुस्तथा।
तत्र गीताम्बरक्रीडा मित्रकार्यं विभूषणम्॥

मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और शुक्रवार ये मृदु तथा मैत्र संज्ञक हैं, इनमें समस्त शुभकार्य, गीत, नृत्य, वस्त्रधारण, क्रीडा, मित्रकार्य शुभ हैं।

तीक्ष्ण नक्षत्र और उनके कृत्य -

मूलेन्द्रार्द्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारूणसंज्ञकम्।
तत्राऽभिचारघातोग्रभेदा: पशुदमादिकम्॥

मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा और शनिवार ये तीक्ष्ण और दारूण संज्ञक हैं, इनमें अभिचार (मारण, मोहन, भूत – बैताल की सिद्धि), घात, पापकृत्य, मित्रों में भेद डालना तथा पशु का दमन करना इत्यादि क्रूरकर्म सिद्ध होते हैं।

अध, उर्ध्व और तिर्यङ्मुख नक्षत्र –

मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेदूर्ध्वास्यमार्द्रेज्यहरित्रयं ध्रुवम्।

तिर्यङ्मुखं मैत्रकरानिलादिज्येष्ठाश्विभानीदृशकृत्यमेषु सत् ॥

मूल, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, तीनों पूर्वा, भरणी और मघा ये अधोमुख नक्षत्र हैं। आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शततारा, तीनों उत्तरा और रोहिणी ये उर्ध्वमुख तथा अनुराधा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा एवं अश्विनी ये तिर्यङ्मुख नक्षत्र हैं। जैसा जो नक्षत्र होता है उसमें वैसा कार्य शुभ होता है।

जैसे - अधोमुख में पृथ्वी सम्बन्धी (खेती करना, कूप खोदना, तालाब निर्माण करना इत्यादि) उर्ध्वमुख में मकान आदि का आरम्भ करना तथा तिर्यङ्मुख में बॉंध बंधवाना, गमन करना आदि कार्य शुभ होते हैं।

विशेष - तिथि और वार के समान ही नक्षत्रों के भी स्थूल व सूक्ष्म दो भेद होते हैं। प्रत्येक दिन सूर्योदय से 2,2 घटी का एक – एक क्षण सूक्ष्म नक्षत्र होता है। अत: अहोरात्र में 30 सूक्ष्म नक्षत्र बीतते हैं। यथा –

दिन में – अहोरात्र के पूर्वार्ध में 1 आर्द्रा, 2 आश्लेषा, 3 अनुराधा, 4 मघा, 5 धनिष्ठा, 6. पूर्वाषाढा, 7. उत्तराषाढा, 8. अभिजित् , 9. रोहिणी, 10. ज्येष्ठा, 11. विशाखा, 12. मूल, 13 शततारा, 14. उत्तराफाल्गुनी, 15 पूर्वाफाल्गुनी।

तदनन्तर – **रात्रि में** – अहोरात्र के उत्तरार्ध में 1 आर्द्रा, 2 पूर्वाभाद्रपद, 3 उत्तराभाद्रपद, 4 रेवती, 5 अश्विनी, 6 भरणी, 7 कृत्तिका, 8 रोहिणी, 9 मृगशिरा, 10 पुनर्वसु, 11 पुष्य, 12 श्रवण, 13 हस्त, 14 चित्रा, 15 स्वाती।

स्थूल नक्षत्र निषिद्ध भी हो तो आवश्यक में विहित क्षण – नक्षत्रों में कार्य की सिद्धि होती है।

2.3.2 नक्षत्र साधन –

आकाश में निरयण मेषादि बिन्दु से राशिवृत्त क्रान्तिवृत्त के तुल्य 27 नक्षत्रों में यदि 12 राशिकला = 12 ×30 ×60 = 21,600 कला मिलती है तो एक नक्षत्र में कितनी कला अनुपात से 800 कला = एक नक्षत्र की भोगकला। पंचांग साधनोपयोगी चान्द्र नक्षत्रज्ञानार्थ अनुपात करना होगा कि यदि भ (नक्षत्र) भोग 800 कलाओं में एक नक्षत्र मिलता है तो चन्द्र कलाओं में क्या ?

$$\frac{1\ \text{नक्षत्र} \times \text{चन्द्रकला}}{800} = \text{लब्धि} + \frac{\text{शे. कला}}{800}$$ ।

लब्धि = गत चान्द्र नक्षत्र

यहॉं शेष = वर्त्तमान नक्षत्र का भुक्तमान कलात्मक। नक्षत्र से घटीपलात्मकमान ज्ञात करने के लिये पुन: अनुपात करना होगा कि – यदि चन्द्रगति कलाओं में एक दिन में 60 घटी पाते हैं तो चन्द्र की भुक्त एवं भोग्यकलाओं में क्या ?

$\frac{60 \text{ घटी} \times \text{भुक्तकला}}{\text{चन्द्रगतिकला}}$ = वर्तमान नक्षत्र का भुक्तमान (घटी पल)

$\frac{60 \text{ घटी} \times \text{भोग्यकला}}{\text{चन्द्रगतिकला}}$ = वर्तमान नक्षत्र का भोग्य मान (घटी पल)

भुक्त + भोग्य = नक्षत्र का पूर्ण भोग्य मान (घटीपलात्मक)।

नक्षत्र मान पंचांग में चान्द्र नक्षत्र कहलाता है। चन्द्रमा के नक्षत्र का दैनिक साधन उपर्युक्त प्रकार से करना चाहिये। अन्य ग्रहों तथा सूर्य के नक्षत्र संचार ग्रहगति तथा ग्रहभुक्तकला की निष्पत्ति से पूर्ववत् लाया जाता है। यथा – ग्रहराश्यादि को { (ग्रहराशि × 30^0) + अंशादि } × 60 + कलादि = ग्रहकला ।

ग्रहराश्यादि कला ÷ ग्रहगति = लब्धि + शेष / ग्रहगति ।

यहाँ लब्धि गतनक्षत्र होता है। शेष कला ग्रहाधिष्ठित नक्षत्र की भुक्त कला होती है। नक्षत्र प्रवेश तथा संचारकला में घटयादि ज्ञान उपर्युक्त प्रकार से करनी चाहिये ।

नक्षत्र वृद्धि - जब किसी नक्षत्र में दो सूर्योदय हो तो उसे नक्षत्रवृद्धि कहते है। इस प्रकार का चान्द्रनक्षत्र तीन दिनों का स्पर्श करता है। अर्थात पूर्वदिन के अन्त से प्रारम्भ होकर द्वितीय दिन 60 घटी पूर्णकर तृतीय दिवस में भी कुछ समय तक रहता है। उदाहरण के लिये -

यदि किसी दिन विशाखा नक्षत्र की घटयादि समाप्तिकाल 54। 26 है। तत्पश्चात् 60 घटी – 54।26 = 5 घटी 34 पल उसी दिन अनुराधा नक्षत्र है। अगले दिन अनुराधा का घटयादि मान 60 घटी है, उसके अगले दिन अनुराधा का मान 0 घटी 0 पल है। इस प्रकार की स्थिति को नक्षत्र वृद्धि कहते है। नाक्षत्र मान 60 घटी से अधिक होता है।

नक्षत्र क्षय - जिस नक्षत्र में सूर्योदय नहीं होता हो उसे नक्षत्र क्षय कहते हैं। इस स्थिति में सूर्योदय के बाद पूर्वनक्षत्र समाप्त होता है। द्वितीय सूर्योदय से पूर्व ही तृतीय नक्षत्र का प्रारम्भ होता है। मध्य में नक्षत्र क्षय का मान दिया जाता है। यथा – उदाहरण के लिये भाद्रकृष्ण तृतीया शुक्रवार को उत्तरभाद्र 2 घटी 54 पल पर समाप्त होकर इसी दिन रेवती नक्षत्र 56 घटी 4 पल है। तत्पश्चात् अश्विनी नक्षत्र 58 घटी 58 पल के बाद प्रारम्भ होगा। अत: सूर्योदय रहित चान्द्र नक्षत्र को नक्षत्र क्षय कहते है। इस स्थिति में पूर्वनक्षत्रमान में क्षयनक्षत्रमान जोड़ने पर तृतीय नक्षत्र का प्रारम्भकाल घंटादि वा घटयादि काल पूर्व प्रदत्त रीति से प्राप्त होता है।

चन्द्र तथा ग्रहराश्यादि से नक्षत्रारम्भ तथा नक्षत्रान्त जानना –

नक्षत्र	**प्रथम चरण**	**द्वितीय चरण**	**तृतीय चरण**	**चतुर्थ चरण**
अश्विनी	3^0 – 20	6 – 40	10^0 – 00	13^0 – 20

भरणी	$16^0 – 40$	$20^0 – 00$	$23^0 – 20$	$26^0 – 40$
कृत्तिका	30^0	$1- 3^0 – 20$	$1- 6^0 – 40$	$1 – 10^0$
रोहिणी	$1-13^0- 20$	$1-16^0-40$	$1- 20^0$	$13^0 – 20$
मृगशिरा	$1-26^0-40$	$2 – 0^0- 0$	$2 – 3^0- 20$	$2- 6^0- 40$
आर्द्रा	$2-10^0$	$2-13^0 -20$	$2-16^0 – 40$	$2 – 20^0$
पुनर्वसु	$2-23^0-20$	$2-26^0-40$	$3-0^0-0$	$3-3^0-20$
पुष्य	$3-6^0-40$	$3-10^0-0$	$3-13^0-20$	$3-16^0-40$
आश्लेषा	$3-20^0-0$	$3-23^0-20$	$3-26^0- 40$	$4- 0^0-0$
मघा	$4-3^0-20$	$4-6^0- 40$	$4-10^0 - 0$	$4-13^0-20$
पू. फा.	$4-16^0- 40$	$4-20^0-0$	$4-23^0-20$	$4-26^0-40$
उ. फा.	$5-0^0$	$5-3^0-20$	$5-6^0-40$	$5-10^0$
हस्त	$5-13^0- 20$	$5-16^0- 40$	$5-20^0$	$5-23^0-20$
चित्रा	$5-26^0-40$	$6-0^0-0$	$6-3^0-20$	$6-6^0-40$
स्वाती	$6-10^0$	$6-13^0-20$	$6-16^0-40$	$6- 20^0$
विशाखा	$6-23^0-20$	$6-26^0 - 40$	$7-0^0- 0$	$7-3^0-20^0$
अनुराधा	$7-6^0- 40$	$7-10^0$	$7-13^0-20$	$7-16^0-40^0$
ज्येष्ठा	$7-20^0$	$7-23^0-20$	$7-26^0-40$	$8-0^0-0$
मूल	$8-3^0-20$	$8-6^0-40$	$8-10^0$	$8-13^0-20$
पू. षा.	$8-16^0-40$	$8-20^0$	$8-23^0-20$	$8-26^0-40$
उ. षा.	$9-0^0-0$	$9-3^0-20$	$9-6^0-40$	$9-10^0$
श्रवण	$9-13^0-20$	$9-16^0-40$	$9-20^0$	$9-23^0-20$
धनिष्ठा	$9-26^0-40$	$10-0^0-0$	$10-3^0-20$	$10-6^0-40$
शतभिषा	$10-10^0$	$10-13^0-20$	10-16-40	$10-20^0-0$
पू. भा.	$10-23^0-20$	$10-26^0-40$	$11-0^0-0$	$11-3^0-20$
उ. भा.	$11-6^0-40$	$11-6^0-40$	$11-10^0$	$11-13^0-20$
रेवती	$11-20^0$	$11 -23^0-20$	$11-26^0-40$	$12 – 0^0$

अभिजित नक्षत्र की गणना इन 27 नक्षत्रों के अन्दर नहीं की गयी है । उत्तराषाढा का अंतिम चरण तथा श्रवण का प्रथम 15 वॉ भाग को जोड़ने पर इस नक्षत्र का अंशात्मक भोग होता है । उत्तराषाढ़ा का अंतिम चरण 3 - 20 + श्रवण का प्रथम पंचदशांश $0^0 – 53- 20 = 4^0 – 13 – 20$ उत्तराषाढा का भोग जानना चाहिये ।इसका घटयात्मक भोग पंचांग में नहीं लिखते है । अष्टोत्तरीदशा में इसका उपयोग मुख्यत: होता है। सूक्ष्म नक्षत्रगणना में इसका उपयोग होता है ।

3^0 - 20 = 3^0 × 60 + 20 = 200 इस प्रमाण को 0^0 में जोड़ते जाने पर 360^0 तक प्रतिनक्षत्र 1 – 1 चरण प्रमाणसे चन्द्रमातथा ग्रहसम्बद्धनक्षत्रभोगप्रमाण सुगमता से ज्ञात होता है । यथा - यदि किसी ग्रह का निरयणभोग 0-3^0 -20 से अल्प है तो उसे अश्विन के प्रथमचरण में चन्द्र वा ग्रह को जाने । एक चरण 200 कला एक नक्षत्र 13^0 - 20 = 800 तथा एक राशि 30^0 = 1800 की निष्पत्ति से कला तथा असु की तुल्य निष्पत्ति से नक्षत्र प्रवेश नक्षत्रान्त तथा राशि संचारादि सुगमता से ज्ञात होते हैं ।

नक्षत्र स्वरूप

आकाश में तारों का समूह आपस में मिलकर एक आकृति जैसा स्वरूप में दिखलाई पड़ती है, इन्हीं विभिन्न प्रकारोंके स्वरूपों को आचार्यों ने नक्षत्रों की संज्ञा प्रदान की। यथा - अश्विनी नक्षत्र का स्वरूप घोड़े के मुख के समान , भरण का योनि के समान आदि आदि।

हर्याननाभं च वरांगरूपं क्षुरोपमं ज्योतिरन:समाभम् ।
कुरंगकाभं मणिना सदृक्षं निकेताकारमथेषुरूपम् ।।
रथांगशालाशयनोपमानि शय्यासमं दो:प्रतिमं भमुक्तं ।
मुक्तात्मकं विद्रुमतोरणाभे मणिश्रवोवेष्टनतुल्यरूपे ।।
सकोपकण्ठीरवविक्रमप्रभं तल्पाकृतीभस्यविलासवत्स्थितम् ।
श्रृगांटकव्यक्ति च तार्क्ष्यकेतुभं त्रिविक्रमाभं च मृदंगसन्निभम् ।।
ज्योति: शतांगांगसमानरूपं ततोऽन्यदृक्षं यमलद्वयाभम् ।
शय्यासवर्णं मुरजप्रकारमितीह तारापटलस्वरूपम् ।।

नक्षत्र नाम	स्वरूप
अश्विनी	घोड़े का मुख
भरणी	भग (योनि)
कृत्तिका	क्षुर
रोहिणी	शकट
मृगशिरा	हिरण का शिर
आर्द्रा	मणि
पुनर्वसु	गृह
पुष्य	बाण
आश्लेषा	चक्र
मघा	घर
पू0 फा0	मचान
उ0फा0	शय्या

हस्त	हाथ
चित्रा	मोती
स्वाती	मूँगा
विशाखा	तोरण
अनुराधा	मणि
ज्येष्ठा	कुण्डल
मूल	सिंहपुच्छ
पू0षा0	हाथीदॉत
उ0षा0	मचान
अभिजित	त्रिकोण
श्रवण	विष्णुपाद
धनिष्ठा	मृदंग
शतभिषा	वृत्त
पू0भा0	मंच
उ0भा0	यमला
रेवती	मृदंगाकार

2.4 सारांश

ज्योतिष शास्त्र में नक्षत्र एक अद्वितीय अंग है। समस्त ज्योतिष का सारतत्व पंचांग में समाहित होता है। पंचांग के पॉच प्रमुख अंगों में एक नक्षत्र भी आता है। अश्विनी से लेकर रेवती पर्यन्त 27 नक्षत्र होते है , जहॉ अभिजित का मान सूक्ष्म होने पर उसकी गणना नहीं की जाती है।
नक्षत्रों की अपनी स्वयं की गति नहीं होती भूसापेक्षिक उनकी गति प्रतिभाषित होती है। वस्तुत: उनमें गति नहीं होती। नक्षत्रों की कक्षायें भी सर्वोपरि है। ज्योतिष में नक्षत्र का सैद्धान्तिक रीति को इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है। पंचांग ज्ञान के लिये नक्षत्र का ज्ञान परमावश्यक है। मुहूर्त्त में, शुभाशुभ काल विवेचना में, चिकित्सा ज्योतिष में, ग्रहानयन में नक्षत्रों का योगदान है। प्रमुख रूप से सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से इसका उपयोग ग्रहानयन एवं शुभाशुभ काल निर्धारण में होता है।
पाठकगण इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् नक्षत्र को भली–भॉति समझ सकेगें। नक्षत्र के विशेष ज्ञानार्थ पाठक गण को ज्योतिष के सहायक ग्रन्थों का भी अवलोकन करना चाहिये।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

राशिवृत्त - क्रान्तिवृत्त

निरयण – स्थिरनक्षत्रसम्बद्ध भोग
आकाश – क्षितिज के उपर दृश्य खाली स्थान
पंचांग – तिथ्यादि पॉच अंग
नक्षत्र – टिमटिमाते गोलीयप्रकाशपंजात्मक बिम्ब
ग्रह – भ्रमणशील गोलीयस्थिरप्रकाशपुंज
विधि - तरीका, प्रकार
लब्धि – भागफल
भुक्त – बीत गया
भोग्य – आने वाला
अनुपात – एकरूपक गति से साधित निष्पत्ति
घटी – अहोरात्र का 60 वॉ भाग
कला – 1^0 का साठवॉ भाग
चान्द्रनक्षत्र – चन्द्र मार्ग के हिसाब से चन्द्रगति द्वारा क्रान्तिवृतत्त के 27 वें भाग का भोग
संचार – गतिशीलता
दैनिक – दिनसम्बन्धि
ग्रहाधिष्ठित – जिस स्थान पर ग्रह बैठा हो
नक्षत्रवृद्धि – जिस नक्षत्र में दो सूर्योदय हो
स्पर्श – छूना।
क्षय – लुप्त

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 27
2. 800 कला
3. 21,600 कला
4. 4
5. 28
6. शुभ
7. उत्तरात्रय एवं रोहिणी नक्षत्र रविवार के दिन पड़ जाये तो
8. 30
9. जब किसी नक्षत्र में दो सूर्योदय हो तो उसे नक्षत्रवृद्धि कहते है।
10. वैवस्वत नामक मन्वन्तर

2.7 सहायक पाठ्यसामग्री

1. सूर्यसिद्धान्त

2. सिद्धान्तशिरोमणि

3. वृहज्ज्योतिसार

4. भारतीय ज्योतिष

5. भारतीय फलित ज्योतिष

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नक्षत्र को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये।

2. नक्षत्र साधन किजीये।

3. नक्षत्र क्रम को दर्शाइये।

इकाई – 3 योग एवं करण का सैद्धान्तिक स्वरूप

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 योग परिचय

3.3.1 योगक्रम

3.3.2 योग का सैद्धान्तिक स्वरूप

3.4 करण का सैद्धान्तिक स्वरूप

बोध प्रश्न

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.8 सहायक पाठ्यसामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई खण्ड–3 के तृतीय इकाई **''योग एवं करण का सैद्धान्तिक स्वरूप''** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आप ने नक्षत्र क्रम एवं उसका सैद्धान्तिक स्वरूप का अध्ययन कर लिया है, अब इस इकाई में आप योग एवं करण क्रम एवं उसके सैद्धान्तिक स्वरूप के बारे में अध्ययन करेगें।

योग एवं करण पंचांग का एक अभिन्न अंग है। सैद्धान्तिक रीति से योग क्रम क्या है एवं उसका स्वरूप क्या है, का अध्ययन आप इस इकाई में करने जा रहे है।

इस इकाई में पाठकगण उपर्युक्त विषयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन कर सकेगें।

3.3 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेगें कि –

- ❖ योग क्या है?
- ❖ योग क्रम क्या है?
- ❖ योग का सैद्धान्तिक विवेचन किस प्रकार किया गया है।
- ❖ पंचांग का एक अंग है – योग।
- ❖ योग का व्यावहारिक उपयोग क्या है।
- ❖ करण किसे कहते है?
- ❖ करणों का क्रम क्या है।
- ❖ करण का सैद्धान्तिक स्वरूप क्या है।
- ❖ करण का क्या महत्व क्या है।
- ❖ भद्रा क्या है।

3.3 योग परिचय

सूर्य से चन्द्रमा का अन्तर 12^0 होने पर एक तिथि होती है। सूर्यचन्द्रमा के योग से दोनों के दैनिक भोग का योग 800 कला होने पर एक योग होता है। वे योग विष्कुम्भादि आदि वैधृत्यन्त 27 होते है।

भूकेन्द्रीय दृष्टि से सूर्य – चन्द्रमा की गति का योग जब एक नक्षत्र भोगकला (800 कला) तुल्य होता है, तब एक योग की उत्पत्ति होती है। सामान्य रूप में योग का अर्थ होता है – जोड़। सूर्य व चन्द्रमा के स्पष्ट राशियादि के जोड़ को ही **'योग'** कहते है। इनकी संख्या 27 है –

विष्कुम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनस्तथा।

अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च।।

गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा।

वज्रसिद्धी व्यतीपातो वरीयान् परिघः शिवः।।

सिद्धसाध्यौ शुभः शुक्लो ब्रह्मैन्दो वैधृतिस्तथा।

सप्तविंशतियोगाः स्युः स्वनामसदृशं फलम्।।

विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र, वैधृति। ये 27 योग होते है। ये अपने – अपने नामानुसार शुभाशुभ फल देते हैं। अर्थात् इनमें – विष्कुम्भ, वज्र, गण्ड, अतिगण्ड, व्याघात, शूल, वैधृति, व्यतीपात, परिघ ये 9 योग अशुभ और शेष योग शुभ हैं।

मुहूर्त्त जगत में योग को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है – नैसर्गिक व तात्कालिक । नैसर्गिक योगों का सदैव एक ही क्रम रहता है और एक के बाद एक आते रहते हैं। विष्कंभादि 27 योग नैसर्गिक श्रेणी गत हैं। परन्तु तात्कालिक योग - तिथि – वार- नक्षत्रादि के विशेष संगम से बनते है। आनन्द प्रभृति एवं क्रकच, उत्पात, सिद्धि, तथा मृत्यु आदि योग तात्कालिक है।

विष्कम्भादि योग – किसी भी दिन विष्कम्भादि वर्तमान योग ज्ञात करने के लिये पुष्य नक्षत्र से सूर्यर्क्ष तक तथा श्रवण नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गणना करके दोनों प्राप्त संख्याओं के योग में 27 का भाग देने पर अवशिष्टांकों के अनुसार विष्कम्भादि यथा क्रम योग जानना चाहिये । विष्कम्भादि 27 योगों को इस चक्र द्वारा भी समझा जा सकता है।

योग चक्र

यो. सं.	1	2	3	4	5	6	7	8	9
योग	विष्कंभ	प्रीति	आयु.	सौभा.	शोभन	अति.	सुकर्म .	धृति	शूल
स्वामी	यम	विष्णु	चन्द्र	ब्रह्मा	गुरू	चन्द्र	इन्द्र	जल	सर्प
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ
यो. सं.	10	11	12	13	14	15	16	17	18
योग	गण्ड	वृद्धि	ध्रुव	व्याघात	हर्षण	वज्र	सिद्धि	व्यती.	वरी.
स्वामी	अग्नि	सूर्य	भूमि	वायु	भग	वरूण	गणेश	रूद्र	कुबेर
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ
यो. सं.	19	20	21	22	23	24	25	26	27
योग	परिघ	शिव	सिद्ध	साध्य	शुभ	शुक्ल	ब्रह्म	ऐन्द्र	वैधृति

स्वामी	विश्वकर्मा	मित्र	कार्तिकेय	सावित्री	लक्ष्मी	पार्वती	अश्विनी	पितर	दिति
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ

निन्द्य योग

व्यतीपात योग – यह एक महान उपद्रवकारी योग है। विष्कम्भादि योगों में तो यह 17 वॉं योग है ही, जो कि क्रम से आता रहता है। परन्तु यह तात्कालिक योग भी है, जो अमावस्या को रविवार या श्रवण, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा अथवा मृगशिरा नक्षत्र के सान्निध्य से उत्पन्न होता है। इस अमाजनित व्यतीपात में गंगा स्नान का बडा ही महत्व है। समस्त मांगलिक कार्यो एवं यात्रादि में इसका परित्याग ही हितकर है।

वैधृति – यह भी व्यतिपात के ही समकक्ष है । अत: इसे भी शुभजनक कृत्यों में पूर्णतया विवर्ज्य समझना चाहिये। शेष जघन्य योगों में परिघ का पूर्वार्द्ध, विष्कम्भ और वज्र की आदि 3 घटी व्याघात की प्रारम्भिक 9 घटी, शूल की पहली 5 घटी तथा गंड – अतिगण्ड के शुरूआत की 6-6 घटियॉं विशेषत: त्याज्य है।

अन्तर्योग – विष्कम्भादि प्रत्येक योग में क्रमश: विष्कम्भादि 27 अन्तर्योग ठीक उसी प्रकार आते हैं जैसे किसी ग्रह की महादशा में सूर्यादि समस्त ग्रहों की अन्तर्दशाएँ आया करती है। प्रत्येक अन्तर्योग का भोग्यमान प्राय: 1 घटी 48 पल अर्थातद्य 43 मिनट 12 सेकेण्ड होता है। अन्तर्योगों का यह प्रयोजन है कि जो शुभाशुभ फल विष्कम्भादि विभिन्न प्रधान योगों के हैं वे ही फल किसी भी शुभाशुभ योग में आनेवाले अन्तर्योगों के भी जानना चाहिये। इनका विचार यथा सम्भव आवश्यक कर्मों में ही किया जाता है।

योगोत्पत्ति –

वाक्पतेरर्कनक्षत्रं श्रवणाच्चान्द्रमेव च।
गणयेत्तद्युतिं कुर्याद्योगः स्यादृक्षशेषतः॥

पुष्य नक्षत्र से वर्तमान सूर्याधिष्ठित नक्षत्र पर्यन्त की तथा श्रवण से चन्द्राधिष्ठित नक्षत्र पर्यन्त की संख्याओं का योग करके 27 से भाग देने पर जो शेष बचे, विष्कुम्भादि से उतने योग गणना कर समझना चाहिये।

उदाहरण – संवत 2015 वैशाख कृष्ण पक्ष अमावस्या शनिवार में योग ज्ञात करना है। उस दिन सूर्य अश्विनी और चन्द्रमा अश्विनी में हैं। अत: पुष्य से अश्विनी तक 21 संख्या और श्रवण से अश्विनी तक 7 संख्या हुई, दोनों का योग 21 + 7 = 28 ÷ 27 शेष 1 अर्थात् विष्कुम्भ योग हुआ।

योग साधन –

पंचांग में 27 नक्षत्रों की तरह 27 योग विष्कुम्भादि वैधृत्यन्त दिये जाते है। इन्हें ठीक से जानने के लिये इनके स्वरूप को समझना जरूरी है। इनका सम्बन्ध सूर्य एवं चन्द्रमा के गति योग से है । जब स्पष्ट सूर्य एवं स्पष्ट चन्द्र का योग 800 कला होती है, तब एक योग पूर्ण होता है। यहॉ भी प्रमाण 800 प्रमाण से 21600 भ चक्रकला के साथ अनुपात द्वारा सभी योग जाने जाते है। 21600 कला / 800 कला 27 योग सम्पूर्ण भचक्र में सिद्ध होते हैं । अत: यदि 800 कलाओं का सूर्यचन्द्रयोगकला में प्रमाण से एक योग होता है, तो इष्ट सूर्यचन्द्रयोग कलाओं में क्या ?

सूत्र : -

$$\frac{(\text{कलात्मक स्पष्टचन्द्र} + \text{कलात्मक स्पष्ट सूर्य}) \times 1 \text{ योग}}{800}$$

$$= \frac{\text{योगकला} \times 1}{800} = \frac{\text{योग कला}}{800} = \text{लब्धि} + \frac{\text{शेषकला}}{800}$$

यहॉ लब्धि = गत योग्य संख्या विष्कुम्भादि गतयोगान्त । शेष = वर्तमान योग की भुक्त कला । 800 – भुक्तकला = भोग्यकला । भुक्तभोग्य योग कला से घटयात्मकसमय ज्ञानार्थ पुन: अनुपात करने पर यदि स्पष्टरविगतिकला + स्पष्टचन्द्रगति कला में 60 घटी पाते हैं, तो वर्तमान योग की भुक्त या भोग्यकला में क्या ?

इससे वर्तमान योग का भुक्त तथा भोगघटयात्मक मान आता है । यथा –

$$\frac{\text{गतकला} \times 60}{\text{गति योग}} = \text{गत घटयादि ।}$$

$$\frac{\text{भोग्यकला} \times 60}{\text{गति योग}} = \text{भोग्य घटयादि ।}$$

गतघटी + भोग्यघटी = वर्तमान योग का पूर्णभोग घटी। इस प्रकार स्पष्टचन्द्र तथा स्पष्ट सूर्यराश्यादि तथा स्पष्टगति की सहायता से सभी योग तथा उनके घटयादि मान सुगमता से जान सकते हैं। योग की क्षय, वृद्धि, प्रारम्भ तथा अन्त, तिथि तथा नक्षत्र की तरह जानना चाहिये। इनके मान भी अपने समाप्ती काल के अनुसार पंचांग में दिये जाते हैं। प्रथमयोग का अन्त द्वितीय का प्रारम्भ जाने। इनके घटयादि मान को दो से गुणा कर पॉच से भाग देने पर घं. मि. में मान आता है। सूर्योदय के घं. मि. मैं इनके घंटा मिनट को जोड़ देने पर घंटा मि. में इनका प्रारम्भ तथा अन्त तिथि तथा नक्षत्र की तरह सुगमता से ज्ञात होता है।

योगों के नाम - विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान् , सौभाग्य , शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात,हर्षण,वज्र, सिद्धि, व्यतिपात, वरीयान, परिघ, शिव, सिद्धि, साध्य, शुभ, शुक्ल , ब्रह्म, ऐन्द्र, वैधृति।

इनके प्रभाव इनके नाम के तुल्य होते है। व्यतिपात तथा वैधृति विशेष विचारणीय तथा शुभकर्मो में सर्वथा त्याज्य है।

त्याज्य योग – 1,6,9,10,13,15,17,19,27 अन्य शुभकर्म में ग्राह्य है।

योग साधन का उदाहरण –

सूर्य राश्यादि - 11 । 6^0 । 50 । 18 , गति - 59 । 35

चन्द्रराश्यादि - 11 । 7^0 । 57 । 2

गति – 787 – 2, गति योग - 846 – 37

सूत्रानुसार –

$$\frac{\text{सूर्यराश्यादि } 11 \,।\, 6 \,।\, 50 \,।\, 18 + \text{चन्द्रराश्यादि } 11 \,।\, 7^0 \,।\, 57 \,।\, 2}{800}$$

$$= \frac{10 \,।\, 14^0 \,।\, 47 \,।\, 20}{800} = \frac{10 \times 30 + 14^0 \,।\, 47 \,।\, 20}{800}$$

$$= \frac{314^0 \times 60 + 47 \,।\, 20}{800} = \frac{18887 \,।\, 20}{800}$$

$$= 23 + \frac{487}{800}$$

$$= \frac{487 \,।\, 20 \times 60}{848 - 37}$$ = 34 घटी 30 पल भुक्त घटी। पूर्वगति दिन में

$$= \frac{312 \,।\, 40 \times 60}{846 \,।\, 37}$$

= 22 घटी 07 पल भोग्य घटी।

34 घ. 30 प. + 22 घ. 07 पल = 56 घ. 37 पल शुक्लयोग का पूर्ण घटयात्मक भोग।

बोध प्रश्न –

1.सूर्य से चन्द्रमा का 12^0 अन्तर होने पर क्या होता है।

2. योग कितने प्रकार के होते है।

3. योग की संख्या कितनी है।

4. योग का कलात्मक मान कितना है।

5. योग को परिभाषित किजिये।

6. मुहूर्त्त जगत में योग को किन दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

7. विष्कुम्भादि में 17 वॉ योग कौन सा है।

8. आनन्दादियोग कितने प्रकार के होते है।

9. रविवार को हस्त नक्षत्र हो तो कौन सा योग होता है।

आनन्दादि योग –

वार और नक्षत्र के समाहार से तात्कालिक आनन्दादि 28 योगों का प्रादुर्भाव होता है। इन योगों को ज्ञात करने के हेतु वार विशेष को निर्दिष्ट नक्षत्र से विद्यमान नक्षत्र तक साभिजित् गणना की जाती है रविवार को अश्विनी से, सोम को भरणी से, मंगल को आश्लेषा से, बुध को हस्त से, गुरू को अनुराधा से, शुक्र को उत्तराषाढ़ा से तथा शनिवार को शतभिषा से तद्दिन के चन्द्रर्क्ष तक गणना पर आप्त संख्या को ही उस दिन वर्तमान आनन्दादि योग का क्रमांक जानना चाहिये।

सुगमतापूर्वक योग और उनके फल जानने के लिये निम्न रूप में सारिणी चक्र दिया जा रहा है –

योग चक्र

क्रम	योग	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	फल
1	आनन्द	अश्विनी	मृग.	श्ले.	हस्त	अनु.	उ. षा.	शत.	अर्थसिद्धि
2	कालदण्ड	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्ये.	अभि.	पू0भा0	मृत्युभय
3	धूम्र	कृत्तिका	पुन.	पू. फा.	स्वाती	मूल	श्रवण	उ0भा0	दु:ख
4	प्रजापति(धाता)	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.	विशाखा	पू0षा0	धनिष्ठा	रेवती	सौभाग्य
5	सौम्य	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	अनु.	उ0षा0	शतभिषा	अश्विनी	बहुसुख
6	ध्वांक्ष	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्ये.	अभि.	पू0भा0	भरणी	अर्थनाश
7	ध्वजा	पुन.	पू. फा.	स्वाती	मूल	श्रवण	उ0भा0	कृत्तिका	सौभाग्य
8	श्रीवत्स	पुष्य	उ. फा.	विशा	पू0षा0	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	ऐश्वर्य

				खा					
9	वज्र	आश्लेषा	हस्त	अनु.	उ0षा0	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	धनक्षय
10	मुद्गर	मघा	चित्रा	ज्ये.	अभि.	पू0भा0	भरणी	आर्द्रा	धननाश
11	छत्र	पू. फा.	स्वाती	मूल	श्रवण	उ0भा0	कृत्तिका	पुन.	राजसम्मान
12	मित्र	उ. फा.	विशाखा	पू0षा0	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	सौख्य
13	मानस	हस्त	अनु.	उ0षा0	शतभिषा	अश्विनी	मृग.	आश्लेषा	सौभाग्य
14	पद्म	चित्रा	ज्ये.	अभि.	पू0भा0	भरणी	आर्द्रा	मघा	धनागम
15	लुम्ब	स्वाती	मूल	श्रवण	उ0भा0	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू. फा.	लक्ष्मीनाश
16	उत्पात	विशाखा	पू0षा0	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.	प्राणनाश
17	मृतयु	अनु.	उ0षा0	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	मरणभय
18	काण	ज्ये.	अभि.	पू0भा0	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	क्लेशवृद्धि
19	सिद्धि	मूल	श्रवण	उ0भा0	कृत्तिका	पुन.	पू. फा.	स्वाती	अभीष्टसिद्धि
20	शुभ	पू0षा0	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.	विशाखा	कल्याण
21	अमृत	उ0षा0	शतभिषा	अश्विनी	मृग.	आश्लेषा	हस्त	अनु.	राजसम्मान
22	मुसल	अभि.	पू0भा0	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्ये.	अर्थक्षय
23	अन्तक गद	श्रवण	उ0भा0	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू. फा.	स्वाती	मूल	रोग, बुद्धिनाश
24	कुंजर मातंग	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.	विशाखा	पू0षा0	कुलवृद्धि
25	राक्षस	शतभिषा	अश्विनी	मृग.	आश्लेषा	हस्त	अनु.	उ0षा0	बहुपीड़ा
26	चर	पू0भा0	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्ये.	अभि.	कार्यलाभ
27	सुस्थिर	उ0भा0	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू. फा.	स्वाती	मूल	श्रव.	गृहाप्ति
28	प्रवर्धमान	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.	विशा.	पूषा	धनि.	सुमंगल

दोष परिहार – पूर्वोक्त योग निकाय में साधारण श्रेणी के योगों की प्रारम्भिक घटियों का विवर्जन कर देने के अनन्तर उनकी अशुभता की दोषापत्ति नहीं करती है। परन्तु कालदण्ड, उत्पात, मृत्यु व राक्षस, ये चार योग तो समग्र रूप से त्याज्य है।

योगों में कुछ योग ऐसे हैं, जो सर्वत्र त्याज्य है, अर्थात् सभी शुभ कार्यों में त्याज्य है। ऐसे योग का इस प्रकार समझा जा सकता है।

1. प्रतिपदा को उत्तराषाढ़ा, द्वितीया को अनुराधा, तृतीया को तीनों उत्तरा में से अन्यतम, पंचमी को मघा, षष्ठी को रोहिणी, स्पतमी को हस्त और मूल, अष्टमी को पूर्वाभाद्रपद, नवमी को कृत्तिका, एकादशी को रोहिणी, द्वादशी को आश्लेषा और त्रयोदशी को स्वाती व चित्रा का संसर्ग सर्व शुभजनक कर्मों में परित्याज्य है।
2. पंचमी को हस्त व रविवार, षष्ठी को मृगशिरा व सोमवार, सप्तमी को अश्विनी व मंगलवार, अष्टमी को अनुराधा और बुधवार, नवमी को गुरूवार और पुष्य, दशमी को रेवती व शुक्रवार तथा एकादशी को रोहिणी व शनिवार का संगम पूर्वाचार्यों ने वर्ज्य कहा है –

आदित्ये पंचमी हस्तौ, सोमे षष्ठी च चन्द्रभम्।
भौमाश्विन्यौ च सप्तम्यामनुराधां बुधाष्टमीम्।।
गुरूपुष्यं नवम्यां च दशम्यां भृगुरेवतीम्।
एकादश्यां शनि ब्राह्मो विषयोगाः प्रकीर्तिताः।।

अमृतसिद्धि योग –

निम्नलिखित परिस्थितियों में अमृतसिद्धि योग होता है -

1. रविवार को हस्त नक्षत्र हो।
2. सोमवार को मृगशिरा नक्षत्र हो।
3. मंगलवार को अश्विनी नक्षत्र हो।
4. बुधवार को अनुराधा नक्षत्र हो।
5. गुरूवार को पुष्य नक्षत्र हो।
6. शुक्रवार को रेवती नक्षत्र हो।
7. शनिवार को रोहिणी नक्षत्र हो।

उपर्युक्त योगों में तिथि का भी विचार करना आवश्यक है। यथा रविवार को पंचमी तिथि हो, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को अष्टमी, गुरूवार को नवमी तिथि हो, शुक्रवार को दशमी तिथि हो, शनिवार को एकादशी तिथि हो तो उपर लिखे हुये अमृतसिद्धि योग होते हुये भी अशुभ फल मिलता है, अतः अमृतसिद्धि योग में इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

3.4 करण का सैद्धान्तिक स्वरूप

तिथि का आधा भाग करण कहलाता है। कृष्णपक्ष में तिथि संख्या को सात से विभाजित करने पर प्राप्त अवशिष्ट संख्यक करण तिथि के पूर्वार्द्ध में तथा शुक्लपक्ष में दुगुनी तिथि संख्या में से 2 घटा कर सात का भाग देने पर शेषांक क्रमसंख्या वाला करण उस तिथि के पूर्वार्द्ध में अवस्थित होता है। उससे अग्रिम क्रम प्राप्त 'करण' तिथि के उत्तरार्द्ध में होता है।

प्रत्येक तिथि में दो – दो करण होते हैं, अर्थात् तिथि के आधे को करण कहते है। करणों की कुल संख्या 11 है। जिसमें बवादि 7 करण तथा किंस्तुघ्न आदि 4 करण होते है। बवादि करण चलायमान होते है, तथा किंस्तुघ्नादि 4 करण स्थिर होते है। विष्टि करण को ही भद्रा कहते है, जो सभी शुभ कार्यों में त्याज्य कहा गया है।

करण नाम –

बवं च बालवं चैवं कौलवं तैतिलं गरम्।
वणिजं विष्टिमित्याहु: करणानि महर्षय: ।।
अन्ते कृष्णचतुर्दश्या: शकुनिर्दर्शभागयो:।
भवेच्चतुष्पदं नागं किंस्तुघ्नं प्रतिपद्दले ।।

अथवा

बवाह्यं बालव कौलवाख्ये ततो भवेततैतिलनामधेयम्।
गराभिधानं वणिजं च विष्टि रीत्याहुरार्या: करणानि सप्त ।।

स्पष्टार्थ चक्रम्

तिथि	**पूर्वार्द्ध**	**उत्तरार्ध**	**तिथि**	**पूर्वार्द्ध**	**उत्तरार्द्ध**
कृष्ण 1	बालव	कौलव	**शु. 1**	किंस्तुघ्न	बव
2	तैतिल	गर	2	बालव	कौलव
3	वणिज	विष्टि	3	तैतिल	गर
4	बव	बालव	4	वणिज	विष्टि
5	कौलव	तैतिल	5	बव	बालव
6	गर	वणिज	6	कौलव	तैतिल
7	विष्टि	बव	7	गर	वणिज
8	बालव	कौलव	8	विष्टि	बव
9	तैतिल	गर	9	बालव	कौलव
10	वणिज	विष्टि	10	तैतिल	गर

11	बव	बालव	11	वणिज	विष्टि
12	कौलव	तैतिल	12	बव	बालव
13	गर	वणिज	13	कौलव	तैतिल
14	विष्टि	शकुनि	14	गर	वणिज
30	चतुष्पद	नाग	15	विष्टि	बव

करणों की शुभाशुभता – बवादि प्रथम करण सप्तक चर एवं शेष शकुन्यादि चतुष्टय स्थिर संज्ञक है। बवादि छ: करणों में मांगलिक कर्म शुभ, भद्रा सर्वथा त्याज्य है तथा अन्तिम चार करणों में पितृ कर्म प्रशस्त है।

मतान्तरेण – बव करण में बलवीर्य वर्धक – पौष्टिक कर्म, बालव में ब्राह्मणों के षट्कर्म (पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना - यज्ञ कराना, तथा दान का आदान - प्रदान) कौलव में स्त्रीकर्म एवं मैत्रीकरण, तैतिल में सौभाग्यवती स्त्री के प्रियकर्म, गर में बीजारोपण और हल प्रवहण, वणिज में व्यापार कर्म, भद्रा में अग्नि लगाना, विष देना, युद्धारम्भ, दण्ड देना तथा समस्त दुष्टकर्म मात्र , शकुनि में औषध निर्माण व सेवन, मन्त्र साधन तथा पौष्टिक कर्म, चतुष्पद में राज्य कर्म व गो ब्राह्मण – विषयक कर्म तथा किंस्तुघ्न करण में मंगल – जनक कर्म करना शास्त्र सम्मत है।

4.3.1 करण का सैद्धान्तिक स्वरूप एवं साधन –

तिथ्यर्धं करणं स्मृतम् इस प्रमाण के अनुसार एक तिथि के पूर्णभोगमान का आधा एक करण होता है। एक मास में तीस तिथियों में 60 करण होते है। इनमें 7 चर करण बव, बालव , कौलव, तैतिल, गर , वणिज, विष्टि तथा 4 करण स्थिरकरण शकुनि, नाग, चतुष्पद एवं किंस्तुघ्न होते है। चार तिथ्यर्धों में चार स्थिरकरण तथा अवशिष्ट 56 तिथ्यर्धों में सात चरकरणों का 8 बार प्रवर्त्तन से $7 \times 8 = 56$ करण होते है।

स्थिर करण - कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि के उत्तरार्ध से प्रारम्भ कर प्रथम शकुनि, द्वितीय चतुष्पद, तृतीय नाग, चतुर्थ किंस्तुघ्न होता है। कृष्ण चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनी, अमावस्या के पूर्वार्ध में चतुष्पद , अमावस्या के उत्तरार्ध में नाग, शुक्लप्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न , ये 4 स्थिरकरण होते हैं। फिर शुक्लप्रतिपदा के उत्तरार्ध से 7 चरकरणों की प्रवृत्ति क्रम से बव से विष्टि पर्यन्त 7 करणों की 8 आवृत्तियॉ होती है।

चरकरण - शुक्लप्रतिपदा के उत्तरार्ध में बव, शुक्लद्वितीया के पूर्वार्ध में बालव, शुक्लद्वितीया के उत्तरार्ध में कौलव, शुक्ल तृतीया के पूर्वार्ध में तैतिल, शुक्ल तृतीया के उत्तरार्ध में गर, शुक्लचतुर्थी के पूर्वार्ध में वणिज एवं उत्तरार्ध में विष्टि भद्रा नामक चरकरण होता है। पुन: शुक्ल

पंचमी के पूर्वार्ध से बव आदि करण प्रारम्भ होकर अपनी चार आवृत्ति पूर्णकर पौर्णमासी के पूर्वार्ध में भद्रा होती है। पुन: इसी प्रकार बव आदि करण पौर्णमासी के उत्तरार्ध से चार आवृत्ति पूर्ण कर कृष्णचतुर्दशी के पूर्वार्ध में भद्राकरण की समाप्ति पर अपनी 8 आवृत्ति पूर्णकर 56 चर करणों की पूर्ति एक चान्द्र मास में होती है, तथा 4 स्थिरकरणों की एक – एक कर प्रवृत्ति कृष्ण 14 से शुक्लप्रतिपदा के पूर्वार्ध तक होकर कुल 60 करण तीस तिथियों में पूर्ण होते हैं।

इनके प्रारम्भ व समाप्ति के लिये पृथक् गणित की आवश्यकता नहीं होती। केवल तिथि प्रारम्भ, तिथि समाप्ति, तिथिमध्य का ज्ञान पूर्णतिथिमान का मध्य मानकर सरलता से पंचांग में इन करणों के प्रारम्भ व समाप्ति को जाना जा सकता है। उदाहरण - करण मान भी उदयकाल से समाप्ति के अनुसार लिखे जाते है। तिथि का आधा करण होता है। उदय काल के आधार पर जब तिथ्यन्त होता है, उसे 60 घटी में घटाकर जो घटयादि हो उसमें अग्रिम दिवसीय उसी तिथि का मान जोड़कर आधा करने पर एक करण का मान होता है। इस मान को पूर्व तिथ्यन्त में जोड़ते जाने पर करणान्त तथा करणान्त काल को घंटा मिनट बनाकर सूर्योदय में जोड़ने से घंटा मिनट में करणान्त काल होता है। इस प्रकार प्रत्येक करण का प्रारम्भ तथा समाप्ति तिथि के प्रारम्भ तथा अन्त से सुगमता से जान सकते है। उदय काल में जो करण होता है, उसे पंचांग में लिखते है। यही तिथ्यर्धं करणम् है।

बोध प्रश्न – 2

1.तिथि का आधा भाग कहलाता है।

2. प्रत्येक तिथि में कितने करण होते है।

3. करण की कुल कितनी संख्या है।

4. स्थिर करण की संख्या कितनी है।

5. चर करण कितने है।

6. भद्रा किस करण का उपनाम है।

7. एक मास में कुल कितने करण होते है।

8. शुक्ल प्रतिपदा के उत्तरार्ध में कौन सा करण होता है।

9. भद्रा का जहॉ निवास होता है, उस स्थान के लिये वह कैसा होता है।

10. शुक्ल तृतीया के पूर्वार्ध में कौन सा करण होता है।

भद्रा विचार –

मुहूर्त्त प्रकरण में विचारणीय अंगों की प्रतिभा पर भद्रा का अतीव तथा अद्वितीय अनिष्ट प्रभाव देखा गया है। अत: इसका विवेचन करना परमावश्यक है –

भद्रा व्युत्पत्ति – देवासुर संग्राम के अवसर पर महादेव की रोद्र रस सम्पन्न ऑखों ने उनके शरीर पर दृष्टिपात किया। तत्काल उनकी देह से गर्दभ – मुख, तीन चरण, सप्तभुजा, कृष्णवर्ण, सुविकसित दॉत, प्रेतवाहनवाली तथा मुख से अग्नि उगलती हुई देवी का प्रादुर्भाव हुआ । प्रस्तुत देवी ने राक्षसों का शमन करके देवताओं को निश्चिन्त कर दिया। अत: सुरगणों ने प्रसन्न होकर उसे सम्मान देने के उद्देश्य से, विष्टि भद्रादि संज्ञाओं से विभूषित करके करणों में स्थापित किया । पाठकों को भद्रा लोकवास को समझने के लिये निम्नलिखित चक्र को देखना चाहिये -

भद्रा लोकवास: -

मृत्यु	**स्वर्ग**	**पाताल**	**लोक वास**
4,5,11,12	1,2,3,8	6,7,9,10	चन्द्रराशि
सम्मुख	उर्ध्वमुख	अधोमुख	भद्रा – सुख

भद्रा का जिस दिन जहॉ वास होता है, वहॉ उस दिन उस स्थान के लिये उसका फल अशुभ होता है। मृत्यु लोक में स्थित, तथा सम्मुख भद्रा में शुभ कृत्य व प्रयाण परिवर्ज्य है।

भ्रदा दिग्वास – तिथि भेद से भद्रा का दिशा विशेष में वास –

तिथि	3	4	7	8	10	11	14	15
दिग्वास	ईशान	पश्चिम	दक्षिण	आग्नेय	वायव्य	उत्तर	पूर्व	नैऋत्य

भद्रा निर्णय –

> **शुक्ले पूर्वाधेऽष्टमी पंचदश्योर्भद्रैकाश्यां चतुर्थ्यां परार्धे।**
> **कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात्तृतीया दशम्यो: पूर्वे भागे सप्तमी शम्भुतिथ्यो:।।**

शुक्लपक्ष में अष्टमी और पंचदशी के पूर्वार्ध में, एकादशी और चतुर्थी के परार्द्ध में एवं कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी के परार्द्ध में, सप्तमी और चतुर्दशी के पूर्वार्द्ध में भद्रा होती है ।

भद्रा के मुख – पुच्छ संज्ञा –

> **पंचद्वयद्रिकृताष्टरामरसभूयामादिघटय: शरा**
> **विष्टेरास्यमसद्गजेन्दुरसरामाद्रयश्विबाणाब्धिषु ।**
> **यामेष्वन्त्यघटीत्रयं शुभकरं पुच्छं तथा वासरे**
> **विष्टिस्तिथ्यपरार्धजा शुभकरी रात्रौ तु पूर्वार्द्धजा ।।**

शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि में 5 प्रहर, अष्टमी में 2 प्रहर, एकादशी में 7 प्रहर, पूर्णिमा में 4 प्रहर की और कृष्णपक्ष की तृतीया में 8 प्रहर, सप्तमी में 3 प्रहर, दशमी में 6 प्रहर, चतुर्दशी में 1 प्रहर की आरम्भ की पॉच घटी भद्रा का मुख है, जो अशुभ है। तथा शुक्लपक्ष की चतुर्थी में 8 प्रहर, अष्टमी में 1 प्रहर, एकादशी में 6 प्रहर, पूर्णिमा में 3 प्रहर की और कृष्णपक्ष की तृतीया में 7 प्रहर, सप्तमी में 2 प्रहर, दशमी में 5 प्रहर, चतुर्दशी में 4 प्रहर की तीन घटी पुच्छ है, जो शुभ है।

परार्द्ध की भद्रा दिन में आ जाये और पूर्वार्द्ध की रात्रि में चली जाये तो भद्रा दोष नहीं लगता। यह भद्रा सुख को देने वाली होती है। यथा –

दिवाभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिने।

तदा विष्टिकृतो दोषो न भवेत्सर्व सौख्यदा ॥

भद्रा में कृत्य –

विवादे शत्रुसंहारे भयार्ते राजदर्शने।

रोगार्ते वैद्यगमने भद्रा श्रेष्ठतमा स्मृता ॥

भद्राज्ञान चक्र

3	10	कृष्णपक्ष	परार्द्ध	भद्रानिवास	स्थान
7	14	कृष्णपक्ष	पूर्वार्द्ध	मे. वृ. मि. वृ.	स्वर्ग
4	11	शुक्लपक्ष	परार्द्ध	क.ध. तु. म.	पाताल
8	15	शुक्लपक्ष	पूर्वार्द्ध	कु.मी. क. सि	पृथ्वी

शुक्लपक्ष तिथि **कृष्णपक्ष तिथि**

तिथि	4	8	11	15	3	7	10	14
भद्रा	परार्द्ध	पूर्वार्द्ध	परार्द्ध	पूर्वार्द्ध	परार्द्ध	पूर्वार्द्ध	परार्द्ध	पूर्वार्द्ध
प्रहर	5	2	7	4	8	3	6	1
मुख घ.	5	5	5	5	5	5	5	5
प्रहर	8	1	6	3	7	2	5	4
पु. घ .	3	3	3	3	3	3	3	3

भद्रा अंग विभाग –

प्राय: एक तिथि का अर्धभाग 30 घटी परिमित होता है। अत: तदनुसार भद्रा के विभिन्न अंगों में यथा प्रदिष्ट घटियों का न्यास और तज्जनित फल –

घटी	5	1	11	4	6	3
भद्रांग	मुख	गर्दन	वक्ष:स्थल	नाभि	कमर	पुच्छ
फल	कार्यनाश	मृत्यु	द्रव्यनाश	कलह	बुद्धिनाश	कार्यसिद्धि

अत: तात्पर्य हैं कि प्रत्येक भद्रा की अन्तिम तीन घटियों में शुभ कार्य किये जा सकते है।

भद्रा की विशेष संज्ञायें –

विभिन्न तिथियों में विद्यमान भद्रा को पक्ष – भेद के अनुसार संज्ञायें प्रदान की गई है। कृष्ण पक्ष की भद्रा को पक्ष भेद के अनुसार संज्ञायें प्रदान की गई है। कृष्ण पक्ष की भ्रदा को वृश्चिकी तथा शुक्ल पक्ष की भद्रा को सर्पिणी के रूप में बतलाया गया है। बिच्छू का विष डंक में तथा सर्प का विष मुख में होने के कारण वृश्चिकी भद्रा की पुच्छ और सर्पिणी भद्रा का मुख विशेषत: त्याज्य है।

भद्रा में कार्याकार्य – विष्टि काल में किसी को बॉधना या कैद करना, विष देना, अग्नि लगाना, अस्त्र - शस्त्र का प्रयोग, किसी वस्तु को काटना, भैंस, घोड़ा और उँट सम्बन्धी अखिल कर्म तथा उच्चाटनादि कर्म प्रशस्त हैं। परं च, विवाहादि मांगलिक कृत्य, यात्रा और गेहारम्भ व गृहप्रवेश भद्रा में जघन्य कहे गये है।

भद्रापवाद –

1. यदि दिन की भद्रा रात्रि को और रात्रि की भद्रा दिन को आ जाये तो भद्रा निर्दोष हो जाती है **यथा** –

   रात्रिभद्रा यदह्नि स्याद् दिवा भद्रा यदा निशि। न तत्र भद्रादोष: स्यात् सा भद्रा भद्रदायिनी ॥ (मुहूर्त्त चिन्तामणि पीयूषधारा)

2. शास्त्रों की यह सम्मति है कि भौमवार, भद्रा, व्यतीपात, वैधृति तथा प्रत्यरि, जन्म तारादि **मध्याह्न** के उपरान्त शुभ होते है। **(योग प्रशाखा)**
3. मीन संक्रान्ति में महादेव व गणेश की आराधना - अर्चना में, देवी पूजा हवनादिक में **तथा** विष्णु सूर्य साधन में भद्रा सर्वदा शुभकारक होती है।

   स्यातु भद्राय भद्रा न शंभोर्जपे मीनराशिर्न यागस्तथाप्यर्चने।
   होमकाले शिवायास्तमा तद्भुव: साधने सर्वकालोऽथ मेशेनयो: ॥

विशेष – तिथि का मध्यम मान 60 घटी भोग मानकर मुख – पुच्छ की घटी कही गयी है। इसीलिये 60 घटी में 5 घटी मुख और 3 घटी पुच्छ है तो स्पष्ट तिथि भोग घटी में क्या ? इस प्रकार त्रैराशिक से स्पष्ट मुख पुच्छ घटी मान समझना, अर्थात् स्पष्टतिथि का 12 वॉ भाग मुख और 20 वॉ भाग पुच्छ घटी होती है। तथा इसी प्रकार तिथि का अष्टमांश प्रहर समझना चाहिये।

शुभकार्य परमावश्यक हो और उस दिन अन्य कोई कुयोग न हो तभी भद्रा का त्याग करना ही महर्षियों ने श्रेयस्कर कहा है।

3.5 सारांश

ज्योतिष शास्त्र में पंचांग के प्रमुख पॉच अंगों में योग भी है। योग भी सूर्य और चन्द्रमा की गति के कारण ही होता है। सर्य व चन्द्रमा के स्पष्ट राश्यादि मान का जोड़ ही योग कहलाता है। योग दो प्रकार के होते है–एक आनन्दादि योग, द्वितीय विष्कुम्भादि योग। आनन्दादि योग स्थिर होते है तथा विष्कुम्भादि योग चलायमान होते है। व्यावहारिक रूप से विष्कुम्भादि योग का ही उपयोग होता है।

ज्योतिषोक्त पंचांग सम्बन्धि की यह इकाई पंचांग परिचय के अन्तर्गत कही गयी है। आचार्यों ने पंचांग ज्ञान के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया है। धार्मिक कार्य हेतु संकल्प में, पंचांग निर्माण प्रक्रिया में तथा शुभाशुभ मुहूर्त्त में योग का व्यावहारिक उपयोग होता है। आम जनमानस के लिये यही योग का उपयोग है। इस इकाई में योग सम्बन्धित समस्त सैद्धान्तिक पक्ष को दर्शाया गया है अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठकगण योग को भली-भॉति समझने में समर्थ हो सकेगें। योग सम्बन्धित ज्ञान से परिचित कराना ही इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है। प्रयास यह किया गया है कि उसके व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक पक्ष को यहॉ दर्शाया जाये।

ज्योतिष शास्त्र को काल नियामक होने के कारण 'कालशास्त्र' भी कहा जाता है। काल ज्ञान के अन्तर्गत युग, महायुग , मनु एवं कल्प संबंधित यह इकाई है। व्यावहारिक रूप में इनका ज्ञान पाठकों को प्राप्त हो, इस हेतु प्रस्तुत इकाई में इसकी विवेचना की गई है। पंचांगों में भी युग, महायुग , मनु एवं कल्प का विवरण हमें प्राप्त होता है, किन्तु इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विस्तारपूर्वक इनका अध्ययन किया जा सकता है।

ज्योतिषोक्त काल की यह इकाईयॉ सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत कही गयी है। आचार्यों ने ज्योतिष ज्ञान के अन्तर्गत काल ज्ञान में इनका उल्लेख किया है। मनुष्य जहॉ होता है, उससे इतर भी जगत् में कई पदार्थों एवं ज्ञान- विज्ञान की सत्ता व्याप्त है, उन सभी के ज्ञानार्थ आचार्यों ने मनुष्य एवं समस्त चराचर प्राणियों के नियन्ता ब्रह्मा की आयु के साथ – साथ, चतुर्युग, महायुग,मनुओं का भी ज्ञान बतलाया है, जिसे प्रस्तुत इकाई में कहा गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठक गण को तत् सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त हो जायेगा।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

पंचांग - तिथि, वार , नक्षत्र , योग एवं करण का समाहार

स्पष्ट – वास्तविक दृश्य स्थिति

योग – सूर्य चन्द्र का दैनिक गतियोग

नक्षत्र – अचलक्रान्तिवृत्तीय 27 वें भाग को नक्षत्र कहते है।

अनुपात – यथानुरूप मध्य निष्पत्ति

कला – $1^0 / 60 = 1$

गतैष्य - भुक्त एवं भोग्य काल तथा क्षेत्रभोग

गति – चल

विष्कुम्भ – विषघटयोग विशेष

अर्केन्दु – सूर्य और चन्द्र

गतियोग – सूर्यचन्द्र गतियोग,योग सम्भूत विष्कुम्भादि वैधृत्यन्त 27 योग

व्यतीत – बीता हुआ

व्यवहारिक – व्यवहार में आने वाला

दोषापत्ति – दोष में आपत्ति

अनन्तर – बाद में

परित्याज्य - छोड़ देना

तिथ्यर्धं - तिथि का आधा

करण – तिथि का आधा बवादि

भोगमान – पूर्णमान

स्थिरकरण – अचल करण

चलकरण – बवादि

पूर्वार्धं – पूर्वभाग

उत्तरार्ध - द्वितीयअर्धखण्ड

प्रारम्भ – शुरू

शुक्ल – प्रकाश

कृष्ण – काला

विष्टि – भद्राकरण

पूर्णिमा – 15 वीं तिथि

समाप्ति – अन्त
पूर्णतिथि – पुरी तिथि
मध्य – अर्धान्त
उदाहरण – प्रयोग दृष्टान्त
दिवसीय – दिनसम्बन्धि
उदय – क्षितिज के उपर देखना
अस्त – सूर्य वा ग्रहर्क्ष का दर्शनाभाव
प्रदोष – सूर्यास्त के बाद रात्रि का प्रथम प्रहरकाल
निशीथ – मध्यरात्रि
व्यापिनी - फैली हुयी

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. तिथि
2. दो प्रकार के। एक आनन्दादि योग दूसरा विष्कुम्भादि योग
3. 27
4. 800 कला
5. सूर्य व चन्द्रमा के स्पष्ट राश्यादि के जोड़ को ही योग कहते है।
6. नैसर्गिक व तात्कालिक
7. व्यतिपात नामक योग
8. 28
9. अमृतसिद्धि योग

बोध प्रश्नों के उत्तर -2

1. करण
2. 2
3. 11
4. 4
5. 7
6. विष्टि
7. 60
8. बव

9. अशुभ

10. तैतिल

3.7 सहायक पाठ्यसामग्री

1. सूर्यसिद्धान्त
2. सिद्धान्तशिरोमणि
3. वृहज्ज्योतिसार
4. भारतीय ज्योतिष
5. भारतीय फलित ज्योतिष

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. योग को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन करें।
2. योग साधक सूत्र दर्शाते हुये उसका साधन करें।
3. करण किसे कहते है, स्पष्ट कीजिये।
4. करण कितने प्रकार के होते है, उनका नाम लिखिये।
5. करण का सैद्धान्तिक स्वरूप समझाते हुये उसका साधन कीजिये।

इकाई – 4 ग्रह कक्षा – प्राच्य पाश्चात्य

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 ग्रहकक्षा परिचय
4.3.1 ग्रहकक्षा – प्राच्य मत के अनुसार
4.3.2 ग्रहकक्षा – पाश्चात्य मत के अनुसार
बोध प्रश्न
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 सहायक पाठ्यसामग्री
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई खण्ड – 3 के चौथी इकाई **''ग्रहकक्षा – प्राच्य पाश्चात्य''** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है । इससे पूर्व की इकाई में आप ने पंचांग के पॉच अंग – तिथि, वार, नक्षत्र , योग एवं करण का अध्ययन कर लिया है, अब इस इकाई में आप ग्रहों के कक्षाओं से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन करेगें।

ग्रहाणां कक्षा ग्रहकक्षा:। ग्रहकक्षा प्राचीन एवं अर्वाचीन मत में किस – किस प्रकार से आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित किये गये है, इसका विवेचन इस अध्याय में किया जा रहा है।

इस इकाई में पाठकगण उपर्युक्त विषयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेगें कि –

- ❖ ग्रहकक्षा क्या है?
- ❖ ग्रह क्या है।
- ❖ प्राच्य मत में ग्रहों की कक्षा किस प्रकार है।
- ❖ पाश्चात्य मत में ग्रहों की कक्षा क्रम क्या है।
- ❖ प्राच्य पाश्चात्य दृष्टि से ग्रहों की कक्षाओं में भेद क्या है।

4.3 ग्रहकक्षा परिचय

ग्रहाणां कक्षा ग्रहकक्षा। अर्थात् ग्रह जिस पथ पर विचरण करते है, वह उनकी कक्षा होती है। ज्योतिष शास्त्र का मूलाधार ग्रह है। सभी ग्रह अपनी–अपनी कक्षा में स्व - स्व गति अनुसार भ्रमण करते है। प्राच्य मत में ज्योतिर्विदों ने एवं पाश्चात्य मत में वैज्ञानिकों ने ग्रहकक्षा को अलग–अलग प्रकार से कहा है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार कक्षा क्रम –

ब्रह्माण्ड मध्ये परिधिर्व्योमकक्षाऽभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽध: क्रमशस्तथा।।
मन्दामरेज्य भूपुत्र सूर्य शुक्रेन्दुजेन्दव:।
परिभ्रमन्त्यधोऽध: स्था: सिद्धा विद्याधरा घना:।।

अर्थात ब्रह्माण्ड (अण्ड कटाह) की भीतरी (परिधि) खकक्षा या आकाश कक्षा कही गई है। उसके मध्य में अधोध: (एक दूसरे के नीचे) क्रम से नक्षत्रादि भ्रमण करते है। नक्षत्रों के नीचे क्रमश: शनि, वृहस्पति, भौम, सूर्य , शुक्र , बुध और चन्द्रमा की कक्षायें है जिनमें वे भ्रमण करते है । ग्रहों के नीचे क्रमश: सिद्ध विद्याधर और घन (मेघ) है । सुगमता के लिये ग्रह कक्षाक्रम –

शनि की कक्षा
वृहस्पति की कक्षा

मंगल की कक्षा
सूर्य की कक्षा
शुक्र की कक्षा
बुध की कक्षा
चन्द्र की कक्षा
सिद्धा
विद्याधर
मेघ
पृथ्वी

4.3.1 प्राच्य एवं पाश्चात्य मत के अनुसार ग्रह कक्षा -

ग्रह कक्षा का विचार दो प्रकार से किया जाता है –

1.भूकेन्द्रिक 2. सूर्यकेन्द्रिक

भूकेन्द्रिक कक्षा का व्यवहार भारतीय ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में किया गया है। यद्यपि इसे भूकेन्द्रिक कहा जाता है किन्तु ग्रहों की कक्षाओं के मध्य केन्द्र में पृथ्वी नहीं है। इसी प्रकार सूर्यकेन्द्रिक कक्षा में ग्रहों की कक्षाओं के केन्द्र में सूर्य नहीं है।

सूर्यकेन्द्रिक कक्षा इस प्रकार है -

प्लूटो
नेपच्यून
यूरेनस
शनि
वृहस्पति
मंगल
चन्द्र
पृथ्वी
शुक्र
बुध
सूर्य

इस प्रकार प्राच्य ग्रहों में तथा प्राचीन ग्रहों में भी कुछ अन्तर है उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार से है -

प्राच्य मत में	**पाश्चात्य मत में**
सूर्य - ग्रह	सूर्य - तारा
चन्द्र - ग्रह	चन्द्रमा – उपग्रह

भौम - तारा ग्रह	भौम - ग्रह
बुध - तारा ग्रह	बुध - ग्रह
गुरू - तारा ग्रह	गुरू - ग्रह
शुक्र - तारा ग्रह	शुक्र - ग्रह
शनि - तारा ग्रह	शनि - ग्रह
राहु - पात ग्रह	पृथ्वी - ग्रह
केतु - पात ग्रह	यूरेनस – ग्रह
	नेपच्यून – ग्रह
	प्लूटो - ग्रह
	राहु , केतु - पात

भुवः स्थिति –

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
विभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्।।

अर्थात ब्रह्माण्ड के चारो और से मध्य भाग में यह भूगोल ब्रह्मा की धारणात्मिका परमशक्ति आकर्षण शक्ति से आकाश में अवस्थित है।

वराहमिहिर के अनुसार ग्रह कक्षा क्रम –

चन्द्रादूर्ध्वं बुधसितरविकुजजीवार्कजास्ततो भानि।
प्राग्गतयस्तुल्यजवा ग्रहास्तु सर्वे स्वमण्डलगाः।।
तैलिकचक्रस्य यथा विवरमराणां घनं भवति नाभ्याम्।
नेभ्यां स्यान्महदेवं स्थितानि राश्यन्तराण्यूर्ध्वम्।।
पर्येति शशी शीघ्रं स्वल्पं नक्षत्रमण्डलमधः स्थः।
उर्ध्वस्थस्तुल्यजवो विचरति तथा न महदर्कसुतः।।

अर्थ - चन्द्रमा से उपर-उपर बुध, शुक्र, रवि, मंगल गुरू तथा सूर्यपुत्र शनि की कक्षायें है तथा उसके आगे तारागण है। सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षा मण्डल में पूर्व की ओर समान गति से भ्रमण करते हैं।

जिस प्रकार तैल निकालने के चक्र में चक्र की आरायें चक्रनाभी से आगे छितरी हुई होती जाती है तथा वे चक्र की नाभि के पास सघन होती है, उसी प्रकार (सभी ग्रहों की कक्षाओं में) राशियों के अन्तर उपर–उपर की कक्षाओं में अधिकाधिक होते जाते हैं।

नक्षत्र मण्डल के नीचे चन्द्रमा छोटी कक्षा में स्थित होने के कारण सबसे शीघ्रता से भ्रमण करता है तथा शनि के उपर स्थित होने के कारण उसकी सबसे बड़ी कक्षा में होने से चन्द्रमा के तुल्य गति से चलता है लेकिन उस (चन्द्रमा) की जैसे शीघ्रता से वह नहीं चलता अर्थात् (धीमी गति से चलता है)।

गोल परिभाषा के अनुसार ग्रह कक्षा –

स्वशक्तया भूमिगोलोऽयं निराधारोऽस्ति खेऽस्थितः।
पृथुत्वात् समवद् भॉति चलोऽप्यचलवत् तथा॥
आवृत्तोऽयं क्रमाद् चन्द्रबुधशुक्राऽर्कभुभूवाम्।
गोलेजीवार्कीभानां च क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थितैः॥

अर्थ - यह गोलाकार भूमि पिण्ड स्वशक्ति से निराधार आकाश में स्थित है, यह विशाल होने के कारण चलते हुये भी अचल प्रतीत होता है। 'वृत्तस्य नवतिर्भागः दण्डवत् परिदृश्यते' नियम के अनुसार यह अचल माना जाता है। उर्ध्व क्रम से भू, वायु, अग्नि, चन्द्र , बुध, शुक्र , रवि, भौम, गुरू,शनि ।

चराचरा सृष्टि -

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादिसृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः॥

सूर्यसिद्धान्तोक्त इस श्लोक के अनुसार ब्रह्मा को ग्रह , नक्षत्र, देव , दैत्य आदि चराचर स्थावर, वृक्ष, पर्वतादि की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से शत गुणित 474 दिव्य वर्ष 474 × 100 = 47,400 दिव्य वर्ष बीत गये थे । अर्थात कल्पारम्भ से 47400 दिव्य वर्ष के अनन्तर सृष्टि काल का आरम्भ हुआ है ।

बोध प्रश्न –

1.उर्ध्व क्रम में चन्द्रमा के पश्चात् कौन ग्रह है ।
2. अधः क्रम में सूर्य की कक्षा के पश्चात् किस ग्रह की कक्षा है ।
3. ग्रह कक्षा का विचार कितने प्रकार से होता है ।
4. सूर्यकेन्द्रिक कक्षामें सबसे उपर कौन सा ग्रह है ।
5. प्राच्य मत में मंगल को क्या कहा गया है ।
6. पाश्चात्य मत में चन्द्रमा को क्या कहा गया है ।
7. सूर्य का पुत्र कौन है ।
8. उर्ध्व क्रम में मंगल के पश्चात कौन ग्रह है ।
9. अनिरूद्ध किसे कहा गया है ।

ततश्चराचरं विश्वं निर्ममेदेवपूर्वकम् ।
उर्ध्वमध्याधरेभ्योऽथ स्त्रोतोभ्यः प्रकृतः सृजन् ॥

अर्थ- ग्रहनक्षत्र आदि की सृष्टि के अनन्तर ब्रह्मा जी ने उत्तम , मध्यम अधम स्त्रोतों से सत्व - रज – तम स्वरूप त्रिगुणात्मक प्रकृति की रचना कर देव आदि (देव, मनुष्य, असुर, पशु, पक्षि, वृक्ष, लता प्रभृति) चर – अचर (चेतन – जड़) की रचना की ।

ब्रह्मा की उत्पत्ति

वासुदेव = परब्रह्म

अनिरूद्ध (सूर्य)

ब्रह्मा (अहंकारयुक्त) स्रटा

सृष्टि क्रम

ब्रह्मा

आकाश - मन - नेत्र

वायु चन्द्र (सोम) सूर्य (अग्नि)

अग्नि

जल

पृथ्वी

तारा ग्रहों की उत्पत्ति -

पञ्च महाभूत

अग्नि	पृथ्वी	आकाश	जल	वायु
मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि

पञ्चमहाभूत और सत्व - रज – तम तीन प्रकृतियों के सहयोग से चराचर सृष्टि -

पञ्चमहाभूत + सत्व = उत्तम सृष्टि
पञ्चमहाभूत + रज = मध्यम सृष्टि
पञ्चमहाभूत + तम = अधम सृष्टि

रचित पदार्थ के नाम व स्थान –

गुणकर्म विभागेन सृष्ट्वा प्राग्वदनुक्रमात् ।
विभागं कल्पयामास यथास्वं वेददर्शनात् ।।
ग्रहनक्षत्रताराणां भूमेविश्र्वस्य वा विभु: ।
देवासुरमनुष्याणां सिद्धानां च यथाक्रमम् ।।

ब्रह्माण्डमेतत् सुषिरं तत्रेदं भूर्भूवादिकम्।
कटाहद्वितयस्यैव सम्पुटं गोलकाकृतिः ॥

अर्थ – तत् पश्चात् गुण - कर्म विभागानुसार पूर्वकल्पोक्त विधि से चराचर सृष्टि की रचनाकार वेदों में बताये गये मार्गानुसार ग्रह- नक्षत्र - तारा – भूमि- विश्व भूर्भुवादि देव – असुर – मनुष्य एवं सिद्ध आदि का ब्रह्मा ने विभाजन किया।

यह ब्रह्माण्ड अण्ड के मध्य का अत्यन्त विस्तृत छिद्र है, अर्थात् दो अण्ड कटाहों के मध्य का विशाल रिक्त स्थान अनन्त आकाश संज्ञक है। दो अण्ड कटाहों द्वारा सम्पुट होने से यह गोल आकृति वाला है। इसी के मध्य में भूर्भवादि लोक अवस्थित है। भू , भुव: स्व: , मह: जन: तप: सत्य ये सात उर्ध्व लोक है तथा अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, एवं पाताल ये सात अध: लोक है। इन्हीं सात – सात उर्ध्व और अध: लोक को मिलाकर चौदह भुवन होते है।

पाताल भूमयः -

तदन्तरपुटाः सप्त नागासुरसमाश्रयाः।
दिव्यौषधिरसोपेता रम्याः पातालभूमयः ॥

पृथ्वी के आन्तरिक भाग में नाग और असुरों के आश्रय रूप में दिव्य औषधियों प्रकाश युक्त वनस्पतियों एवं रसो से युक्त अतिसुन्दर सात पाताल भूमि है।

विशेष – यहॉ पृथ्वी के अन्तरपुट में सात पाताल भूमियों का उल्लेख है जो व्यावहारिक दृष्टि से असंगत हैं क्योंकि पृथ्वी के भीतरी भाग में ऐसा खोखला स्थान नहीं है जहॉ कोई नगरी बस सके। अत: यहॉ तदन्तरपुटा का अर्थ पृथिव्या अन्तरपुटा न लेकर अण्डकटाहस्यान्तरपुटा सप्तपातालभूमय: इस प्रकार का अन्वय करने से ही संगति हो सकती है। यहॉ अण्डकटाह के अन्दर ही अनेक लोकों की कल्पना युक्ति संगत हो सकती है।

मेरू स्थिति –

अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः।
भूगोलमध्यगो मेरूरूभयत्र विनिर्गतः ॥

अनेक रत्नों के समूह से परिपूर्ण जाम्बूनद स्वर्णनदी से युक्त भूगोल के मध्य में गया हुआ तथा पृथ्वी के दोनों भाग उत्तर – दक्षिण में निकला हुआ मेरू पर्वत है।

देव – दानवयोः स्थिति –

उपरिष्टात् स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः।
अधस्तादसुरास्तद्वद् द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः ॥

अर्थ – मेरू पर्वत के उपरीभाग (उत्तर दिशा) में इन्द्रादि देवता और महर्षिगण रहते है। इसी प्रकार अधोभाग (दक्षिणभाग) में असुर लोग रहते है जो देव – असुर परस्पर द्वेष भाव रखते है।

विषुवत् प्रदेश में स्थित चार नगर -

समन्तान्मेरूमध्यात् तु तुल्यभागेषु तोयधेः।

द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देवनिर्मिता:।।
भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा ।।
याम्यायां भारते वर्षे लंका तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता।।
उदक् सिद्धपुरी नाम कुरूवर्षे प्रकीर्तिता।
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथा: ।।
भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिता:।
ताभ्यश्चोत्तरगो मेरूस्तावानेव सुराश्रय: ।।

अर्थ - सुमेरू पर्वतों के मध्य भाग में सुमेरू और कुमेरू के मध्यवर्ती समुद्र भाग में तुल्य दूरी पर पूर्वादि दिशाओं में चार द्वीपों पर देवों द्वारा निर्मित किये गये चार नगर है।

पृथ्वी के चतुर्थांश भाग पर पूर्व दिशा में भद्राश्व वर्ष में यमकोटि नामक विख्यात नगर है जिसमें स्वर्णमयी दीवालें तथा स्वर्णमय द्वार है।

दक्षिण दिशा में भारत वर्ष में उसी प्रकार की लंका नामक महानगरी है। पश्चिम दिशा में केतुमाल वर्ष में रोमक नगर कहा गया है।

उत्तर दिशा में कुरू वर्ष में सिद्ध पुरी नगर है। उस नगरी में पीडाओं से रहित सिद्ध महात्मा निवास करते है।

पृथ्वी के परिधि के चतुर्थांश भाग के अन्तर पर ये चारों नगर स्थित है। इन चारों नगरों से उतनी ही दूरीपर उत्तर दिशा में सुमेरू पर्वत है जहॉ देवताओं का निवास है।

विशेष – किसी भी गोल पदार्थ के चतुर्थांशो का विभाजन याम्योत्तर परिधि और पूर्वापर परिधि के आधार पर किया जाता है। भूमध्य रेखा 0^0 अक्षांश इन परिधियों को चार स्थानों पर काटती है। ये चारों बिन्दु परस्पर एक दूसरे से 90^0 की दूरी पर भूमध्य बिन्दू होते हैं।

भास्कराचार्य के मत में खकक्षा एवं ग्रह कक्षा –

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृदभुजङ्गेन्दुभि
ज्योंतिश्शास्त्रविदो वदन्ति नभस: कक्षामिमां योजनै:।
तद् ब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं
केचिद् प्रोचुरदृश्य दृश्य कगिरिं पौराणिका: सूरय:।
करतलकलितामलवदमलं सकलं विदनित ये गोलम्।
दिनकरकरनिकरनिहततमसो नभसोसपरिधिरूदितस्तै:।।

अर्थ-ज्योतिष शास्त्र को जानने वाले विद्वान आकाशकी कक्षापरिधि का मान 18,712,069,200,000,000 योजन कहते है।

ग्रहस्य चक्रैर्विहता खकक्षाभवेत् स्वकक्षानिजकक्षिकायाम्।

ग्रह:खकक्षामितयोजनानि भ्रमत्यजस्रं परिवर्त्तमान:।

खकक्षा को जिस - जिस ग्रह की भगण संख्या से विभक्त करेंगे भागफल उस उस ग्रह की कक्षा का मान तुल्य होता है।

सूर्यकक्षा 4331497 ½ , चंद्र कक्षा324000, तथा भकक्षा259889850 प्रमाण गणकों ने की है।

4.4 सारांश

ज्योतिष शास्त्र में ग्रह मूलाधार है, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र अपने सिद्धान्तों को कहता है। सभी ग्रह अपने-अपने कक्षाओं में भ्रमण करते है। उनके भ्रमण पथ का नाम ही ग्रह कक्षा है। ग्रहाणां कक्षा ग्रहकक्षा। अपनी – अपनी गति के अनुसार ग्रह अपने – अपने कक्षा पथ में भ्रमण करते है। सर्वाधिक तीव्र गति वाला ग्रह चन्द्रमा , एवं सबसे न्यून गति वाला ग्रह शनि होता है। इसलिये शनि की कक्षा सबसे बड़ी है और चन्द्रमा की सबसे छोटी।

भूकेन्द्रिक एवं सूर्यकेन्द्रिक गणना के आधार पर प्राच्य एवं पाश्चात्य मत में ग्रहों के कक्षाओं का वर्णन किया गया है।

इस इकाई में यह प्रयास किया गया है कि प्राच्य पाश्चात्य मत में ग्रहकक्षा किस प्रकार कहा गया है, उसका उल्लेख यहॉ पर हो। साथ ही सृष्टि प्रक्रिया को भी संक्षिप्त रूप में समझाने का प्रयास किया गया है। आशा है पाठकगण इसे भली – भॉति समझने का प्रयास करेंगे।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

प्राच्य - प्राचीन
पाश्चात्य – अर्वाचीन
पथ – रास्ता
विचरण – घूमना
भ्रमण – घूमना
मूलाधार – मूल आधार
ज्योतिर्विद - ज्योतिष शास्त्र को जानने वाला
उर्ध्व – उपर
अध: – नीचे
अधोध: – एक दूसरे से नीचे
घन – बादल
कक्षा – भ्रमण पथ, घर
सुगमता – आसान
भूकेन्द्रिक – भू को केन्द्र में मानकर

सूर्यकेन्द्रिक – सूर्य को केन्द्र में मानकर

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बुध
2. शुक्र
3. दो
4. प्लूटो
5. तारा ग्रह
6. उपग्रह
7. शनि
8. वृहस्पति
9. सूर्य

4.7 सहायक पाठ्यसामग्री

1. सूर्यसिद्धान्त
2. सिद्धान्तशिरोमणि
3. वृहज्ज्योतिसार
4. भारतीय ज्योतिष

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहकक्षा से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
2. प्राच्य मत में ग्रह कक्षा को दर्शाइये।
3. प्राच्य एवं पाश्चात्य मत में ग्रहकक्षा के अन्तर स्पष्ट कीजिये।
4. सृष्टि रचना को समझाइये।